महाकवि बुधजन विरचित

तत्त्वार्थ बोध

सम्पादन

प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर

श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान नसिया जी, कोटला रोड (फिरो०)

कल्पवृक्ष

प्रकाशक

श्रीधर्म श्रुत शोध, संस्थान

श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी,

कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

कृति - तत्त्वार्थ बोध **पुष्प संख्या**-सैंतालीस

कृतिकार - महाकवि बुधजन

सम्पादक - प्रज्ञाश्रमण मुनि अमितसागर

पावन प्रसङ्ग - बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्रीशान्तिसागर जी महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य शिरोमणि श्रीधर्मसागर जी महाराज के पट्ट शिष्य प्रज्ञाश्रमण मुनिश्री अमितसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में गोम्मटेश्वर बाहुबली भगवान के सन् २०१८ के महामस्तिकाभिषेक के उपलक्ष्य में प्रकाशित।

[पुस्तक प्राप्ति स्थान]

१. चन्द्रा कापी हाऊस, हास्पिटल रोड, आगरा (उ०प्र०)
मो०: ०९४१२२६०८७९

२. वास्ट जैन फाउण्डेशन ५९/२ बिरहाना रोड, कानपुर (उ०प्र०)
मो०: ०९४५१८७५४४८

३. आलोक जैन, हनुमानगंज
C/O श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड,
फिरोजाबाद (उ०प्र०) मो०: ०९९९७५४३४१५

४. आचार्य श्री शिवसागर ग्रन्थमाला, श्री शान्तिवीर नगर,
श्री महावीर जी, जिला-करौली (राज०)

५. श्री दिगम्बर जैन अष्टापद तीर्थ, विलासपुर चौक, धारूहेड़ा,
गुडगाँव (हरि०) मो०: ०९३१२८३७२४०

६. प्राचीन आर्ष ग्रन्थालय, जैन बाग, सहारनपुर (उ०प्र०)
मो०: ०९४१०८७४७०३

७. विशुद्ध ग्रन्थालय, सर्वऋतु विलास, उदयपुर (राजस्थान)

८. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, कीर्तिनगर, टोंक रोड, जयपुर (उ०प्र०)
फोन नं०: ०१४१-२७०१२७९

९. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, कटरा सेवा कली, नया शहर, इटावा (उ०प्र०)
मो०: ०९४१२०६८६३९

कम्पोजिंग - वर्धमान कम्प्यूटर, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

संशोधित संस्करण - प्रथम, सन् २०१८

प्रतियाँ - १०००

मूल्य - १०० ₹

मुद्रक - महेन्द्रा पब्लिकेशन प्रा०लि०, ई - ४२,४३,४४, सेक्टर ७ नोएडा (उ०प्र०)

प्रकाशकीय

गुरुदेव कहा करते हैं कि दर्पण और दीपक कभी झूठ नहीं बोलते हैं। जलते हुए दीपक को कहीं भी ले जा सकते हैं, किन्तु अँधेरे को कहीं नहीं ले जा सकते हैं।

जैन धर्म का आगम-सिध्दान्त; दर्पण एवं जलते हुए दीपक की तरह है। नकटे या कुरूप को दर्पण दिखाने से उसके कषाय उत्पन्न होती है। चोर-व्यभिचारी-व्यसनी को रोशनी का भय सताता है।

अज्ञानी; ज्ञान-दीपक का सामना नहीं कर सकता है। व्यसनी; दर्पण की झलक को सहन नहीं कर पाता है।

दर्पण; आदर्श को कहते हैं। दर्प जिसमें नहीं हो वह दर्पण है। दर्पण में देखने सब ललकते हैं, किन्तु दर्पण किसी को देखने नहीं ललकता; यही तो उसका आदर्श है।

दर्पण और दीपक को डराने-धमकाने वाले पत्थर और आँधियाँ हैं। जो दर्पण; पत्थर से नहीं डरता वही दर्पण है। जो दीपक; आँधियों से नहीं घबड़ाता वही दीपक है।

हम अपनी बात इन्हीं दो पूर्ण सत्यों के साथ प्रारम्भ करते हैं। पूज्य गुरुदेव से फिरोज ाबाद जनपद की जनता; सन् १९९२ से परिचित हैं। परिचित हैं उनके दर्पणवत् स्वभाव से; धनिक-निर्धन, पूजक-निन्दक दोनों समान। परिचित हैं उनके दीपकवत् साहस से। वो कभी अपना परिचय स्वयं इस अन्दाज में देते हैं ——

आँधियों के बीच जो जलता हुआ मिल जाएगा।
उस दिये से पूछना मेरा पता मिल जाएगा ॥
अय! आँधियों अपनी औकात में रहो ।
हम तो जलते हुए दिये हैं जलते ही रहेंगे ॥
देख चिरागों के शोले मञ्जिल से इशारा करते हैं।
तू हिम्मत हारा जाता है कहीं हिम्मत हारा करते हैं ?

हम जनपदवासी; सन् १९९२ से इस जलते हुए दीपक को देख रहे हैं, जो व्यक्ति, परिवार, समाज, गाँव, शहर, राज्य, राष्ट्र एवं विश्व के लिए, अपने प्रकाश से मार्गदर्शन कर रहा है।

इस जलते हुए दीपक को; कितनी आँधियों-तूफानों ने बुझाने की कोशिश की, लेकिन यह दीपक बुझने की जगह और भी अधिक प्रकाशमान हो गया और अँधी-आँधियाँ; हार मानकर बैठ गईं।

इस दर्पण को; कितने ही छोटे-छोटे कङ्कण ही नहीं; पहाड़ जैसे पत्थर भी धमकी देते

रहे, लेकिन दर्पण; दर्पण ही रहा, उन वेजान पत्थरों के सामने समर्पण नहीं हुआ।

बस; इन्हीं दो उपमाओं में ही इस व्यक्ति का व्यक्तित्व समाया है। ख्याति-पूजा-लाभ से दूर, दूरदर्शन के प्रदर्शन एवं पोस्टरों के पोस्ट की परछाईयों से विलग, अनेक उपाधियों और पद-प्रतिष्ठा की होड़ से उदासीन।

एक वैज्ञानिक की तरह वस्तु-तत्त्व की तहछ में जाकर उसे समझना जिनके स्वभाव में है। बड़े-बड़े ग्रन्थों के रहस्यों को सरलता से; **स्वरूप भेद और स्वामी भेद की कुञ्जी से; आगम, युक्ति, गुरूपदेश एवं स्वानुभव से सिध्द करना उनका लक्ष्य रहता है।**

वैसे तो इतिहास में कोई भी आचार्य-गुरुजन अपना भौतिक परिचय लिखकर नहीं गए, किन्तु उनके जीवन्त कृत्य ही उनके अमर परिचय हो गए। गुरु जी कहा करते हैं कि——

अच्छे कार्य स्वयं में प्रशंसनीय हुआ करते हैं, अतः हमें कभी; दूसरों से प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए।

फिर भी हम भक्त-श्रध्दालुजन अपने इष्ट की आराधना-स्तुति करके पुण्योपार्जन कर लेते हैं, यह एक उद्देश्य है। दूसरा उद्देश्य; सब कोई उनके बारे में; उनके परिचय से सही परिचित हों प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, अतः इस उद्देश्य से उनका परिचय भी देना अनिवार्य है।

आप में देखा है हम सबने; कुन्दकुन्दाचार्य का अध्यात्म और उनके जैसा धर्मायतनों को बिना हिंसा के बचाने वाला 'बलात्कारगण', मैनपुरी एवं फिरोजाबाद इनके उदाहरण हैं।

समन्तभद्राचार्य जैसा शास्त्रार्थ करने का अदम्य साहस एवं फिरोजाबाद जिले के चन्द्रवाड़ के किले में मूर्तियाँ प्रगटाने वाला गौरव पूर्ण अतिशय इसका प्रमाण है।

पूज्यपादाचार्य जैसी आगमोक्त लक्षणावली आप में हैं, क्योंकि आप पूज्यपादाचार्य एवं समन्तभद्राचार्य के आगम को सिराहने रखकर सोते हैं, यह अनुत्तर जिज्ञासा टीका इसका जीवन्त प्रतीक है।

अकलङ्काचार्य जैसे प्रमाणों की प्रचुरता; उनकी वाणी एवं लेखनी में विराजमान रहती है। आप कहते हैं, एक दर्पण को देखने; दूसरे दर्पण की जरूरत नहीं होती है, अतः एक प्रमाण के लिए दूसरे प्रमाण की जरूरत नहीं होती है। **जिसको जिनवाणी-आगम-सिद्धान्त में ही श्रध्दा नहीं है, उसे कितने ही आगम-सिध्दान्त दिखला दो; मानने वाला नहीं है।**

मानतुङ्गाचार्य जैसी ताले टूटने वाली आश्चर्यकारी घटनाओं से फिरोजाबाद जनपद अनजान नहीं है। वादिराज मुनिराज जैसी आस्था से असाध्य रोग से मुक्ति के चमत्कारी दृश्य जिनके स्वयं पैदा हो गए।

जिनसेनाचार्य जैसे निर्विकार-अनासक्त भाव; जो कर्त्ता में अकर्त्ता, भोक्ता में अभोक्ता

की अनुभूति कराते हैं।

अमृतचन्द्राचार्य जैसे निर्नाम निर्माण——कहीं-किसी भी जगह अपने व्यक्तिगत नाम के कोई आश्रम-मठ-मन्दिर, संस्थान आदि नहीं बनवाये। आप कहते हैं कि ——

जिस खुदा ने ये दुनिया बनाई, उसने अपनी फोटो नहीं छपाई।
दुनिया को बर्वाद करने वाले, अपनी फोटो छपाते फिरते हैं ॥

आपका हमेशा शिक्षा एवं चिकित्सा पर जोर रहता है। शिक्षा चाहे लौकिक हो या पारलौकिक; सभी को प्रोत्साहन देते हैं। छोटे बच्चों से पढ़ाई के लिए पूछते हैं कि तुम्हें क्या बनना है? "**कुर्सी बिछाने वाला चपरासी या कुर्सी पर बैठने वाला ऑफीसर। बड़े बच्चों को कहते हैं कि तुम्हारी चार साल की पढ़ाई का जीवन; तुम्हारे चालीस साल बना देगा, फालतु वातावरण से बचो।**"

बालकों से लगाव, युवाओं को प्रेरणा, वृध्दों की सेवा-वैय्यावृत्ति, समाधिस्थों की साधना में आपका निर्यापकाचारित्व अनुभूत आदर्श है।

आपकी प्रथम प्रकाशित कृति मन्दिर है जो अद्यावधि हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नड़ एवं अंग्रेजी संस्करणों में; लगभग दो लाख प्रतियों से भी अधिक प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपने बाल साहित्य के रूप में बालगीत, बाल कहानियाँ, जैन चित्र कथायें, बाल विज्ञान के क्रमशः पाँच भाग, आसान उच्चारण, सरल उच्चारण, अनुपम पाठसंग्रह, रयणसार, द्रव्य संग्रह द्वारा मूलपाठों को उच्चारण-पढ़ने योग्य बनाया है।

इसी के साथ कई ग्रन्थों के प्रकाशन की प्रेरणा दी; जिनमें धर्म परीक्षा, सम्यक्त्व कौमुदी, दानशासन, दान चिन्तामणि, धर्मध्वज विशेषाङ्क, भक्तामर शतद्वयी, सिरिभूवलय, नाममाला, चौबीस ठाणा, गुरु-शिष्य दर्पण, बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, श्री सिध्दचक्र विधान कवि-सन्तलाल जी, जैन-अभिषेक पाठ संग्रह, चौंतीस स्थान दर्शन आदि कृतियाँ कुछ प्रकाशित हैं, कुछ प्रकाशकाधीन हैं।

प्रवचन सङ्कलन में; आँखिन देखी आत्मा—— इसमें उत्तमक्षमादि दशधर्मों के स्वरूप को, आगमिक, वैज्ञानिक आदि के आधार पर विवेचित किया गया है। दशलक्षण पर्वों में विद्वानों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है।

अन्तरङ्ग के रङ्ग—— इसमें षट्लेश्या का वर्णन किया गया है। आप अपने परिणामों का स्वयं निरीक्षण करें। अपने भावों के अच्छे-बुरे की पहचान होती है।

अनुत्तर यात्रा—— सोलह कारण भावनाओं का औपन्यासिक विश्लेषण है कि साधारण-सी आत्मा त्रैलोक्य पूज्य तीर्थङ्कर पद तक कैसे पहुँचती है? कई संस्करणों में प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

नीतिशास्त्र; कुरल काव्य कृति— उन नीतियों का संग्रह है जो दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य ने सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय संकलित की थीं। जिनकी आज; व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य एवं राष्ट्र के कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक करने की परम आवश्यकता है। इसका सम्पादन किया जो प्रभात प्रकाशन दिल्ली से २०१० में प्रकाशित हुआ।

आपकी ''बोलती माटी'' महाकाव्य कृति— सरलतम भाषा की एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसमें एक अकिञ्चन्य माटी को पात्र बनाकर, मद से भरे पात्रों को निर्मद बना दिया। तुच्छ से उच्च बनाने की शिक्षा देने वाली कृति; आज नहीं तो कल इसकी आवश्यकता अवश्य होगी। इसका प्रथम संस्करण; एक बार लगभग बाईस वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था, किन्तु पुनः उसके संशोधित-संस्करण का प्रकाशन अब हो चुका है।

अमृतचन्द्राचार्य कृत तत्त्वार्थसार कृति — आपके द्वारा सम्पादित आगम की प्रथम कृति है जिसका श्रीधर्मश्रुत ज्ञान, हिन्दी टीका के रूप में सम्पादन; सन् २०१० में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किया गया।

आज हमें यह परम सौभाग्य प्राप्त हो रहा है कि हम पूज्य मुनिश्री के द्वारा सम्पादित **'तत्त्वार्थ बोध'** का प्रकाशन कर रहे हैं।

गुरुदेव के द्वारा संकलित, रचित, सम्पादित साहित्य में मुनिश्री की अयाचित वृत्ति से; दान दाता उदार मन से स्वेच्छया राशि से सहयोग करते हैं, उन दानी महानुभावों के हम आभारी हैं।

मुनिश्री द्वारा निर्देशित श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान, श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर, नसिया जी, कोटला रोड, फिरोजाबाद (उ०प्र०)। जिसमें प्राचीन-हस्तलिखित हजारों पाण्डु लिपियाँ एवं प्राचीन-अर्वाचीन प्रकाशित-उपलब्ध-अनुपलब्ध ग्रन्थ भण्डार में जैन धर्म पर शोध करने वालों के लिए उपलब्ध रहे एवं प्राचीन साहित्य-आगम-सिध्दान्त का संरक्षण-संवर्ध्दन हो। इसके लिए सकल जैन समाज मुनिश्री के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

निवेदक

श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान, श्रीदिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर,
नसिया जी परिसर, कोटला रोड़, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

प्रज्ञात्मभा मुनि

सम्पादकीय

सन् २००६; गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी की मूल प्रतिष्ठा के १०२४ वर्ष की पूर्णता में होने वाले बारह वर्षीय महामस्तकाभिषेक के समय हम ससंघ श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला आये थे, अभिषेक समापन विधि हेतु २००६ का वर्षायोग यहीं पर हुआ।

श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला के अध्यक्ष, कर्मयोगी, स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी से तात्त्विक परिचय हुआ, चिन्तन; आदान-प्रदान हुआ, जिससे उन्होंने हमें सर्वार्थसिद्धि की हिन्दी टीका लिखने की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दिया।

हम तत्त्वार्थसूत्र सम्बन्धी सामग्री खोजनें में लगे थे कि अकस्मात् एक हस्तलिखित प्रति; आगमश्रद्धानी, आर्षमार्ग पोषक विद्वान, पण्डित प्रवर, बुधजन महाकवि द्वारा लिखित ''तत्त्वार्थबोध'' हाथ लग गई, उसे हमने सहेज कर रख लिया, क्योंकि उस समय हम अमृतचन्द्राचार्य विरचित ''तत्त्वार्थसार'' जिसका कि भारतीय ज्ञानपीठ; दिल्ली से कई संस्करणों में प्रकाशन हो चुका है, उसके सम्पादन में लगे थे।

इसी के साथ दक्षिण भारत के प्रख्यात संत तिरुवल्लुवर (कुन्दकुन्दाचार्य) द्वारा रचित ''तिरुक्कुरल'' काव्य, जिसका विश्व की अस्सी भाषाओं में अनुवाद हुआ था, उसका संस्कृत एवं हिन्दी पद्यानुवाद; महरौली, झाँसी निवासी; पं० गोविन्दराय ने किया था, उसका प्रकाशन भी भारत की प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था ''प्रभात प्रकाशन'' दिल्ली द्वारा किया गया, जिसका लोकार्पण दिल्ली के राष्ट्रपति भवन में भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के कर कमलों द्वारा किया गया, उसका सम्पादन किया।

तत्त्वार्थसार प्रकाशन के बाद; हमने तत्त्वार्थसूत्र पर सर्वार्थसिद्धि का अवलम्बन लेकर एक स्वतन्त्र चिन्तनपूर्ण ''अनुत्तर जिज्ञासा'' हिन्दी टीका लिखी है, जो अब तक चार संशोधित संस्करणों में श्रीधर्मश्रुत शोध संस्थान, फिरोजाबाद से प्रकाशित हो चुकी है।

इसी बीच बृहद्स्वयम्भू स्तोत्र एवं सन्तलाल कवि का सिद्धचक्र विधान भी छन्द एवं मन्त्र का संशोधन अर्थ सहित प्रकाशित किया, जिससे भाषा सम्बन्धी ज्ञान की अभिबृद्धि हुयी।

इसी के साथ धनञ्जय कवि विरचित; नाममाला-अनेकार्थ निघण्टु आदि का भी सम्पादन किया।

सन् २०१५ का वर्षायोग; फिरोजाबाद (उ०प्र०) में करके पुनः सन् २०१८ में होने वाले श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला के गोम्मटेश्वर भगवान श्री बाहुबली के बारह वर्षीय महामस्तकाभिषेक हेतु संघ सहित विहार करते हुए, झाँसी (उ०प्र०) आये, वहाँ के शास्त्र भण्डार में एक हस्तलिखित प्रति ''तत्त्वार्थबोध'' प्राप्त हुई, वहाँ के अध्यक्ष ऋषभ कुमार जी से अनुमति लेकर; वह प्रति हमें मिली। प्रति मिलते ही हमनें उसे अपने हाथ से प्रतिलिपि बनाना शुरु कर दिया। प्रतिलिपि लिखने के लगभग १०-१५ पृष्ठ शेष बचे थे कि साधु संघ यात्रा करता हुआ; अतिशय क्षेत्र पपौरा जी पहुँचा, वहाँ के शास्त्र भण्डार में महाकवि बुधजन विरचित ''तत्त्वार्थबोध'' की एक प्रेस मुद्रित प्रति मिल गई, जिसके सम्पादक; मुनिश्री विमलसागर जी एवं प्रकाशक धर्मवीर कन्हैयालाल गंगवाल, सर्राफा बाजार, लश्कर-ग्वालियर, प्रकाशन वर्ष वीर निर्वाण संवत् २४७८ द्वितीयवृत्ति, मूल्य-स्वाध्याय छपा था।

हमनें दोनों प्रतियों का मिलान करके तीसरी प्रतिलिपि तैयार की, क्योंकि हस्त लिखित प्रति एवं मुद्रित प्रति; इन दोनों प्रतियों में अनेक अशुद्धियाँ थीं। हस्तलिखित प्रति में लिपि के अक्षर आपस में मिले

होने पर उनकी छन्द बद्ध योजना करना कठिन था, प्रतिलिपिकार भी शुद्ध लिपि का प्रवाह नहीं कर सके, अतः हमने ''भावों को भाषा के वस्त्र पहनाये जाते हैं एवं व्याकरण; भाषा की श्रृंगारदानी है'', इस वाक्य को ध्यान में रखते हुये, भाषा का प्रवाह छन्दबद्ध किया है, जिससे ग्रन्थ के मूल भाव सन्दर्भ सहित सुरक्षित रहें एवं सही स्पष्टीकरण हो सके।

''तत्त्वार्थबोध'' ग्रन्थ छन्दोबद्ध है, अतः छन्दों के लक्षणानुसार ही, इसके छन्दों को शुद्ध करने का प्रयास किया है।

इन छन्दों में चारों अनुयोगों की परिभाषायें संग्रहीत हैं, जिन्हें मंगलाचरण से लेकर अन्तिम प्रशस्ति तक कवि के अन्तिम मंगलाचरण तक ग्रन्थ का तादात्म्य जुड़ा हुआ है।

विषयानुसार छन्दों की संख्या-क्रम विभक्त किया है, विषयानुक्रमणिका के अलावा छन्दों में प्रयोग होने वाले कई कठिन शब्दों के अर्थ परिशिष्ट के रूप में दिये गये हैं।

बुधजन महाकवि ने आगम-सिद्धान्त की बातों को छन्दोबद्ध कर, स्वयं की विद्वत्ता का परिचय तो दिया ही है, किन्तु अपने आपको किसी पंथवाद से नहीं जोड़ा, परन्तु आगम-सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए उन्होंने किन्ही ''कनककीर्ति'' की तत्त्वार्थसूत्र की टीका का उल्लेख भी अपने छन्दों में किया है। कविवर द्यानतराय के छन्दों को भी उक्तं च लिखकर विद्वानों का बहुमान किया है। कुन्दकुन्दाचार्य विरचित; अष्टपाहुड़ की गाथाओं को भी प्रसंगानुसार लिखकर विषयों को आगमोक्त एवं गम्भीर बनाया है। बुधजन महाकवि का आत्म परिचय का संकलन; जैन विद्या संस्थान, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (राज०) से प्रकाशित ''बुधजन सौरभ'' से किया है।

इस कार्य को समय और श्रम तो अपेक्षित है ही, किन्तु जिनवाणी माँ का अनुग्रह; हर समय लेखनी की हर अँगुली को सही दिशा में घुमाकर; अर्थ को परमार्थ में मोड़ती रही, यही हमारा सम्बल है। दीक्षागुरु आचार्य शिरोमणि श्री धर्मसागरजी की धार्मिक निर्मिकता संस्कारों में रची-पची होने से निड़रता रही एवं शिक्षा गुरु आचार्य कल्पश्री श्रुतसागर जी की सिद्धान्त दृढता का आदर्श; हमें सिद्धान्तों से डिगने से हर कदम पर बचाता रहा फिर भी इसमें जो कमीं हैं, वे हमारे अज्ञान-प्रमाद अहंकार की हो सकती हैं, अतः विज्ञाजन हमें क्षमा करेंगे।

ॐ नमः
२७-१०-२०१७
श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला
कर्नाटक

कविवर बुधजन

(अनुमानित वि०सं० १८२०-१८९५; ई० १७६३-१८३८)

'कवि बुधजन' जैन भक्तिरस के सुप्रसिद्ध कवियों में एक प्रमुख कवि हैं। इनका नाम बिरधीचन्द था, बोलचाल में इन्हें 'बधीचन्द-भदीचन्द' कहा जाता था। स्वयं कवि ने अपनी कृतियों में अपना नाम 'बुधजन' तथा 'बुध' दिया है।

बुधजन; जयपुर के निवासी थे। खण्डेलवाल जाति के 'बज' गोत्रीय परिवार में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता के नाम निहालचन्द था, दादा का नाम पूरणमल तथा परदादा का नाम सोभाचन्द था।

कवि ने अपने रचनाओं में अपना व्यक्तिगत परिचय, जन्म-जीवन से सम्बन्धित जानकारी के बारे में कहीं उल्लेख नहीं किया। अपनी रचनाओं के अन्त में अपना साहित्यिक उपनाम 'बुधजन/बुध' तथा रचना का काल अंकित किया है। रचनाओं के आधार से ही इनके जन्म व मृत्यु के समय का अनुमान किया गया है कि कवि का जन्म वि०सं० १८२० के लगभग तथा निधन १८९५ या इसके आस-पास हुआ होगा, क्योंकि इनकी प्रथम कृति का जन्मकाल वि०सं०१८३५ है और अन्तिम कृति का वि०सं० १८९५। कवि कुशाग्र बुद्धि थे, अतः यदि कवि ने पन्द्रह वर्ष की आयु में रचना-कार्य प्रारम्भ किया हो तो इनका जन्मकाल वि०सं० १८२० हो सकता है और वि०सं० १८९५ के बाद की इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई— इस आधार पर निधन समय वि०सं० १८९५-९६ अनुमानित है अर्थात् वि०सं० १८३५-१८९५ यह इनका साहित्य-सृजन-काल है, अतः वि०सं० १८२०-१८९५ तो कवि के जीवन का न्यूनतम अनुमानित समय है, वास्तविक जीवनकाल दोनों ओर ही पाँच-सात वर्ष और अधिक हो सकता है।

रचनाएँ — कविवर बुधजन की रचनाएँ कालक्रमानुसार निम्न प्रकार हैं—

१. **नन्दीश्वर जयमाल**	विक्रम संवत् १८३५
२. **विमल जिनेश्वर स्तुति**	विक्रम संवत् १८५०
३. **वन्दना जखड़ी**	विक्रम संवत् १८५५
४. **छहढाला**	विक्रम संवत् १८५९
५. **बुधजन सतसई**	विक्रम संवत् १८७९
६. **तत्त्वार्थ बोध**	विक्रम संवत् १८७९
७. **पंचास्तिकाय भाषा**	विक्रम संवत् १८९२
८. **वर्धमान पुराण सूचनिका**	विक्रम संवत् १८९५

९. योगसार भाषा विक्रम संवत् १८९५

१०. बुधजन विलास — (समय-समय पर रचित फुटकर पद्यबद्ध रचनाओं का संकलन)

(*i*) इष्ट छत्तीसी

(*ii*) जिनोपकार स्मरण स्तोत्र

(*iii*) दोष बावनी

११.सम्बोध पञ्चासिका

१२.पद-संग्रह

१३.विभिन्न पूजायें आदि ।

बुधजन; साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे, जैनदर्शन और सिद्धान्त के मर्म-ज्ञाता अनुभवी एवं बहुश्रुत विद्वान थे ।

'लोकभाषा' को इन्होंने अपने साहित्य-सृजन का माध्यम बनाया । ये ढूँढार-प्रदेश जयपुर के रहने वाले थे, इनका साहित्य ढूँढारी तथा ढूँढारी-मिश्रित हिन्दी भाषा में उपलब्ध होता है, क्योंकि 'ढूँढारी' उस समय जयपुर की लोकभाषा थी ।

कवि की रचनाओं में उनका जीवन त्यागमय, अध्यात्मपरक तथा संयम से ओत-प्रोत परिलक्षित होता है। उनकी रचनायें उनकी आध्यात्मिक गहनता की परिचायक हैं।

'छहढाला' कवि की प्रथम मौलिक रचना है। इसकी महत्ता इसी से प्रकट हो जाती है कि कवि की यह रचना हिन्दी भाषी, जैन कवि पण्डित दौलतराम जी कृत 'छहढाला (हिन्दी)' की प्रेरणास्रोत एवं आधार बनी । पण्डित दौलतराम ने इस तथ्य की स्वीकारोक्ति अपनी रचना छहढाला में निम्न प्रकार की है —

''कर्‍यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ।''

कवि के पद/भजन उनकी वैराग्य भावना के प्रतिबिम्ब हैं। प्रत्येक पद आध्यात्मिकता एवं वैराग्य से ओत-प्रोत है, ज्ञानमूलक हैं, उद्‌बोधनकारी हैं, रुचिपूर्वक पढ़ने-सुनने वालों पर उनका अमिट प्रभाव पड़ता है।

उनकी रचनाओं का हार्द यही है कि मानव का विवेक जागृत हो और वह अपना जीवन नीतिपूर्वक व्यतीत करे । उनके भजनों में एक विशिष्ट प्रभाव, सन्देश निहित है। उन्होंने अपने एक भजन में समझाया है —

'धर्म बिन कोई नहीं अपना' ।

वे लिखते/कहते हैं —

'आगे किया सो पाया भाई, याही है निरणा ।
अब जो करेगा सो पावेगा, यातैं धर्म करना ।'

इस प्रकार अत्यन्त सरल और सहज रूप से उन्होंने धर्म की और कर्म-सिद्धान्त की महत्ता को समझा दिया । 'गुरु' के महत्त्व को भी उन्होंने बहुत सुन्दर-सहज ढंग से अभिव्यक्त किया है —

'गुरु ने पिलाया हमें ज्ञान-पियाला' ।

इनके भजन आज भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। **'प्रभु पतित-पावन, मैं अपावन.......'** इनके द्वारा रचित 'दर्शन-स्तुति' है। यह छोटी-सी स्तुति समग्र जैन समाज में आज भी प्रसिद्ध एवं प्रचलित है। आज भी लाखों जैन भाई-बहिनों द्वारा प्रतिदिन, नियमित रूप से यह स्तुति गाई जाती है।

'बुधजन सतसई' कवि की एक अनुपम कृति है। इनकी रचनायें तीन विधाओं में उपलब्ध होती हैं —

१. नीति प्रधान रचनायें
२. सैद्धान्तिक रचनायें एवं
३. आध्यात्मिक रचनायें ।

आपके साहित्य ने अज्ञान अन्धकार में भ्रमित प्राणियों को दिशा-निर्देशन कर ज्ञान का आलोक फैलाया । इन्होंने आत्म-प्रेरणा से प्रेरित होकर साहित्य-सृजन किया । प्रदर्शन की भावना का नितान्त अभाव था । इनके साहित्य-संसार में एक पद भी ऐसा नहीं मिलता, जिससे इनकी प्रदर्शन की भावना अभिव्यक्त होती हो । शायद इसी कारण इन्होंने अपना व्यक्तिगत परिचय तथा अन्य जानकारी आदि का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया ।

धर्म-भावना एवं आध्यात्मिक रुचि के प्रभाव एवं परिणामस्वरूप ही साहित्य-निर्माण करने के साथ-साथ इन्होंने जयपुर में विक्रम संवत् १८६४ में एक दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण भी कराया ।[1] जयपुर जैन समाज 'कवि बुधजन' द्वारा रचित साहित्य एवं उनके द्वारा निर्मित मन्दिर से गौरवान्वित है, कृतज्ञ है।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

१. यह मन्दिर जयपुर शहर के किशनपोल बाजार की चौकड़ी तोपखाना देस में टिक्कीवालों का रास्ता में स्थित हैं।

श्री १०८ विमलसागर जी महाराज की

संक्षिप्त जीवनी

ग्वालियर राज्य में पछार के समीप महायनों नामक एक छोटे से ग्राम में सेठ भीकमचन्द्र जी रहते थे। वे चार भाई थे उनसे तीन छोटे भाइयों के कोई सन्तान न थी वे दिगम्बर जैन जैसवाल जाति के थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम श्री मथुरादेवी था। उनके पौष शुक्ला २ सं० १९४८ के दिन एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ, उसका नाम किशोरालाल जी रक्खा गया।

बालक किशोरीलाल को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सुभीता इसलिए नहीं मिला कि उनका जन्मस्थान एक छोटा सा ग्राम था। फिर भी उनको स्वाध्याय करने का बचपन से ही प्रेम रहा है। आठ वर्ष की अवस्था में ही पिताजी का स्वर्गवास हो जाने से व्यापार की दृष्टि से माताजी के साथ पीरोंठ में गये। वहीं पर किशोरी लालजी के दो विवाह हुए। पहिला विवाह सं० १९६८ में हुआ और सं० १९७५ प्रथम पत्नी का स्वर्गवास हो गया। पुनः दूसरा विवाह सं० १९७७ में हुआ और दूसरी पत्नी का भी संवत् १९९२ में स्वर्गवास हो गया।

युवावस्था में किशोरीलाल जी न्यायोचित रीति से व्यापार करते हुए गृहस्थाश्रम के सभी आवश्यक कार्य करते रहे, तथा श्रायकाचार का अच्छी तरह पालन करते हुए संसार से विरक्त रहने लगे, आपने सं० १९९३ में दूसरी प्रतिमा धारण की और क्रमशः ऊपर की प्रतिमायें धारण करते हुए सं० १९९७ में परम पूज्य श्री १००८ मुनिराज विजयसागर जी महाराज से ग्यारहवीं प्रतिमा धारण करके क्षुल्लक दीक्षा ले ली।

उसके तीन माह बाद ही आपने खण्ड वस्त्र का भी परित्याग कर दिया और ऐलक दीक्षा ग्रहण कर ली, सं० २००० में आपने अपने दीक्षा गुरु श्री विजयसागर जी महाराज के साथ में कोटा में चातुर्मास किया और वहीं पर आपने एक मात्र लँगोटी का भी परित्याग करके दिगम्बरी रीक्षा धारण करली। उस समय आपका नाम श्री १०८ विमलसागर जी महाराज रक्खा गया। दीक्षा ग्रहण करने के बाद आप सर्वत्र बिहार कर रहे हैं। आपने अपने धर्मोपदेश द्वारा अनेक प्राणियों को सन्मार्ग पर लगाया है, अनेकों को ब्रत ग्रहण कराये तथा अनेक अजैनों तक से बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, मद्य मांस तथा जुआ आदि अनेक कुब्यवसनों का त्याग कराया है। इसके अतिरिक्त जब सं० २००४ से आप सिद्धवर कूट पधारे तब श्री विशाल कीर्ति महाराज को आपने ऐलक दीक्षा दी तथा पञ्चकल्याणक के समय भोपाल पधारे। वहाँ पर श्री धर्मसागर जी महाराज को क्षुल्लक दीक्षा दी। इस प्रकार आपने अनेक प्राणियों को मोक्षमार्ग और सन्मार्ग पर लगाया है।

आपने इस वर्ष सं० (२००८) वर्तमान मध्य भारत की राजधानी लश्कर (ग्वालियर) में संघ सहित चातुर्मास किया और धर्मोपदेश देकर वहाँ की जैन जैनेतर जनता को कल्याण मार्ग पर लगाया, वहाँ की जनता आपकी चिरऋणी रहेगी।

इसी चातुर्मास के स्मरणार्थ यह गन्थ प्रकाश में आ रहा है।

प्रकाशक महोदय का

परिचय

लश्कर नगर के सुप्रसिद्ध व्यवसायी सेठ कन्हैयालाल जी गंगवाल ने जयपुर राज्यान्तरगत तूँगा नामक ग्राम में सम्वत १९४२ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन सेठ हीरालाल जी के घर जन्म लिया था। एक वर्ष की आयु में ही माता ने इन्हें अकेला छोड़ दिया था, शैषवकाल ग्राम ह में व्यतीत हो रहा था कि सम्वत् १९५० में लश्कर निवासी सेठ हीरालाल जी गंगवाल ने इन्हें अपना दत्तकपुत्र बना लिया। श्री हीरालाल जी गंगवाल एक महान धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे इसलिये लोग इन्हें भगत जी के नाम से पुकारते थे, ये अपने निर्वाह के लिये चन्देरी तथा बनारसी जरी का व्यापार करते थे। सेठ हीरालाल जी सं० १९५३ में कार्तिक शुक्ला एकादशी के दिन अपने दत्तकपुत्र श्री कन्हैयालालजी को गृह का समस्त भार सौंपकर इस संसार से चल बसे, कुशल पुत्र ने भी अपने पितृव्यवसाय को चालू रखते हुए नगर में एक गोटा फैक्टरी भी स्थापित करदी जो अपनी ख्यातिपूर्ण सत्यता के लिये प्रसिद्ध है।

सेठ सा० पं० लक्ष्मीचन्दजी के मुख्यशिष्य हैं। व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् श्री कन्हैयालाल जी की प्रतिभा दिनोदिन बढ़ती गई। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर राज्य ने चेम्बर आफ कॉमर्स के वायस प्रेसीडेन्ट के स्थान पर सम्मानित किया तथा कृष्णराव बल्देव बैंक के खजाञ्ची भी बना दिये गये, दूसरी ओर साहूकारन बोर्ड के सदस्य भी चुन लिये गये। आपकी धार्मिक परोपकारी जीवन का ही फल है कि आप नगर के ख्यातिप्राप्त श्रीमानों में से एक हैं। आपके तीन पुत्र हैंः-

प्रथम श्री प्रकाशचन्द्र जी तथा तृतीय पुत्र श्री निरंजनलाल जी पवित्र धार्मिकता के साथ-साथ व्यवसाय क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं और द्वितीय पुत्र श्री माणिकचन्द्रजी एम०ए०, एल० बी नगर के प्रसिद्ध एडवोकेट होन के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में कुशल सेनानी का कार्य कर रहे हैं। हम श्रीमान सेठ कन्हैयालालजी के पारिवारिक जीवन के उज्ज्वल भविष्य की शुभकामना करते हैं। इत्यलम्

निवेदक
स० सिंघई रतनचन्द्र जैन
बामौर कलाँ (मध्यभारत)

विषयानुक्रमणिका

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
१	मंगलाचरण	१
२	कर्त्ता का संकल्प	१
३	मनुष्य गति दुर्लभ वर्णन	१
४	देव गति वर्णन	१
५	तिर्यञ्च गति वर्णन	३
६	बोधि दुर्लभ प्राप्ति	३
७	सम्यक् दर्शन स्वरूप	३
८	मोक्ष स्वरूप	४
९	मोक्षमार्ग	४
१०	सम्यग्दर्शन स्वरूप	४
११	सम्यग्ज्ञान	४
१२	सम्यक् चारित	४
१३	मिथ्यात्व कथन	५
१४	सम्यक्त्व एवं भेद वर्णन	५
१५	क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक्त्व	६
१६	समकित के बाह्य कारण	६
१७	अन्तरंग कारण	६
१८	पञ्चलब्धि	६
१९	परमान कथन	८
२०	सप्तनय के नाम व उनके भेद स्वरूप	११
२१	निश्चै-नै	११
२२	सत्यार्थ विवहार नै	१३
२३	सद्भूत अनुपचरित विवहार नै	१३
२४	सद्भूत उपचरित विवहार नै	१४
२५	असद्भूत अनुपचरित विवहार नै	१४
२६	असद्भूत उपचरित विवहार नै	१४
२७	दोनों नयों का सापेक्ष कथन	१४
२८	आतम-पिछान	१४
२९	संयोग विचार दृष्टान्त	१४

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
३०	निश्चय-व्यवहार कथन	१५
३१	त्रिविध आत्म कथन	१५
३२	पच्चीस दोष	१७
३३	देव-मूढता	१७
३४	धर्म-मूढता	१७
३५	गुरु-मूढता	१७
३६	षटनायतन	१७
३७	अष्ट मद	१७
३८	अष्ट-दोष	१७
३९	सप्त तत्त्व नाम	१८
४०	जीव-तत्त्व निर्णय	१९
४१	त्रिविध चेतन	१९
४२	प्रश्न-शून्यमती का	१९
४३	प्रश्न-क्षणिकवादी का	१९
४४	प्रश्न-भक्तवादी का	२०
४५	नित्य विस्तार	२१
४६	अनेकान्त में सप्तभंग	२२
४७	जीव द्रव्य निर्णय	२२
४८	जीव-अधिकार कथन	२२
४९	उपयोग-अधिकार कथन	२२
५०	अरूपी-अधिकार कथन	२२
५१	करता-अधिकार कथन	२२
५२	स्वदेह प्रमाण-अधिकार कथन	२३
५३	समुद्घात भेद	२३
५४	समुद्घात का मूल लक्षण	२३
५५	वेदना-समुद्घात	२३
५६	कषाय-समुद्घात	२३
५७	तनबिकुर्वणा-समुद्घात	२३
५८	मारनान्त-समुद्घात	२३
५९	तैजस-समुद्घात	२३
६०	आहारक-समुद्घात	२३
६१	केवली-समुद्घात	२४
६२	संसारी-अधिकार कथन	२४

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
६३	सिद्ध-अधिकार कथन	२४
६४	ऊर्द्ध गमन-अधिकार कथन	२४
६५	अजीव द्रव्य कथन	२४
६६	पुद्गल लक्षण	२४
६७	अणु कथन	२४
६८	खन्ध कथन	२५
६९	पुद्गल खन्ध के छह भेद	२५
७०	धर्म द्रव्य कथन	२६
७१	अधर्म द्रव्य कथन	२६
७२	काल द्रव्य कथन	२६
७३	महूर्त्त कथन	२६
७४	अन्तर-महूर्त कथन	२६
७५	पूर्व संख्या कथन	२७
७६	वसु संख्या कथन	२७
७७	व्योवहार पल्य कथन	२७
७८	रोम संख्या अंक बन्ध	२७
७९	अंक रचना	२७
८०	उद्धार पल्य	२७
८१	द्वीप-सागर संख्या	२७
८२	अद्धा पल्य कथन	२७
८३	सागर प्रमाण	२७
८४	सूच्यांगुल कथन	२८
८५	प्रतरांगुल कथन	२८
८६	घनांगुल कथन	२८
८७	श्रेणी कथन	२८
८८	जग-परतर कथन	२८
८९	लोक घन कथन	२८
९०	अर्द्धपुद्गल परावर्तन कथन	२८
९१	आकास द्रव्य कथन	२८
९२	अधो लोक घन	२९
९३	ऊर्द्ध लोक घन	२९
९४	वात-वलय	२९
९५	त्रस-नाड़ी वर्णन	२९

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
९६	ऊर्द्ध-लोक वर्णन	३०
९७	मध्य-लोक पञ्चाशिका वर्णन	३३
९८	अधो-लोक वर्णन	३४
९९	षट्द्रव्यनि का गुण परजाय कथन	३४
१००	गुण कथन	३४
१०१	सामान्य गुण नाम	३५
१०२	परजाय कथन	३५
१०३	शुद्ध गुण-परजाय कथन	३५
१०४	षट् द्रव्यनि प्रति द्वादश भेद	३५
१०५	युक्ति विंशका	३६
१०६	आश्रव तत्त्व वर्णन	३७
१०७	पन्द्रह योग वर्णन	३७
१०८	बारह अविरत कथन	३७
१०९	पञ्च मिथ्यात	३८
११०	अनन्तानु अपरत्याख्यान कथन	३८
१११	आश्रव अष्टोत्तरीक	३८
११२	मूल-फाँकी कथन	३८
११३	मूल क्रिया के पाँच नाम	३९
११४	प्रथम; पाँच साम्परायिक क्रियायें	३९
११५	द्वितीय; पाँच कायिकी कियायें	४०
११६	तृतीय; पाँच दुःक्रियायें	४०
११७	चतुर्थ; पाँच अनाकांक्षि क्रियायें	४१
११८	पञ्चम; पाँच अनिवृत क्रियायें	४१
११९	जीव-अधिकरण कथन	४१
१२०	अजीव-अधिकरण	४२
१२१	ग्यानावरणी के आश्रव	४२
१२२	दर्शनावरणी के आश्रव	४३
१२३	असाता वेदनी के आश्रव	४३
१२४	साता वेदनी के आश्रव	४३
१२५	दर्शन मोह के आश्रव	४३
१२६	चारित्र मोह के आस्रव	४३
१२७	आयु कर्म के आश्रव	४४
१२८	नाम कर्म के आश्रव	४४

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
१२९	गोत्र कर्म के आश्रव	४४
१३०	अन्तराय कर्म के आश्रव	४४
१३१	बन्ध तत्त्व कथन	४४
१३२	प्रकृति बन्ध दृष्टान्त	४६
१३३	मूल प्रकृति में अन्तर प्रकृति कथन	४६
१३४	आठ कर्मनि की स्थिति उत्कृष्ट कथन	४८
१३५	अनुभाग कथन	४८
१३६	प्रदेश बन्ध कथन	४८
१३७	संवर तत्त्व कथन	४८
१३८	निर्जरा तत्त्व कथन	४८
१३९	मोक्ष तत्त्व कथन	४९
१४०	निक्षेपनि का नाम	४९
१४१	नाम निक्षेप	४९
१४२	थपना निक्षेप	४९
१४३	द्रव्य निक्षेप	५०
१४४	नो-आगम भेद	५०
१४५	ग्यायक नो-आगम द्रव्य	५०
१४६	नो-आगम भावी द्रव्य	५०
१४७	नो-आगम तद्-व्यतिरक्ति भेद	५०
१४८	दूजा; आगम-द्रव्य निक्षेप	५०
१४९	आगम-भाव निक्षेप	५०
१५०	निरदेशादि विधान	५२
१५१	निर्देश कथन चौबीस ठाना	५२
१५२	लेश्या कथन	५४
१५३	अन्यकृत प्राचीन जीवसमास	५५
१५४	पर्याप्त कथन	५५
१५५	पर्याप्ति	५६
१५६	प्राण एवं संज्ञा	५६
१५७	उपयोग एवं ध्यान	५६
१५८	आश्रव	५७
१५९	योनि कथन	५७
१६०	कुल कोड़ि कथन	५७
१६१	स्वामित्व कथन	५७

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
१६२	एकेन्द्री वर्णन	५८
१६३	योनि-जाति कथन	५८
१६४	वे इन्द्री कथन	५८
१६५	ते इन्द्रिय कथन	५८
१६६	चौ-इन्द्रिय कथन	५९
१६७	पञ्चेन्द्रिय कथन	५९
१६८	नरक गति कथन	५९
१६९	तिर्यञ्च गति कथन	६०
१७०	मनुष्य गति कथन	६१
१७१	देव गति कथन	६१
१७२	साधन कथन	६२
१७३	दण्डक गति कथन	६३
१७४	आगति कथन	६३
१७५	अधिकरण कथन	६४
१७६	स्थिति कथन	६४
१७७	जघन्य आयु कथन	६४
१७८	विधान भेद कथन	६४
१७९	सत्संख्यादि कथन	६५
१८०	चौदह गुणस्थानों के नाम	६६
१८१	पहला; मिथ्यात्व गुणस्थान	६६
१८२	अविद्या भाव का लक्षण	६६
१८३	अतत्त्व का स्वरूप	६६
१८४	जगत सन्मुख, शिव विमुख	६७
१८५	मिथ्यात्व प्रति चौबीस ठाना	६७
१८६	बन्ध प्रकृति कथन	६८
१८७	बन्ध विछति	६८
१८८	प्रथम गुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति	६९
१८९	प्रथम गुणस्थान में उदै-उदीरणा	६९
१९०	दूसरा; सासादन गुणस्थान	६९
१९१	दूसरे गुणस्थान में उदै-उदीरणा	७१
१९२	तीसरा; मिश्र गुणस्थान	७१
१९३	तीजा गुणस्थान प्रति चौबीस ठाना	७१
१९४	तीजा मिश्र गुणस्थान में बन्ध	७१

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
१९५	तीसरे गुणस्थान में उदै-उदीरणा	७२
१९६	चौथा; अविरत गुणस्थान	७२
१९७	चितवन पच्चीसी	७२
१९८	अरिहन्त गुण	७४
१९९	जन्म के दश अतिशय	७४
२००	केवल ज्ञान के दश अतिशय	७४
२०१	देवकृत चौदह अतिशय	७५
२०२	अष्ट प्रातिहार्य	७५
२०३	अनन्त चतुष्टय	७५
२०४	अष्टादश दोष	७५
२०५	सिद्ध गुण	७६
२०६	आचार्य गुण	७६
२०७	उपाध्याय गुण	७६
२०८	साधु गुण	७६
२०९	आर्यिकाओं के महाव्रत	७७
२१०	समकित दृष्टान्त	७९
२११	सम्यक्त्व की स्थिति	७९
२१२	अचल-चलाचल श्रद्धान	८०
२१३	सम्यक्त्वी की पहिचान	८०
२१४	जिनमत के तीन चिन्ह	८०
२१५	चौथा गुणस्थान प्रति चौबीस ठाना	८०
२१६	चौथा गुणस्थान में बन्ध-उदय विछति	८१
२१७	बन्ध विषैं विछति	८१
२१८	उदय	८१
२१९	उदय विछति	८१
२२०	सत्ता	८२
२२१	शुभ लक्षण	८२
२२२	अशुभ लक्षण	८२
२२३	पञ्चम गुणस्थान	८३
२२४	श्रावक के इकईस गुण	८३
२२५	बाईस अभक्ष्य	८३
२२६	वनस्पती प्रति जीवन	८३
२२७	षट् हिंसा कर्म	८३

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
२२८	अवर (दूसरे) त्याग	८४
२२९	श्रावक की दिनचर्या	८५
२३०	जिन मन्दिर में निषेध कार्य	८६
२३१	अलीन कर्म	८६
२३२	ग्यारह प्रतिमा के नाम	८७
२३३	पहली; दर्शन प्रतिमा	८७
२३४	आठ मूलगुण	८७
२३५	सात व्यसन	८७
२३६	सप्त व्यसन स्वरूप	८७
२३७	दूजी; व्रत प्रतिमा में बारा व्रत आदि स्वरूप	८९
२३८	पञ्च अणुव्रतों के नाम	८९
२३९	पहला; अहिंसाणुव्रत	८९
२४०	हिंसा का लक्षण	९०
२४१	अहिंसाणुव्रत के पाँच अतिचार	९१
२४२	दूसरा; सत्याणुव्रत	९२
२४३	सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार	९२
२४४	तीसरा; अचौर्य अणुव्रत	९३
२४५	अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार	९४
२४६	चौथा; ब्रह्मचर्याणुव्रत	९४
२४७	ब्रह्मचर्याणुव्रत के पाँच अतिचार	९४
२४८	पाँचवाँ; परिग्रह परिमाण अणुव्रत	९५
२४९	परिग्रह परिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार	९५
२५०	सप्तशील व्रत कथन	९६
२५१	दिग्व्रत कथन	९६
२५२	दिग्व्रत के पाँच अतिचार	९६
२५३	देशव्रत कथन	९६
२५४	देशव्रत के पाँच अतिचार	९७
२५५	अनर्थदण्ड व्रत कथन	९७
२५६	अनर्थदण्ड व्रत कथन	९७
२५७	अनर्थदण्ड व्रत के पाँच भेद	९७
२५८	अनर्थदण्ड व्रत के पाँच अतिचार	९७
२५९	चार शिक्षा व्रतों के नाम	९८
२६०	सामायक व्रत	९८

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
२६१	सामायक व्रत के पाँच अतिचार	९८
२६२	प्रोषधोपवास व्रत	९८
२६३	प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार	९८
२६४	भोगोपभोग परिमाण व्रत	९९
२६५	अतिथि संविभाग व्रत	९९
२६६	नवधा भक्ति के नाम	९९
२६७	अतिथि संविभागव्रत के पाँच अतिचार	१००
२६८	सल्लेखना व्रत	१००
२६९	सल्लेखना व्रत के पाँच अतिचार	१०१
२७०	चारों दानों का महात्म्य	१०१
२७१	तीजी; सामायिक प्रतिमा	१०२
२७२	चौथी; प्रोषधोपवास प्रतिमा	१०२
२७३	पाँचवीं; सचित्त त्याग प्रतिमा	१०२
२७४	छठीं; रात्रि भुक्ति या दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा	१०२
२७५	सातवीं; ब्रह्मचर्य प्रतिमा	१०३
२७६	नववाड़ि	१०३
२७७	आठवीं; आरम्भ त्याग प्रतिमा	१०३
२७८	नवमीं; परिग्रह त्याग प्रतिमा	१०३
२७९	दशवीं; अनुमति त्याग प्रतिमा	१०३
२८०	ग्यारहवीं; उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा	१०३
२८१	देशव्रत में नाँहि	१०४
२८२	देशव्रत में बन्ध-उदै-सत्ता	१०५
२८३	छटाँ; प्रमत्त गुणस्थान	१०५
२८४	छठवें गुणस्थान में चौबीस ठाना	१०८
२८५	छठवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता-उदीरणा	१०९
२८६	सातवाँ; अप्रमत्त गुणस्थान	११०
२८७	सातवें गुणस्थान में चौबीस ठाना	११०
२८८	सातवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता	११०
२८९	आठवाँ; अपूर्वकरण गुणस्थान	१११
२९०	आठवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता	१११
२९१	नववाँ; अनिवृत्तिकरण गुणस्थान	११२
२९२	नववें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता विछति	११२
२९३	दशवाँ; सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान	११३

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
२९४	दशवें गुणस्थान में चौबीस ठाना	११३
२९५	दशवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता	११३
२९६	ग्यारहवाँ; उपशान्त मोह गुणस्थान	११४
२९७	ग्यारहवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता	११४
२९८	बारहवाँ; क्षीणमोह गुणस्थान	११४
२९९	बारहवें गुणस्थान में चौबीस ठाना	११४
३००	बारहवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता	११५
३०१	तेरहवाँ; सयोग केवली गुणस्थान	११५
३०२	तेरहवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता	११५
३०३	पन्द्रह प्रमाद कथन	११६
३०४	कषाय पच्चीस	११७
३०५	विकथा पच्चीस	११७
३०६	साढे सैंतीस हजार प्रमाद	११७
३०७	अस्सी भेद प्रमाद	११७
३०८	शील के अठारा हजार भेद; दो प्रकार से	११७
३०९	दश विधि जीव	११८
३१०	चौरासी लाख उत्तरगुण	११८
३११	पाँच प्रकार चारित्र	११९
३१२	पञ्च व्रत भावना	१२०
३१३	अहिंसा व्रत का स्वरूप	१२०
३१४	अहिंसा व्रत की पाँच भावना	१२१
३१५	सत्य व्रत का स्वरूप	१२१
३१६	अचौर्य व्रत का स्वरूप	१२१
३१७	अचौर्य व्रत की पाँच भावना	१२१
३१८	ब्रह्मचर्य व्रत का स्वरूप	१२१
३१९	ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावना	१२१
३२०	परिग्रह त्याग व्रत का स्वरूप	१२२
३२१	अपरिग्रह व्रत की पाँच भावना	१२२
३२२	षट् आवश्यक	१२२
३२३	मुनि चरित्र	१२२
३२४	तेरह प्रकार का चारित्र	१२२
३२५	पञ्च समिति	१२२
३२६	द्वादश तप	१२२

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
३२७	अनशन तप	१२३
३२८	उनोदर तप	१२३
३२९	व्रत-परिसंख्यान तप	१२३
३३०	रस-परित्याग तप	१२३
३३१	विविक्त-शय्यासन तप	१२३
३३२	काय-क्लेश तप	१२३
३३३	प्रायश्चित तप	१२४
३३४	आलोचना	१२४
३३५	प्रायश्चित लेने की विधि एवं नौ भेद	१२५
३३६	विनय तप	१२५
३३७	वैय्यावृत्य तप	१२५
३३८	स्वाध्याय तप	१२५
३३९	व्युत्सर्ग तप	१२६
३४०	ध्यान तप	१२६
३४१	उत्तम क्षमा धर्म	१२६
३४२	उत्तम मार्दव धर्म	१२६
३४३	उत्तम आर्जव धर्म	१२६
३४४	उत्तम सत्य धर्म	१२६
३४५	उत्तम शौच धर्म	१२७
३४६	उत्तम संयम धर्म	१२७
३४७	उत्तम तप धर्म	१२७
३४८	उत्तम त्याग धर्म	१२७
३४९	उत्तम आकिञ्चन धर्म	१२७
३५०	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म	१२७
३५१	अनित्य भावना	१२८
३५२	अशरण भावना	१२८
३५३	संसार भावना	१२८
३५४	एकत्व भावना	१२८
३५५	अन्यत्व भावना	१२८
३५६	अशुचि भावना	१२८
३५७	आश्रव भावना	१२८
३५८	संवर भावना	१२९
३५९	निर्जरा भावना	१२९

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
३६०	लोक भावना	१२९
३६१	बोधि दुर्लभ भावना	१२९
३६२	धर्म भावना	१२९
३६३	बाईस परीषह	१२९
३६४	क्षुधा परीषह जय	१३०
३६५	तृषा परीषह जय	१३०
३६६	शीत परीषह जय	१३०
३६७	उष्ण परीषह जय	१३०
३६८	दंश-मशक परीषह जय	१३०
३६९	नग्न परीषह जय	१३०
३७०	अरति परीषह जय	१३०
३७१	स्त्री परीषह जय	१३१
३७२	चर्या परीषह जय	१३१
३७३	निषद्या परीषह जय	१३१
३७४	शय्या परीषह जय	१३१
३७५	आक्रोश परीषह जय	१३१
३७६	वध परीषह जय	१३१
३७७	याचना परीषह जय	१३२
३७८	अलाभ परीषह जय	१३२
३७९	रोग परीषह जय	१३२
३८०	तृणस्पर्श परीषह जय	१३२
३८१	मल परीषह जय	१३२
३८२	सत्कार-पुरस्कार परीषहजय	१३२
३८३	प्रज्ञा परीषह जय	१३२
३८४	अज्ञान परीषह जय	१३३
३८५	अदर्शन परीषह जय	१३३
३८६	पञ्च प्रकार मुनि कथन	१३३
३८७	चतुर्दश गुणस्थान	१३७
३८८	गुणस्थान का अनुक्रम	१३८
३८९	संख्या प्ररूपणा	१४०
३९०	नरक गति संख्या	१४१
३९१	पञ्चेन्द्री तिर्यञ्च संख्या	१४१
३९२	मानुष गति संख्या	१४२

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
३९३	देव गति संख्या	१४२
३९४	क्षेत्र प्ररूपणा	१४४
३९५	अधोलोक क्षेत्र प्ररूपणा	१४५
३९६	एक-एक जीव प्रति क्षेत्र	१४५
३९७	मानुष शरीर क्षेत्र	१४६
३९८	अल्प अवगाहन	१४६
३९९	नारकी काय	१४६
४००	देवनि का शरीर क्षेत्र	१४७
४०१	सपरस प्ररूपणा	१४८
४०२	नरक गति का सपरस	१४८
४०३	तिरजग गति का सपरस	१४८
४०४	मानुष गति का सपरस	१४८
४०५	देव गति का सपरस	१४९
४०६	भूधरदास जी का छप्पय	१४९
४०७	गुणस्थान प्रकार	१४९
४०८	काल प्ररूपणा	१५०
४०९	कषाय का उत्कृष्ट काल	१५२
४१०	गुणस्थान प्रति काल	१५२
४११	एक जीव प्रति जघन काल	१५२
४१२	अन्तर प्ररूपणा	१५३
४१३	नरक गति विषैं अन्तर	१५४
४१४	मानुष-तिर्यञ्च गति विषैं अन्तर	१५५
४१५	देव गति विषैं अन्तर	१५५
४१६	दूजै गुणस्थान अन्तर	१५५
४१७	मोक्ष होवा में अन्तर	१५६
४१८	आठ समय में कौन विधि निसरैं	१५७
४१९	भाव प्ररूपणा	१५७
४२०	तिरेपन भाव एवं उनके क्रम से नाम	१५८
४२१	क्षयोपशम के अठारा नाम	१५८
४२२	औदयिक के इक्कीस नाम	१५८
४२३	अल्प-बहुत्व प्ररूपणा	१५९
४२४	सम्यग्दर्शन स्वरूप कथन	१६०
४२५	सम्यग्ज्ञान कथन	१६०

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
४२६	पदार्थों के द्वादश भेद नाम	१६२
४२७	श्रुतज्ञान कथन	१६२
४२८	अंग बाह्य के चौदह प्रकीरण	१६३
४२९	चौदह प्रविष्ट में द्वादश अंग	१६३
४३०	चौदह पूर्व के नाम	१६३
४३१	प्रकीरणक के अक्षर	१६४
४३२	अवधिज्ञान निरूपण	१६५
४३३	मनःपर्ययज्ञान	१६६
४३४	केवल-ज्ञान निरूपण	१६७
४३५	ध्यान रचना निरूपण	१६८
४३६	चारों आर्त्तध्यान के नाम	१६८
४३७	इष्ट वियोग	१६८
४३८	अनिष्ट संयोग	१६८
४३९	पीड़ा चिन्तन	१६९
४४०	निदान बन्ध	१६९
४४१	आर्त्तध्यान के काम	१६९
४४२	चारों रौद्रध्यान के नाम	१६९
४४३	हिंसानन्द	१६९
४४४	मृषानन्द	१६९
४४५	स्तेयानन्द	१७०
४४६	परिग्रहानन्द	१७०
४४७	आर्त्त-रौद्र के स्वामी	१७०
४४८	चारों धर्मध्यान के नाम	१७०
४४९	आज्ञा विचय	१७०
४५०	अपाय विचय	१७०
४५१	विपाक विचय	१७०
४५२	संस्थान विचय	१७०
४५३	चारों धर्मध्यान के स्वामी	१७१
४५४	शुक्ल ध्यान	१७२
४५५	पृथक्त्व वितर्क वीचार	१७२
४५६	एकत्व वितर्क वीचार	१७२
४५७	सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति	१७३
४५८	व्युपरित क्रिया निवृत्ति	१७३

प्रज्ञाश्रमण मुनि

क्रमाँक	विषय	पृष्ठ
४५९	निर्जरा अनुक्रम भेद ग्यारह	१७४
४५०	सिद्धों के अष्ट कर्म नाश, अष्ट गुण प्रगट	१७४
४५१	सिद्धों में; क्षेत्र, काल, गति, लिंग साधनों का कथन	१७५
४५२	ध्यान विषैं चर्चा	१७७
४५३	ध्यान-ध्याता-ध्येय	१७८
४५४	शास्त्र निर्णय	१७९
४५५	अन्त मंगल	१८०

प्रज्ञाश्रमण मुनि

॥ श्री ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ तत्त्वार्थ बोध लिख्यते॥

मंगलाचरण

सोरठा (११-१३ मात्रायें)

सिव-मग दायक भान, कर्म तिमिर गिर के हरन।
सर्व तत्त्वमय ज्ञान, वन्दूँ जिन गुन हेत कूँ ॥१॥

अथ ग्रन्थ कर्त्ता का संकल्प, दोहा (१३-११ मात्रायें)

तत्त्व धारनैं कारनैं, अपनी बुधि अनुसारि ।
कछु चरचा सुनि लिखत हूँ, 'सूत्रन' कूँ उर धारि ॥२॥
यादि-दास्ति-सी करि लई, मेरे राखन याद ।
भूली सुधि करि वाँचियो, मति कीज्यो परमाद ॥३॥
विविध सबद को अर्थ जो, गुरु ढिग सीख्यो होय।
छन्द वाँचिनी शक्ति है, ग्रन्थ पढ़े जो सोय ॥४॥
जो अपूर्व भासै कहूँ, ताँहि अमानत धारि ।
बहुश्रुत जन तैं ठीक करि, लीज्यो वाँहि सँवारि ॥५॥
मूरखता मतिमन्दता, ना चित ईर्षा भाव।
वृथा अवस्था जात है, तातैं जिनमत गाव ॥६॥
वचन कुसम गूँथें बिना, कण्ठ न धारया जाय।
बिन धारें नहि उच्च पद, छन्द रचे पादाय ॥७॥
जो लिखबावौ ग्रन्थ कों, तौ तुम लीज्यौ सोधि।
सोध्याँ बिना अशुद्ध तैं, उलटी विगरै बोधि ॥८॥

अथ मनुष्य गति दुर्लभ वर्णन, चौपई (१५-१५ मात्रायें)

सुखी हुवा चाहो जग माँहि, जल में घृत कहुँ निकसै नाँहि ।
चारूँ गति में फिरै अजान, ताकौं वरनूँ विविध विधान ॥९॥
सुख चाहैं नर-नारी सबै, मान धन तैं सो नाँहि फबै ।
परतखि दुखी लखे धनवान, भूप चोर रुज शोक गिलान ॥१०॥
नदी तडाग सैल वन फिरै, असन पान निद्रा परिहरै ।
पर कूँ पीड़ै प्रापति लहै, बिन प्रापति दुख अधिका दहै ॥११॥
करि नहि सकै मिलै नै भोग, शक्ति हीन कै होहि वियोग ।
जो भागन तैं भोगै भोग, बाढ़े जन्म-मरण दुख रोग ॥१२॥

तन धन त्रिया जगत का मूल, जीव रहै इनके अनुकूल ।
सुनो व्यवस्था तिनकी अबै, कछू विरागता आवै तबै ।।१३।।

छप्पय (११-१३, १३-१३ मात्रायें)

तात बीज माँ रुधिर, दोय मिलि उपजत काया ।
सात धातमय भई, माँहि मल-मूत भराया ।।
वारी पवित्रै करी, धोय जल वसन उठाया ।
ताकूँ नैननि निरखि, परसि तन सठ हरषाया ।।
ओस बूँद जीवन अलप, तामैं सुख किम पाइये ।
सुख तो भेद-विज्ञान में, सो जिन-मत में गाइये ।।१४।।
कठिन गर्भ नव मास, कठिन जोनी तैं निकसन ।
कठिन लग्न शुभ जन्म, कठिन माँ कुच मुख परसन ।।
कठिन दन्त परकास, कठिन विस्फोटक ढरिवो ।
कठिन डाकिनी दृष्टि, ताँहि बचि जोवन भरिवो ।।
मात-तात रहिवो कठिन, कठिन उपद्रव का मिटन ।
मानुष गति दुखदा सबै, बिन जिनमत सुख है कठिन ।।१५।।
धन तैं बाँधव लरैं, दास धन लैं भगि जावैं ।
धन तैं आवैं चोर, भूप धन जाँनि डरावैं ।।
धन तैं करि मदपान, कञ्चनी परतिय राँचै ।
धन तैं आमिष खाय, जुआ धन ही तैं माँचै ।।
छतैं दुखी अनछतैं दुखि, क्रोध कपट करता रहै ।
यातैं सुख नहि धन विषैं, सुख जिनमत समता गहै ।।१६।।
क्रोध कपट की खानि, झूँठ लालच की चेरी ।
सुत पति कूँ तजि देत, कलह का मातुर प्रेरी ।।
मोहराय की सुता, पाप की जननी जानूँ ।
कुगति नर्क की भूमि, स्वर्ग की आगल मानूँ ।।
सब परिग्रह कौ मूल तिय, रोग-सोग की वाटिका ।
"बुधजन" मन राचै न छिन, लखि दावानल हाटिका ।।१७।।

चौपई (१५-१५ मात्रायें)

इष्ट-वियोग अनिष्ट-सँयोग, काल फिरन तैं उपजै रोग ।
ईत-भीत दुखदायक सदा, कर्मभूमि में सुख नहि कदा ।।१८।।
भोगभूमि में ये दुख कहाँ, तातैं सुख दीसत हैं जहाँ ।
सुख सरूप तू जानत नाँहि, जैसे भाष्या जिनमत माँहि ।।१९।।
निज आधीन निराकुल वाँनि, अन्तर अन्त रहित सुख माँनि ।
भोगभूमि सुख भव त्यूँ जाँनि, कर्माधीन अलप परमाँनि ।।२०।।

सर्वगत्या में नरभव सिरैं, जाकी चाहि इन्द्र हूँ करैं ।
ताँहि पाय भोगनि चित देय, रतन गमावै कौड़ी लेय ॥२१॥
नरभव बिन मुनिव्रत नहि धरैं, चारित तप बिन कर्म न झरैं ।
कर्म झरैं बिन होय न मोष, यातैं नर-भव गुन को कोष ॥२२॥

दोहा (१३-११ मात्रायें)

सबै आँन जंजाल तजि, सुनिये "बुधजन" बात ।
काज आपनो करन की, भली मिली है स्यात ॥ २३॥

अथ देव गति, चौपई (१५-१५ मात्रायें)

देवनि में सुख भाषै कोय, नाना विक्रिय भोगनि जोय ।
सो तो है करमाँ आधीन, ताँहि न मानैं बुद्धि प्रवीन ॥२४॥
पर-सम्पति लखि-लखि पछिताव, तिहुँ चवैं तब सोक उपाव ।
आपुहुँ की फुनि थिरता नाँहि, बहुरि डोलना गति-गति माँहि ॥२५॥

अथ तिर्यञ्च गति, चौपई (१५-१५ मात्रायें)

ऐसे भाषत हैं दुरमती, सुखी अग्यानि तिरजग गती ।
ठारा बेर साँस हि मरना, थावर कैसे हि सुख वरना ॥२६॥
पाँचूँ इन्द्री होय न जहाँ, विकल-त्रय कैं सुख हैं कहाँ ।
रहत विचार असैनी जान, तिनकैं कैसे दुख की हान ॥२७॥
पञ्चेन्द्री सैनी है केव, जलचर नभचर थलचर भेव ।
ये तो माँहि-माँहि सतावै, सीत-घाम तैं अति दुख पावै ॥२८॥
भूख-प्यास को सुनें पुकार, मारै तीर किरात सिकार ।
अधिक बोझ तैं लहै न साँस, गाढ़ी बाँधैं गलकै पाँस ॥२९॥
पीरा भई लखै नहि ओर, जतन न बनैं सहैं दुख घोर ।
बग माँछर माँखी तन खाय, तिरजग के दुख कहे न जाय ॥३०॥

अथ बोधि दुर्लभ प्राप्ति, छप्पय (११-१३, १३-१३ मात्रायें)

थित निगोद तैं कठिन, पञ्च-थावर तन भरिवो ।
तिह वे-इन्द्री कठिन-, कठिन ते-इन्द्री धरिवो ॥
चतुरेन्द्री ह्वै कठिन-, कठिन पञ्चेन्द्री मन बिन ।
यातैं सैनी कठिन-, कठिन भू-आरिज मत-जिन ॥
अब निवारि मिथ्यात कूँ, निज आतम निरधार करि ।
जो भूले ऐसे जन्म, तो फुनि-फुनि संसार भरि ॥३१॥

छप्पय (२०-२० मात्रायें)

पञ्च परावृत चक्र जीव आरूढ है ।
मृग ज्यों प्रेरित मोह भूपति गूढ है ॥

बाढ़ै तृष्णा दाह निवारनि कारनैं ।
विषै मृषा सुख का जल रै मरि मारनैं ।।
हेरो सब संसार कहो सुख है कहाँ ।
मोक्ष निराकुल थान सुखी निधि है तहाँ ।।३२।।

चौपई

जनम-मरन चहुँ गति में जहाँ, इन्द्री जनित ज्ञान है तहाँ ।
बाधा सहित अपूरन भोग, जग में सुख मानत किम लोग ।।३३।।
सहज सुभाव अनाकुल वानि, अन्तर-अन्तर हित थिर जानि ।
ऐसा सुख पाया भगवान, वन्दत पावै मोक्ष सुथान ।।३४।।
मोक्ष हेत तुम वन्दन करी, सेवा कैसी है गुन भरी ।
ताका मोहि सरूप बताव, मूरख को श्री गुरु समझाव ।।३५।।

मोक्ष-स्वरूप, दोहा

हुँहें होत हैं होंहिंगे, तीन लोक में इन्द्र ।
सिव-पद के सुख छिनक सम, इनकैं नाँहि अनन्द ।।३६।।
ताके लाभ उपाय का, कहिये परम दयाल ।
जाँहि कथन के सुनत ही, भविजन होय निहाल ।।३७।।

मोक्षमार्ग, चौपई

देव-शास्त्र-गुरु मानि विरत्त, सम्यक् दरसन ज्ञान चरित्त ।
निश्चय तें मारग है मोष, भेदमान जिय पावे दोष ।।३८।।

सम्यक् दर्शन का स्वरूप, चौपई

वर तत्त्वारथ का श्रद्धान, आपा-पर का भेद पिछान ।
स्वसंवेदन करि सुख लहै, सो सम्यक् दर्शन जिन कहै ।।३९।।

सम्यक् ज्ञान का स्वरूप, चौपई

तत्त्वारथ का जान जु पिना, संसै मोह विपरजै बिना ।
सम्यक् दर्शन जुत जो होय, सम्यक् ज्ञान कहै जिन सोय ।।४०।।

सम्यक् चारित का स्वरूप, चौपई

जिन भावनि क्रिया तैं होय, कर्म बन्ध जग कारन सोय ।
तिन भावनि क्रिया का त्याग, सम्यक् चारित सो बड़भाग ।।४१।।

दृष्टान्त, चौपई

ज्यों को जग में आतुरवान, नृप कूँ सेवै करि श्रद्धान ।
ज्यों अपना अनुभव तैं जान, निश्चय पावै मोक्ष सुथान ।।४२।।
जो औषधि को नाँहि पिछान, ताके पथ की रीति न मान ।
फुनि रुचि सरधा बिन जो खाय, वेदन बढ़ै रोग नहि जाय ।।४३।।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

रूपनाम गुनथानक जान, आगम कथन क्रिया पथि ठान ।
क्लेश हरन सरधा तैं सेव, काढ़ै विपत बहुत सुख देव ।।४४।।
ज्ञान पंग नेम तो उपाय, चारित अंधा के सिर थाय ।
आरस हर दरसन कुँ पकरया, भव-वन दऽऽवानल तजि निकरया ।।४५।।

मिथ्यात कथन, चौपई

एक-एक तो मानैं तीन, दोय-दोय में तीन प्रवीन ।
शून्य मती जुत मारग सात, मोक्ष पन्थ बिन सब मिथ्यात ।।४६।।
अजिथा-जिथा भेद नहि धरै, हित-अनहित की ठीक न परै ।
तत्त्वारथ सरधा परिहरै, मिथ्याती उनमत ज्यों फिरै ।।४७।।

सम्यक्त्व का वर्णन एवं भेद, चौपई

लक्षन तत्त्वारथ श्रद्धान, कै अधिगम कै सहजै आन ।
समकित बिन मिथ्यात न जात, गति-गति मँहि मिथ्यात फिरात ।।४८।।
उपदेश्या तें अधिगम होय, बिन उपदेश निसरगज जोय ।
दोयन का कारन सामान, अन्तर-बाहर दोय प्रमान ।।४९।।
प्रथम मिथ्या समै-मिथ्यात, तीजि समकित-प्रकृति मिथ्यात ।
अनन्तानबन्धी विधि च्यार, क्रोध मान छल लोभ प्रकार ।।५०।।
उपसम खै-उपसम खैन का, ये हि नाम तीन समकित का ।
आदि मिथ्याति उपशम करै, खै-उपशम खै नाँहि धरै ।।५१।।

दोहा

अनन्तान की चौकरी, एक भेद मिथ्यात ।
प्रथम हि तो उपशम करै, प्रकृति पञ्च विख्यात ।।५२।।
बहुरि द्रव्य मिथ्यात के, तीन भेद ह्वै जात ।
फुनि जब-जब उपशम धरै, तब उपशम ह्वै सात ।।५३।।
कर्दम माँहीं कतक फल, डारत सुध दरसाय ।
पींदे की रज ऊठि कैं, फुनि कर्दम ह्वै जाय ।।५४।।
ऐसा उपसम रहत है, अन्तर-महुरत माँहि ।
फुनि मिटि फुनि समकित गहै, कैं मिथ्या ह्वै जाँहि ।।५५।।
मोह कर्म निक्षेप की, उदयावलि कैं माँहि ।
बिचले को ऐसौ करैं, भाव विशुद्ध बनाँहि ।।५६।।
नीचे के कुँ घटाय दे, ऊपरि के थमि जाय ।
खाली अँतर-मुहुर्त ह्वै, उपसम कहिये जाय ।।५७।।
बहुरि उदै जो प्रकृति ह्वै, सो ही ह्वै गुनथान ।
मिथ्या तैं मिथ्यात गुन, मिश्र मिश्र तैं जान ।।५८।।

प्रज्ञात्मन मुनि

वेदक सम्यक् प्रकृति तैं, उदै कहा अनँतान ।
जदा होय सासादनी, या विधि जान विधान ।।५९।।

क्षयोपशम और क्षायिक, चौपई

सर्वघात का उदै अभार, क्षय संज्ञा का तबै विचार ।
देशघातकि उदैरु उपसम, ऐसे ह्वै कर्म क्षयोपसम ।।६०।।
सातूँ सत्ता तैं निरमूर, ताकूँ क्षायक भाखत सूर ।
ह्वै केवल श्रुत-केवल पास, उपजै पीछे होय न नास ।।६१।।

दोहा

जैसे विसनी विसन में, खरचत धन तज लाज ।
तैसे सिव हित समकिती, राखै सदा इलाज ।।६२।।

समकित के बाह्य कारण, दोहा

जिन-महिमा जिन-छबि दरस, दुख-वेदन सुर-रिद्धि ।
भव-सुमरण आगम-श्रमन, कारन बाह्य प्रसिद्ध ।।६३।।

अन्तरंग कारण, दोहा

अन्तरंग सम्यक्त्व का, करन-लब्धि है मूर ।
तातैं वरनैं लब्धि कूँ, जैसे भाखी सूर ।।६४।।

पञ्च लब्धि, चौपई

प्रथम क्षयोपसम लब्धि ख्याप्त, पञ्चेन्द्री सैनी परजाप्त ।
दूजि विशुद्धि लब्धि में चाव, पुण्यवन्त कारन है भाव ।।६५।।
तीजी लब्धि देशना वेश, प्रापति मिलै सुगुरु उपदेश ।
आयुकर्म बिन सातुँ जाहर, अन्तह कोड़ा-कोड़ि सागर ।।६६।।
इन की मद्धिम थिति जब होय, लब्धि प्रयोग चतुरथी सोय ।
पञ्चम लब्धि कर्न के चर्न, अधोअपूरव अनिवृतिकर्न ।।६७।।

दोहा

एक-कोड़ के ऊपरै, कोड़ा-कोड़ी माँहि ।
अन्तह कोड़ा-कोड़ि की, संख्या दई बताँहि ।।६८।।
लब्धि आदि की च्यारि जो, अभवि रासि हूँ होत ।
लब्धि पाँचमीं होत तब, सम्यक् होत उदोत ।।६९।।
कर्न नाम परनाम का, ताकी लब्धि जु होय ।
कर्न लब्धि संग्या लहै, भेद तीन विधि सोय ।।७०।।
होत जु भाव विशुद्ध के, अविभागी प्रतिछेद ।
एक समै इक जीव के, आदि अन्त जुत भेद ।।७१।।
जीव और दूजे समै, अधो कर्न ले भाव ।
अविभागी प्रतिछेद तिस, या विधि तैं ह्वै जाव ।।७२।।

आदि अन्त बिन मध्धि के, अविभागी प्रतिछेद ।
बाके याके एक से, अधोकर्न ये भेद ॥७३॥
नाना जिय सापेखि नय, अधोकर्न इस नाम ।
कहूँ मिलै कहूँ अमिल भी, कर्न नाम परिनाम ॥७४॥
नाना जिय अर एक के, ह्वै अपूर्व परिनाम ।
कदा साथ दोऊ धरै, तो समान है ठाम ॥७५॥
सबै जु अनिवृति-करन का, होत विधान समान।
भाव प्रमाण विशुद्धता, यों भाषी भगवान ॥७६॥
इतरोतर वीशुद्धता, भावन की पहिचान ।
घटता-घटता काल है, अन्तर महुरत मानि ॥७७॥
भिन्न-भिन्न फुनि एक का, अन्तर महुरत काल।
अन्त अनिवृत्ति कर्न है, सम्यक् रतन विशाल ॥७८॥

प्रश्न, दोहा

काल-लब्धि बिन होत नहि, याहै साँची बात।
तो उद्यम करवो वृथा, कौन दुखावे गात ॥७९॥
काल-लब्धि छदमस्त कूँ, जानी जात न कोय।
खान-पान के उदिम कूँ, काहे ठानत लोय ॥८०॥

उत्तर, चौपई

सैनी परज्यापत गति च्यारि, अधो ऊर्द्ध मधि सब त्रस-नारि।
छठा काल तैं वर्जित काल, समकित जोगित या का हाल ॥८१॥
ऐसा ह्वै जो आलस करै, उदिम भेद-विज्ञान न धरै ।
ताकै जानूँ लब्धि न कोय, और भाँति जानूँ क्रम सोय ॥८२॥

दोहा

प्रापति केवल में रह्या, अन्तर-महुरत आन ।
दिक्षा उद्यम तें भया, भरथ हि केवल-ज्ञान ॥८३॥
छह महिना आबाध का, सम्यक् उदिम राखि ।
अमरचंद मुनि यों कही, समै-सार में साखि ॥८४॥
भला नर्क का वास यों, जो समकित हो जाय ।
बुरा देव मिथ्यामती, उपजै थावर काय ॥८५॥
समकित जुत तो ग्यान व्रत, साँचा मारग मोख।
बिन समकित जिन लिंग हूँ, है मिथ्या का पोख ॥८६॥
तीन लोक तिहुँ काल में, मिथ्या सो नहि पाप ।
समकित सौं उत्तम नहीं, सुख है आपै-आप ॥८७॥

चौपई

होय निसर्गज तैं सब काज, क्यों उपदेश बतात इलाज।
एक निसर्गज काज न सरै, तीन रतन पूरन सिव करै ॥८८॥
समकित तो द्वै विधि ह्वै जात, ग्यान क्रिया उपदेसे पात।
यों उपदेश सर्व विधि भला, सहजैं तो कोइक को मिला ॥८९॥

दोहा

को बड़भागी जीव के, सहज निसर्गज होय।
अधिगम ह्वै उपदेश तैं, पातैं आगम जोय ॥९०॥
आगम सुनि ग्यानी करै, जोगि-अजोग्य पिछानि।
देव-धर्म-गुरु आदरै, करै अशुभ की हानि ॥९१॥
यों करतै-करतै सही, भाव विसुद्धी पाय।
तबै भेद-विज्ञान करि, समकित लेत उपाय ॥९२॥
क्रिया विरत पुरान का, आगम माँहि बखान।
आगम का अधिकार इक, अध्यातम में जान ॥९३॥

परमान कथन, दोहा

अध्यातम का ग्यान ह्वै, नै-निछेप परमान।
सकलदेश परमान है, एक देश नय जान ॥९३॥
सम्यक्ग्यान प्रमान दो, प्रतखि-परोखि अपार।
द्वि प्रतक्ष्य के भेद हैं, परमारथ - विवहार ॥९४॥
परमारथ के भेद दो, सकल-विकलमय आन।
सकल विसद केवल प्रतखि, सबद विपरजै जान ॥९५॥
विकल प्रतखि अवधी सहित, अर मनपर्जै ग्यान।
सांविवहार प्रतक्षि को, भाखूँ अबै विधान ॥९६॥

चौपई

अवग्रहा ईहा आवाय, धारन इन्द्री मन समदाय।
सांविवहार प्रतखि मति ग्यान, आगम माँहि कहा भगवान ॥९८॥

दोहा

सुनि परोखि परमानता, सुवार्थ-परार्थ दोय।
संमृति प्रतिभीज्ञान त्रक, स्वानुमान निज होय ॥९९॥
जो पहली देखी सुनी, सुमरन संमृति जान।
यो वैसा-वैसा नहीं, सो है प्रतिभीग्यान ॥१००॥
साहचर्य के नेम की, जानैं तर्क पिछान।
साधन लखि सधि हि गहै, स्वानुमान परमान ॥१०१॥

प्रगटै निज आतम थकी, सोइ स्वार्थ परमान।
परार्थ ह्वै परमानता, वचनरूप श्रुतजान ॥१०२॥

दोहा

नाँहि रुकै घट-बढ़ नहीं, नाँहीं कछू अजान।
सकल-प्रतक्ष क्षायक विसद, निश्चल केवल-ज्ञान ॥१०३॥
दीप भान उद्योत बिन, इन्द्री बिन पहिचान ।
अवधिग्यान मनपर्जई, विकल प्रतक्ष परमान ॥१०४॥
इन्द्री-मन के निमित तैं, होत जान पन-ताय ।
सो परोखि मति-श्रुत जुगम, घटै-बढ़ै रुकि जाय ॥१०५॥

चौपई

आयत वानी आगम जान, आयत तैं आगम की मान ।
तातैं आयत लखि पहिचान, जातैं ह्वै गाढा सरधान ॥१०६॥
दोष अठारा बिन सब जान, राजै त्रयोदशम गुनथान ।
भवि जन हितवानी वरषन्त, सो आयत भगवत अरिहन्त ॥१०७॥

प्रश्न, दोहा

बिना देह बाधा रहित, आदि अन्त नहि तास।
ऐसा ईश्वर मानिये, आयत ज्ञान-प्रकाश ॥१॥

उत्तर, चौपई

बिना देह वचन नहीं होय, वचन बिना उपदेश न कोय ।
बिन उपदेश होत नहि भला, आयत तन बिन जोग न सला ॥२॥

प्रश्न, रोला (२४-२४ मात्रायें)

तन धारै अवतार, दुष्ठ कौं ततषिन मारै ।
लहै भोग-उपभोग, भक्त का कारज सारै ॥
ऐसे आयत प्रगट, पाप-पुँय राह बतावै ।
आयु अन्त तन तजै, व्याप्त वेदनि में गावै ॥३॥

उत्तर, कुण्डलिया

करैं भोग-उपभोग जो, धरैं प्रीति अर दोस।
ताके कर्म झरैं नहीं, रहैं आपदा कोस ॥
रहैं आपदा कोस, ग्यान निरमल न प्रकासै ।
सर्व चराचर वस्तु, ताँहीं कुँ कैसे भासै ॥
बिन भासि भासि वृथा, 'बुध' प्रमान कैसे धरैं ।
इसका सेवग बनैं, सो गति-गति फिरवो करैं ॥४॥
को बड़भागी वचन सुनि, आयत तैं उपदेश ।
आपा-पर सरधा गही, तजै मिथ्यात् असेस ॥

तजैं मिथ्यात् असेस, भोगतें राग निवारी।
जथा-शक्ति धरि त्याग, कर्म के बन्धन टारी ॥
मुनि एकाकी भया, दृष्टि-केवल तिस जागी ।
तबै तेरवैं थान, होय आयत बड़भागी ॥५॥

दोहा

संसारी अर मुक्ति की, नाँही आदि न अन्त ।
उपदेशक उपदेश की, परम्परा न मिटन्त ॥६॥

प्रश्न अर उत्तर, चौपई

ऐसे सुनिये लखिये नाँहि, क्यों करि मानुँ मो मन माँहि ।
जैसे राम-रावन हुँ भये, तैसे सरवगि आयत भये ॥७॥
सब ज्ञाता मानुष किम होय, याकी बात कहो जिय सोय ।
हीन-अधिक ज्ञाता अब है हि, तैसे सब के ज्ञाता वै हि ॥८॥
राग-दोष कैसे सब गई, यह तौ कथा सुनी हम नई ।
अबहूँ भासै राग घटाय, उन पुरुषन नुँ सकली मिटाय ॥९॥
सूक्ष्म अविभागी परमानूँ, सूक्ष्म काल के समया जानूँ ।
तथा अनन्ता सूक्षम जीव, धर्म अधर्म अकास अतीव ॥१०॥
अविभागी प्रतिछेद कषाय, दूरवर्ती अतिवस्तु नुँ ठाय ।
अतित अनागत होत पदार्थ, मुनि श्रावक आचार जिथार्थ ॥११॥
पूज प्रतिष्ठा अतिआचार, दोष हुवा ताका प्रतिकार ।
रोग अरोगतना परिहार, बिन आयत किन किया उचार ॥१२॥
ऐसी बाँता आयत कही, आगम अध्यातम में सही ।
ताकी श्रद्धा रुचि परतीत, धरै जीव ता है जगजीत ॥१३॥

प्रश्न-उत्तर, चौपई

पूँछी देखी सारी मही, आयत तो कहुँ है ही नहीं ।
जो तुम देखी सारी जाग, जो तुम ही आयत बड़भाग ॥१४॥
भरतक्षेत्र में आयत घनें, हम तो मानेंगे सब जनें ।
कोऊ थापै कोय उथापि, सबै मानिवो कैसे व्यापि ॥१५॥
सब की आछी-आछी लेनि, बुरी होय सोहि तजि देनि ।
ऐसी मति तुम में है कहाँ, तो तुम ही हो सबतैं महाँ ॥१६॥
इन सब माँहीं उत्तम जान, इष्ट थाप करि है सनमान ।
अब लौं सूना रहा जिहान, तू थापै सो है परधान ॥१७॥
ऐसें कह करि फुनि इम कहा, तुम ही कहो जथारथ कहा ।
जाकै कछु नहीं अभिप्राय, दोष अठारह रहित सुभाय ॥१८॥

चौपाई (१६-१६ मात्रायें)

थिर उपयोग सर्व का ज्ञाता, परिग्रह रहित भक्त दुख त्राता।
अनेकान्त वानी तिस आगम, नै-निछेप करि हौ है मालुम ॥१९॥

दोहा

सकल-देश परमान है, नै इक-देश प्रमान।
बिन सापैछ नै मिथ्या, सापैछा सति मान ॥२०॥

सोरठा

ऐसा है परमान, अंस विविध नै वचन है।
भेद सर्वथा हान, नाम परोजन भेद है ॥२१॥

सप्त नय के नाम, चौपई

नैगम संग्रह फुनि विवहार, रिजूसूत्र अर शब्द प्रकार।
समभिरूढ नै लोक विख्यात, एवंभूत कही नै सात ॥२२॥

पहला; नैगम नय, दोहा

हुवा आगे होयेगा, सब कूँ वरनैं हाल।
फुनि अपूर्ण पूरन करै, नैगम नै की चाल ॥२३॥
आती कार्तिक कूँ कहै, या काती में व्याह।
मुये गये ता तिथि कहै, आज मुये नर नाह ॥२४॥
जावन दीये दूध कूँ, तुरत दही कह देय।
नैगम नय की रीति यह, संकलपित गह लेय ॥२५॥

दूसरा; संग्रह नय, चौपाई

मिलै सजाती धर्म समाना, नाम एक बोलैं बहुथाना।
अन्तरि अन्त भेद ह्वै तोलों, संग्रह में संग्रह है जोलों ॥२६॥

तीसरा; विवहार नय, चौपई

निरखत जुँ ये धरम जहाँ हि, भेद करै संग्रह के माँहि।
नै व्यौहार तहाँ लौं फलै, जोलों संग्रह संग्या मिलै ॥२७॥
चेतन एक द्रव्य जिय जोय, सिद्ध संसारि भाषै दोय।
संसारी थावर त्रस जानि, त्रस सुर नर पसु नारक खानि ॥२८॥
च्यारि वरन मानुष गति माँहि, भेद-भेद में भेद लखाँहि।
ऐसे संग्रह अर विवहार, दोन्यों नै का करो विचार ॥२९॥

चौथा; रिजुसूत्र नय, चौपई

समै स्थायि जो है परजाय, सूक्षम रिजूसूत्र इम गाय।
रिजूसूत्र जु थूल इम लहैं, आयु अन्त लौं मानुष कहैं ॥३०॥

पाँचवाँ; शब्द नय, चौपई

शब्द दोष नै शब्द निवार, जोगि अर्थ कूँ तुरत निहार।
उत्तम-मध्यम एक-अनेक, नारी-पुरुष नपुंसक एक ॥३१॥
कारकादि व्याकरन विकार, गिनैं नाँहि कर अर्थ विचार।
तू है माता तुम मुज तात, आये हम सो सुनिये बात ॥३२॥
उचित होय तो दीजे सारि, अब मैं होस्या समता धारि।
इत्यादिक बहुवचन उचार, शब्द नै करी लेत सुधार ॥३३॥

छटवाँ; समभिरूढ नय, चौपई

बहुत वाचिवो वाचक कोय, एक बाँन कूँ प्रगटै सोय।
गमन करै जुँ जो गो कहिये, सब कुँ त्यागि गाय ही गहिये ॥३४॥
जल तैं निपज जलज कहलाव, जलज नाम सुनि कमल हि लाव।
नाम निरर्थक बहु संसार, समभिरूढ नै करै उचार ॥३५॥

सातवाँ; एवंभूत नय, चौपई

जोलों जैसी किरिया करैं, तो ताकी संग्या धरैं।
एवंभूत नै कुँ सुनि भेव, पूजक कहै पूज तैं देव ॥३६॥

सातों नयों के दो भेद, चौपई

द्रव नैगम संग्रह विवहार, परज्यार्थिक है सेसा-चार।
द्रव परोजन द्रव्यार्थिक का, परजै जानुँ परज्यार्थिक का ॥३७॥
निश्चै आदि बहुरि विवहार, दोऊ तैं अध्यातम सार।
दरस ग्यान चरनमय निश्चै, करे भेद विवहारि परचै ॥३८॥

निश्चै नय, चौपई

पर-सापेक्ष्या रहित अनूप, आदि अन्त बिन अचल अनूप।
निज गुन-परजै भेद न गहै, परम शुद्ध निश्चै नै कहै ॥३९॥

उदाहरन

जीव चतुर्गति सिद्ध समान, शक्ति सर्व में केवल ग्यान।
रिक्त सिद्ध केवल शिववास, कर्मबन्ध मेला जगभास ॥४०॥

दोहा

नै अशुद्ध निश्चै कहै, द्रव के माँहि विकार।
जातैं या विवहार सम, आश्रव की दातार ॥४१॥
दर्श-ग्यान निश्चै मई, सदा शुद्ध हूँ एक।
अणुमात्र कुछ आँन नहीं, निश्चै किये विवेक ॥४२॥

कुण्डलिया

नाँहीं सपरस घ्राण द्रग, नहि रसना नहि कान।
काय वचन मन हूँ नहीं, नहीं क्रोध छल मान ॥

नहीं क्रोध छल मान, लोभ रति वैर न मैं हूँ।
नहीं कर्म नोकर्म, मारगना भेद न मैं हूँ॥
चेतन एक अभेद, सदा रतनत्रय माँहीं।
नवपदार्थ हूँ नाँहि, सात तत्त्वारथ नाँहीं ॥४३॥

अथ सत्यार्थ विवहार नै, चौपई

असत्यार्थ विवहार पिछान, सत्यारथ निश्चै नै जान।
निश्चै नै तैं समकित होय, निश्चै नै में बन्ध न कोय ॥४४॥
सरध्यो सुनूँ अनँत विवहार, निश्चै बिन भर्म्यो संसार।
यातैं ह्वै आपा-पर भेद, अनभौ करि नासै सब वेद ॥४५॥
बिन उपदेश्या सब संसार, मोही माँहि निपुन व्यवहार।
भिन्न एक की कठिन पिछान, यातैं निश्चै कर सरधान ॥४६॥
संस्कृत के बहु सुनैं उचार, काज न करि है चकित गँवार।
वा समुझै वाकि भासा तैं, गुरु व्यौहार उचारै यातैं ॥४७॥
जो जिनमत तू उर में धार, तो दौन्यू में एक न टार।
निश्चै तजै तत्त्व नहि भान, दूजी बिन शिव-पथ की हान ॥४८॥
अधिगम बिन उपेदश न होय, जिन सिद्धान्त बिना नहि सोय।
वचन बिना सिद्धान्त न जोय, नय तैं रहित वचन नहि कोय ॥४९॥
जहाँ कथन इक नै का करैं, दूजी नै तब उर में धरैं।
स्यादवाद अंकित जिन वैन, ता बिन तत्त्व न भासै ऐन ॥५०॥
एक गौन इक मुषि करि कहै, एकहि कूँ नहि जिनमत गहै।
ज्यौं गूजरि दो डोरी गहै, तब दधि मथि के घृत कूँ लहै ॥५१॥

दोहा

सद्भूतासद्भूत है, दो प्रकार विवहार।
अनुपचरित अरु उपचरित, दो-दो करि कैं च्यार ॥५२॥
करैं जीव में कलपना, सो सद्भूत विचार।
आँन वस्तु में कलिप है, असद्भूत विवहार ॥५३॥
किसी भाँति जो सम्भवै, अनुपचरित इम जानि।
असम्भवी सम्भव करै, तो उपचरित बखानि ॥५४॥

अथ सद्भूत अनुपचरित विवहार नै, दोहा

भेद नाँहि परदेश में, तामैं भेद बतात।
संख्या लक्षनु नाम तैं, बहुगन बरनत जात ॥५५॥
अनुपचरित तैं कहत है, नै सद्भुत विवहार।
चारित दर्शन ग्यान गुन, तीन जीव के सार ॥५६॥

अथ सद्भूत उपचरित विवहार नै, दोहा

देव मनुष नारक पशू, रागी-दोषीवान ।
उपचारित विवहार नै, सो सद्भूत बखान ।।५७।।

अथ असद्भूत अनुपचरित विवहार नै, दोहा

गोरा काला ठीगना, अति सुन्दर आकार ।
अनुपचरित विवहार नै, असद्भूत अवधार ।।५८।।

अथ असद्भूत उपचरित विवहार नै, दोहा

मेरो है यह देश पुर, सुत तिय धन भण्डार ।
सो उपचरित बखानिये, असद्भूत विवहार ।।५९।।

दोनों नयों का सापेक्ष कथन, कुण्डलिया

निश्चै नै मुख बिन किये, शुद अनुभो नहि होय ।
पै यामैं ठहर न सकै, तब प्रवृत्ति ले कोय ।।
तब प्रवृत्ति ले कोय, मुख्य व्योहार उपावै ।
उच्चति किरिया करै, अधिक वैराग बढ़ावै ।।
निश्चै नै तैं बन्ध नहि, विवहार ही अरचै ।
तातैं तज विवहार, आदरै ग्यानी निश्चै ।।६०।।

आतम-पिछान अर्थि, दोहा

पुद्गल बिच जग में बसै, यों आतम पहिचान ।
नादिकाल सम्बन्ध है, ज्यों तुष-माष पिछान ।।६१।।

संजोग विचार, दृष्टान्त, दोहा

निन्द-निन्द फुनि-फुनि करै, ताकूँ विसन बताय ।
प्रकट आतमा के विसन, राग-द्वेष की चाय ।।६२।।
राग-द्वेष के विसन कूँ, सेवे जीव कुघाट ।
फँसे बन्ध संसार में, निगैवान हैं आठ ।।६३।।
निगैवान वसुकर्म फुनि, शुभाशुभरु को भेद ।
जबै अशुभ सोची तबै, है व्रत उद्यम छेद ।।६४।।
भाग उदय कछु होत जब, निगैवान शुभ आय ।
उद्यम करने हेत है, नाँहीं देत भगाय ।।६५।।
निगैवान दो जाति पै, छोड़े कोइ न एक ।
दुखदाई वसु है कठिन, यों जिय करो विवैक ।।६६।।
पोसै इष्ट-निष्ट दे, पीड़ा चिन्ता निन्द ।
करै विविध दुख मेरु सम, अशुभ कर्म है रिन्द ।।६७।।
दीन रोय दुख भोगवे, दान सुशामद कीन ।
दवो जानि तब दुख करे, फुनि-फुनि अशुभ नवीन ।।६८।।

राग-द्वेष चित व्यसन में, भर्‍यो-पर्‍यो संसार ।
तो बिन मो दुख ही सहो, दुख मेरो निरधार ।।६९।।
दुख भोगे मानें न दुख, निज आतम सुख जान ।
छोड़े तहँ आवै नहीं, अवसि जाँनि निगवान ।।७०।।
निगैवान शुभ होत तब, मिले भोग-उपभोग ।
सुखी होय उद्यम करै, सम्यक्-दर्शन जोग ।।७१।।
जो शुभ सुख में मगन ह्वै, व्रत उद्यम ना कीन ।
उद्यम बिन निकसे न सो, सहै अशुभ दुख लीन ।।७२।।
जोलों शुभ तोलों करे, उद्यम सम्यक् वृद्धि ।
तो कर्मनि की बन्ध तैं, निकसि बसै शिव सिद्धि ।।७३।।
कर्म खलासी ना दई, मुनि पद लेने जोग ।
सो गेही सम्यक्त्व गहि, करै नीति तैं भोग ।।७४।।

शिष्य-प्रश्न, दोहा

कहो जु प्रवचन सार में, बिन आतम पहिचान ।
वृथा तत्त्व का जानपन, सो कैसा सरधान ? ।।७५।।

उत्तर

जीव तत्त्व सब तत्त्व में, निज-पर द्वै विधि भेद ।
स्वसंवेदन ज्ञान बिन, निरखै अभवि अभेद ।।७६।।
पढ़ै जु ग्यारह अंग लौं, बिन आपा-पर ज्ञान ।
देव होय सिव ना वरै, रुलै चतुर्गति थान ।।७७।।
ये निज आतम ज्ञान बिन, वृथा तत्त्व सरधान ।
आतम पूरव तत्त्व रुचि, सम्यक् तैं निरवान ।।७८।।

निश्चय-व्यवहार कथन, उक्तं च श्लोक

शुद्धबुद्धस्य चिद्रूपा-दन्नस्याभि-मुखी रुची ।
व्यवहारो न च सम्यक्, निश्चयेन तदात्मकं ।।७९।।

भाषा, दोहा

चेतन निर्मल ज्ञानमय, निज आतम रुचिकार ।
पर-जीवादिक तत्त्व प्रति, सो सम्यक् व्यवहार ।।८०।।
जो निज आतम अनुभवै, पर त्यागै पर जान ।
करै तत्त्व श्रद्धान सो, निश्चय सम्यक्वान ।।८१।।

अथ त्रिविधि आतम, चौपाई

जिनवर देव सिद्ध परमातम, सम्यक्त्वी सो अन्तर आतम ।
बहिरातम मिथ्या अज्ञानी, त्रिविधि-आतमा कहै सुज्ञानी ।।८२।।

प्रश्न, दोहा

सम्यक्त्वी तो देव है, पुनि भव धारे सोय ।
आवागमन मिटे नहीं, वृथा परिश्रम होय ॥८३॥

उत्तर, चौपई

नींव बिना नहि मन्दिर होय, त्यौं समकित बिन व्रत नहि कोय ।
समकित ले परिग्रह परिहरै, कर्म हरै तब शिव-तिय वरै ॥८४॥
यथाजात जिन लिंगी नाँहि, तो नहि मोक्ष रुलै जग माँहि ।
पै समकित बिन सुनि जिन लिंग, फिरै जगत ज्यूँ उड़त विहंग ॥८५॥
भले ग्रही जो सम्यक् लीन, बुरो जती ज्यों सम्यक् हीन ।
कैसा प्रभु सम्यक्त्व स्वरूप, लखिये तो मैं सिद्ध स्वरूप ॥८६॥

दोहा

स्वसंवेदन सुख लहै, षट् द्रवि पाँचूँ काय ।
सात तत्त्व श्रद्धान तैं, सम्यक्त्वी हो जाय ॥८७॥

प्रश्न, दोहा

बहुत दिनाँ लौं जे पढ़ैं, ते राखे उनमान ।
समकित मेरे उपज्या, गह लीना सरधान ॥८८॥

उत्तर, चौपई

स्वसंवेदि आतम सरधानि, भरत क्षेत्र में विरले प्रानि ।
कली-काल में दुर्लभ पाँच, ज्ञानार्नव कूँ निरखे बाँच ॥८९॥

दोहा

जिन सम्यक्त्वी के चहन, भाषे आगम वैन ।
सो जाँहीं में पाइये, सो सम्यक्त्वी ऐन ॥९०॥
प्रशम बहुरि संवेगता, करुना आस्तिकवान ।
चार चिन्ह भाषे मुनी, तातैं होय पिछान ॥९१॥
राग-द्वेष ममता कपट, क्रोध लोभ छल मान ।
मन्द होय समभाव तैं, प्रशम भेद सो जान ॥९२॥
तन धन मन इन्द्री विषैं, मात-तात सुत दार ।
मानें अथिर उदास ह्वै, सो संवेग विचार ॥९३॥
अभैदान बस तैं करैं, परवसि करुणा भाव ।
जानें सब जिय आपु सम, मिष्ट वैन हित चाव ॥९४॥
नमें देव अरिहन्त को, आगम गुरु निर्ग्रन्थ ।
आस्तिक निश्चै माँनि है, इष्ट कियो जिन पन्थ ॥९५॥
जो प्रत्यक्ष केवल लखे, आतम गुण-परयाय ।
सो परोक्ष लखि अव्रती, निश्चल सरधा थाय ॥९६॥

उदय जु चारित मोह के, परबस समकितवान ।
व्रत नहि धरैं उदास ह्वै, करै तत्त्व सरधान ।।९७।।
ऐसे समकितवान नर, बसै सदन के माँहि ।
जैसे जल में कमलदल, जल कूँ परसे नाँहि ।।९८।।
गुण अरु दोष पचीस विधि, अधिक कथन विस्तार ।
चिन्ह जानि सम्यक्त्व के, परमागम अनुसार ।।९९।।

अथ पच्चीस दोष, दोहा

मूढ-तीन षटनायतन, आठ-गर्व वसु-दोष ।
धारे दोष पचीस ह्वै, त्याग करन गुण पोष ।।१००।।

अथ देव-मूढता, दोहा

पीपल वर तुलसी तरु, चूला चाकी द्वारि ।
रोडी पृथवी कूप नद, हय गज गऊ कुमारि ।।१०१।।
पितर दिहाडी सीतला, बासिक नवग्रह देव ।
हरि हर ब्रह्मा गजवदन, देव मूढता सेव ।।१०२।।

अथ धर्म-मूढता

शिवरात्रि आदित्य-व्रत, चौथि कनागत-दान ।
फलाहार साधार विधि, धर्म मूढता जान ।।१०३।।

अथ गुरु-मूढता, दोहा

लखि संगति गुरु मूढता, दादू चरण कबीर ।
द्विज सन्यासी से बड़ा, भोपा जिवन फकीर ।।१०४।।

अथ षटनायतन, दोहा

कुगुरु कुदेव कुधर्म फुनि, इनके धारक तीन ।
तिनकी करे सराहना, षट् अनायतन लीन ।।१०५।।

अथ अष्ट-मद, छप्पय

ब्राह्मण म्हाजन जात लियो राजाधिराज कुल ।
हूँ सब जन में पूजि प्रबलता धरै निराकुल ।।
मो सम सुन्दर अंग नाँहि, को बहुरि विबुध मति ।
वाजी गज रथ सुभट, धान-धन भरे कोष अति ।।
पूरव तप यह पद लह्यौ, अज हूँ तप फुनि-फुनि करो ।
अहंकार मद आठजुत, मो सम को तासौं अरो ।।१०६।।

अथ अष्ट-दोष के नाम, दोहा

जिनमत शासन ग्यान में, संशय-शंका जान ।
वाञ्छा इन्द्री-भोग की, काञ्छा दोष पिछान ।।१०७।।

स्नान त्याग मलीन लखी, घिरना मान गिलान।
धरै मोह पर-वस्तु तैं, मूढ दृष्टतावान ॥१०८॥
निर-उपगूहन कहत हौं, चारि संघ में दोष।
ध्यान डिगावन की कुविधि, करै अथिरता पोष ॥१०९॥
जैन धर्म धारीन सौं, उर में राखत रोस।
जिन महिमा लखि ना सकैं, बिन प्रभावना दोस ॥११०॥
या विधि चिन्ह निहारि कैं, समकितवान पिछान।
बिना चिन्ह उपज्या कहै, सो मिथ्याती जान ॥१११॥
तत्त्व बताये आप जो, कौन-कौन हैं नाम।
ताको कथन बताइये, पूछो करि परनाम ॥११२॥

सप्त-तत्त्व नाम, चौपई

जीव अजीव आश्रवा-बन्ध, संवर निर्जर मोष सँमन्ध।
सात तत्त्व इनका सरधान, सो नर सम्यक्-दर्शनवान ॥११३॥

प्रश्न, दोहा

अविनाशी गुण वस्तु सब, भरी लोक में भूर।
तिन में क्यों यह संगृहि, करी और क्यों दूर ? ॥१॥

उत्तर, चौपाई

जावत वस्तु जगत के माँहि, सात तत्त्व के बाहर नाँहि।
पढ़त-पढ़त भासैगी तोय, मोह उदय तैं संशय होय ॥२॥

प्रश्न, दोहा

उत्तम मुक्तिरु निरजरा, ताका वरनन अन्त।
क्यों अनुक्रम जीवादि तैं, सो कहिये शिवकन्त ॥३॥

उत्तर, दोहा

शिववासी उपमा रहित, वरनि सके सो कोय।
वे पद जा मारग लहै, कथन विराजत सोय ॥४॥
कहाँ मुक्ति कहाँ जगत् में, कथन जीव आधार।
जीव तत्त्व को आदि यों, कथन भयो लखिसार ॥५॥
बिन अजीव जिय ना रहै, समय एक जग माँहि।
यों अजीव दूजो गिन्यों, ता पिछानि शिव ताँहि ॥६॥
जिय अजीव के मेल तैं, आश्रव को सम्बन्ध।
आश्रव होतैं होय है, आठ कर्म का बन्ध ॥७॥
फुनि प्रति बन्धक बन्ध को, संवर जिनमत भाय।
ता संवर तैं निरजरा, कर्म नाश शिव जाय ॥८॥

अथ जीव-तत्त्व निर्णय संक्षेप, चौपई

जीवे था जीता है अबै, जीवेगा नाँही छै कबै ।
माँहीं अगन-तताई जैसे, जीव चेतना लक्षण ऐसे ॥९॥

अथ त्रिविधि-चेतन, दोहा

राग-द्वेष बिन मोक्ष में, सिद्ध चेतना ग्यान।
के सम्यक्त्वी ध्यान में, ग्यान चेतना मान ॥१०॥
कर्म-चेतना कर्म-फल, दोऊ जग-जन जान।
ताकै माँहि विशेषता, ताका कहूँ बखान ॥११॥
कर्म-चेतना तिरस के, राग-द्वेष परधान ।
थावर चेतन कर्म-फल, राग गौन तैं जान ॥१२॥

प्रश्न-शून्यमती का, दोहा

पञ्च तत्त्व के मेल तैं, उपजत जीव अनेक ।
सो विनसत जिय विनसि है, पुण्यरू पाप विवेक ॥१३॥

उत्तर, चौपई

तो सुत तिय बिन क्यों दुख लह्यौ, रचिवे कौन कठिन सो कह्यौ।
पुण्य-पाप बिन जो जग होय, रंक-राज पद तो क्यों दोय ॥१४॥
प्रेत भई इक नर की तिया, तिन सब गूढ द्रव्य कह दिया ।
जानत जगत लहत है सोय, जीव नाँहि तो आवे कोय ॥१५॥

प्रश्न-क्षणिकवादी का, दोहा

क्षिन-क्षिन में जिय और ह्वै, मत क्षिन भंगुर माँहि।
करें अवर भोगें अवर, संशय करिये नाँहि ॥१६॥

उत्तर, चौपई

और-और मन छिन-छिन होत, उपजत पञ्च तत्त्व मिलि भोत।
तौ सुछन्द जग चलन न हेत, लखि विसनि नृप दण्ड क्यों लेत ॥१७॥
पूरव दिया करज अब चहै, झगरत गूढ बात जो कहै ।
साखि भरात भरैं सब कोय, तौ जिय बदल कहो किम होय ॥१८॥

प्रश्न, दोहा

पुरुष एक माया विविधि, नाँहि दूजा और।
माया भ्रम नाशै लखै, एक ब्रह्म सब ठौर ॥१९॥

उत्तर, दोहा

जड़-चेतन दो एक नहि, एक न स्वामी दास ।
कुञ्जर कीड़े एक नहि, परगट द्वैत प्रकास ॥२०॥
सत्ता मात्र सु एक है, बहुरि सुजाती एक ।
भिन्न-भिन्न परदेश तैं, निरख्यौ धारि विवेक ॥२१॥

प्रश्न, दोहा

करता ने जैसे रचे, गति सुख-दुख जे कोय।
ता प्रमान भोगे जगत, जिय का कर्‍या न होय ॥२२॥

उत्तर, चौपई

राग-द्वेष परिनत जिय कीन, तब उपजे जड़ कर्म नवीन।
पुनि विराग ह्वै छय करि देत, करता कर्म कहै किम हेत ॥२३॥
करता हरि के करम जु होय, कह्यो जीव करता नहि कोय।
दान ध्यान तप व्रत बहु भाय, करत बतावत क्यों अघ जाय ॥२४॥
जड़ को चेतन नाँहीं करै, चेतन जड़ता नाँहीं धरै।
कोई को-को करता नहीं, आप आपके करता सहीं ॥२५॥

प्रश्न-भक्तवादी का, दोहा

विषय-भोग भोगत सबे, प्रभु की भक्ति समेत।
पाप नाँहि निति पुँनि बढ़ै, यो विधि भाषैं नेत ॥२६॥

उत्तर, दोहा

भोग रचे निज कारनै, बोले प्रभु कै हेत।
या सम कौन अन्याय है, देखो करके चेत ॥२७॥
प्रभु भोगी नहि भोगिये, भोग बड़ी अन्याय।
जो तिय भोगी पूजने, सो तौ अपनी माय ॥२८॥

प्रति प्रश्न, चौपई

जो हम करें भोग उपभोग, सो लखिये प्रभु के संयोग।
प्रभु में हम में को अधिकाय, भक्ति करत अघ कैसे जाय ॥२९॥

प्रश्न, दोहा

इष्ट समरपित यज्ञ जिय, हिंसा अघ नहि धर्म।
हिंसा हिंसाकार जुत, लहै देव पद पर्म ॥३०॥

उत्तर, चौपई

इतने माँहि परम पद होय, तो तप कष्ट सहे फिर कोय।
तिय सुत निज किन होमों जीव, क्यों होमों पशु दीन सदीव ॥३१॥
निज सम सुख-दुख हम को होत, दुख तैं दुख सुख तैं सुख होत।
तातैं हिंसा चिर दुख दोष, त्यागो लगो दया जिय पोष ॥३२॥

प्रश्न, दोहा

आरम्भ माँहि तुम कहो, हिंसा पाप समेत।
मन्दिर रचिवो पूजवो, क्यों वरनो शुभ हेत ॥३३॥

उत्तर, चौपई

विषय भोग अदया हित रोस, ता आरँभ में हिंसा दोस।
निसपृह भक्त भाव वैराग, जो पूजै जिन सो बड़भाग ॥३४॥

पुनः प्रश्न, दोहा

दिव्य धुनि जुत केवली, सो पूजत शिव देत।
छबी अचेतन तुम रची, पूजत वृथा अहेत ॥३५॥

उत्तर, चौपई

नाम-थापना द्रव्यरु भाव, करें निक्षेपा फल समदाय।
चार भेद पूजत अघ जाय, यही चारि हिंसा दुख दाय ॥३६॥

उक्तं च, दोहा

जिन प्रतिमा जिन सारखी, कही जिनागम माँहि।
पै जाकूँ दूषण लगै, वन्दनीक सो नाँहि ॥३७॥

तथा

भूत भविष्यत वरतते, सब जिय हिंसा होय।
तातैं अनँत गुनी बनै, जिन छबि निन्दक जोय ॥३८॥

प्रश्न

समोशरन युत केवली, ताँहि नमें सब कोय।
ताँहीं की छबि लखत ही, नमें सुधी धनि सोय ॥३९॥
क्षुधा त्रिषा हित मोह बिन, रहित लोभ जिनदेव।
निन्दक क्यों पातिग लहै, ह्वै क्यों सुख करि सेव ॥४०॥

उत्तर, चौपई

ह्वै जैसो जिय कारज करै, तैसो ही अधिको विस्तरै।
निज मुख वरन बनावै कोय, काँच प्रगट प्रतिबिम्बत सोय ॥४१॥

दोहा

चित्र पूतरी देख तैं, जैसे जाके भाव।
तिसा बन्ध सहजै बँधै, पुतरी को न स्वभाव ॥४२॥
एक-एक पख एकमत, माने करैं विवाद।
अनेकान्त-मत सर्व पर, परमातम अह्लाद ॥४३॥

अथ नित्य विस्तार, दोहा

घट स्वरूप है अस्ति घट, पट स्वरूप घट नाँहि।
निज निक्षेप में अस्ति घट, पर निक्षेप घट नाँहि ॥१॥
आँन घटनि में यो न घट, है घट निज घट माँहि।
पिण्डि कपाल घट में नहीं, पूरन घट घट माँहि ॥२॥

पूर्वा-पर सम या न घट, वर्त्तमान घट जाँहि ।
वरनादिक घट है नहीं, घटाकार घट माँहि ॥३॥
चतु इन्द्री गोचर न घट, द्रग गोचर घट रूप ।
कुटिल वक्रता घट नहीं, है घट शुद्ध स्वरूप ॥४॥
वाक्य रूप घट है नहीं, वाक्यार्थ घट होय ।
ज्ञान स्वच्छ तो घट नहीं, गे प्रतिबिम्ब घट जोय ॥५॥
विधि निषेध बिन वचन नहि, वचन जितै नय जान ।
सापेक्षा तैं सत्य नय, बिन सापेक्षा हान ॥६॥

अथ अनेकान्त में सप्तभंग, उक्तं च, दोहा

द्रव्य-दृष्टि जिय नित्य है, अथिर न्याय परजाय ।
नित्या-नित्य हुँ माँनि पुनि, व्यक्त कह्या नहि जाय ॥७॥
नित्य अवाँचि कथञ्चि ज्यों, त्यों ही अथिर अवाँच ।
नित्या-नित्य अवाँचिता, सात भंग यो वाँच ॥८॥

तथा जीव द्रव्य निरणय हेतु, उक्तं च, दोहा

जिय उपयोगी रूप-बिन, करता देह-प्रमान ।
भुगता संसारी बहुरि, सिद्ध ऊर्द्धगति जान ॥१॥

अथ जीव-अधिकार, दोहा

इन्द्री सासोसास बल, आव च्यारि धर प्रान ।
जिय जीवै व्योहार नै, निश्चै चेतन प्रान ॥२॥
संसारी तिहुँ काल में, ऐसे जीवत जीव ।
सुख सत्ता अवबोध चिद, जिय सिव बसै सदीव ॥३॥

अथ उपयोग-अधिकार, दोहा

चक्षू बिन-चक्षू अवधि, केवल दरसन च्यारि ।
मति श्रुति अवधि प्रकार द्वै, ग्यान-अग्यान निहारि ॥४॥
मनपरजै केवल सहित, होत आठ विधि ग्यान ।
भेद कहे उपयोग कै, नै व्योहार सुजान ॥५॥
शुद्ध जीव चिद्रूप कै, नय निश्चै उपयोग ।
केवल दर्शन ग्यान गुन, जन्म-मृत्यु नहि रोग ॥६॥

अथ अरूपी-अधिकार, दोहा

कर्म बन्ध में रूप जुत, निश्चै रूप न होय ।
पुद्गल में है बीस गुन, मिलै न जिय में कोय ॥७॥

अथ करता-अधिकार, दोहा

करता जिय व्यौहार नै, राग-दोष समुदाय ।
निश्चै आतम ग्यानमय, करता कह्या सु जाय ॥८॥

अथ स्वदेह प्रमान-अधिकार, दोहा

चेतन नय व्यौहार में, लघु-गुरु देह प्रमान।
होत दीप की जोति ज्यों, भाजन के परमान ॥९॥
निश्चै दरवि तनै विषैं, लोक प्रदेश प्रमान।
समुद्घात विधि कथन को, जिनवर कह्या विधान ॥१०॥

अथ समुद्घात भेद, चौपई

प्रथम वेदना बहुरि कषाय, तन विकुर्वना तीजा गाय।
मारनान्त तैजस विख्यात, आहारक केवल जुत सात ॥११॥

समुद्घात का मूल लक्षण, दोहा

मूल सरीर तजैं बिना, निकसै जीव प्रदेश।
फुनि ताँहीं में सञ्चरै, समुद्घाति या भेस ॥१२॥

अथ वेदना समुद्घात, दोहा

दुसह वेदना भोग तैं, निकसै जीव प्रदेश।
मरन तुल्य ह्वै जात फुनि, वेदन घटै प्रवेश ॥१३॥

अथ कषाय समुद्घात, दोहा

रिपु विध्वंस कषाय धरि, क्रोधित आकुल होय।
बाहरि निकसै अंस निज, स्व-पर ग्यान नहि कोय ॥१४॥

अथ तन विकुर्वण समुद्घात, दोहा

रिद्धिवन्त नर-नारकी, देव विक्रिया ठानि।
प्रगटै बाहरि अंस निज, तन विकुर्वना जानि ॥१५॥

अथ मारनान्त समद्घात, दोहा

मरती विरियाँ जीव के, बाहरि कढ़ैं प्रदेश।
बाँधी गति के परस कौं, बहुरि होत परवेश ॥१६॥

अथ तैजस समुद्घात, दोहा

तैजस मुनि कैं होत है, लषि शुभ-अशुभ विकार।
दीरघ द्वादश जोजनौं, नव जोजन विस्तार ॥१७॥
निकसै वाँमै कन्ध तैं, अशुभ रूप विकराल।
वैरी थल विध्वंस करि, मुनि कूँ नाषै वाल ॥१८॥
निकसै कन्धै दाहिनैं, शुभग रूप शुभ जान।
दुर-भिक्ष्यादि निवारि दुष, फुनि पैसे निज थान ॥१९॥

अथ अहारक समुद्घात, दोहा

जबै छटै गुनथान में, ह्वै संसै उद्योत।
मिलै न दर्शन केवली, तबै अहारक होत ॥२०॥

एक हाथ तन फटक सम, मुनि मस्तक तैं होय।
तहाँ जाय जहाँ केवली, निरखि बाहुँडै सोय ॥२१॥

अथ केवली समुद्घात, दोहा

पहले दण्ड कपाट फुनि, प्रतर हि पूरन च्यारि।
विस्तारन संकोच विधि, आठ समै में धारि ॥२२॥
मारनान्त आहार का, गमन एक दिशि ओर।
समुदघात बाकीन का, गमन दहूँ दिस ठोर ॥२३॥
आठ समै केवल तनैं, सेस समै संख्यात।
निकसै पैसे वारि ज्यौं, समुद लहर विख्यात ॥२४॥

॥ इति समुद्घात कथन ॥

अथ संसारी-अधिकार, दोहा

जिय संसारी दोय विधि, थावर जंगम रूप।
कर्म बन्ध व्यवहार में, करम रहित सिव भूप ॥२५॥

अथ सिद्ध-अधिकार, दोहा

कछुक हीन तन चरम तैं, आतम के परदेश।
वसु गुन जुत वसु कर्म बिन, सिवपुर में परवेश ॥२६॥
सिद्ध जीव व्यवहार नै, क्षय उतपति थिति रूप।
नर भव तजि सिव गति लई, अविचल सिद्ध सरूप ॥२७॥

अथ ऊर्द्धगमन अधिकार, दोहा

जीव बन्ध बिन ऊर्द्धगति, समै माँहि सिव जाय।
ज्यों तूवी फल लेप बिन, तिरै वारि पै आय ॥२८॥
जीव तत्त्व अस्तित्त्व हित, नव विधि वरनें भेद।
भाषा पास-पुरान में, करन मिथ्यात उछेद ॥२९॥

अथ अजीव द्रव्य, दोहा

जड़ चेतनता रहित है, पाँच भेद हैं तास।
पुद्गल धर्म अधर्म फुनि, काल द्रव्य आकास ॥१॥

अथ पुद्गल का लक्षण, दोहा

पुद्गल जो पूरै-गलै, द्वै विधि भेद बखान।
प्रथम अणू सुक्षम बहुरि, दूजो खन्ध निधान ॥२॥

अथ अणु कथन, दोहा

पुद्गल परमानूँ दरव, अविभागी अविनास।
वरन गन्ध रस परस द्वै, सहित लोक में वास ॥३॥
षट् कूणी पूरै-गले, इन्द्री गोचर नाँहि।
बन्धरूप कारक कह्यो, परमाणूँ के माँहि ॥४॥

अथ खन्ध कथन, दोहा

मिले अनन्तानन्त अणु, सो अवसंग विधान ।
वसु अवसंग मिलै तबै, सन्नासन्न प्रमान ॥५॥
आठ जु सन्नासन्नि मिलि, तुटरेणु निरधारि ।
वसु तुटरेणु के मिले, त्रसरेणु अवधारि ॥६॥
त्रसरेणु तैं वसु गुनूँ, रथरेणु ह्वै सार ।
रथरेणु वसु संग्रहै, भोगभूमि को वार ॥७॥

प्रश्न-उत्तर, दोहा

या परमानूँ के कथन, अनवस्था-सी होय ।
तो तू सुनि दृष्टान्त इक, सन्दै रहै न कोय ॥८॥

दृष्टान्त, दोहा

कोटि औषधि ल्याईये, सरसूँ-सरसूँ मान ।
महिन पीसि करि लीजिये, मात्रा सरसूँ मान ॥९॥
कहो यहै मात्रा विषै, अंश कौन की नाँहि ।
तैसे नन्तानन्त अणु, निवसै क्षेत्रन माँहि ॥१०॥
भोगभूमि तैं अठगुनो, मध्यभूमि को केस ।
मध्यभूमि वसु केस सम, केस जघन को वेस ॥११॥
जघन्यभूमि के केस वसु, कर्मभूमि शिशु वार ।
लीख जूव जो आंगुलनि, वसु-वसु गुने विचार ॥१२॥
उत्सेधांगुल याँहि तैं, सहस्त्रार्द्ध गुनमान ।
परमानांगुल होत है, आत्मांगुल निजमान ॥१३॥
चौबीसांगुल हाथ ह्वै, धनुष च्यार कर-मान ।
गिनि हजार-द्वै धनुष का, कोस-एक परमान ॥१४॥

चौपाई

कोस सहस द्वै जोजन मोटा, च्यारि कोस का जोजन छोटा ।
राजू तासू है अतिदूरी, या विधि गिनती गिनिये पूरी ॥१५॥

अथ पुद्गल-खन्ध के छह भेद, चौपई

पुद्गल खन्ध भेद षट् जान, बहुत थूल फुनि थूल बखान ।
थूल सुँ सूछिम सूछिम थूल, सूछिम अतिसूछम कहि सूल ॥१६॥

प्रश्न, दोहा

छैदें अतिथूल न मिलै, लकरी ईंट पषान ।
किये भेद मिलि जाय जो, थूल तेल जल ठान ॥१७॥
दीसै नैननि थूल जो, कर तैं छुवे न जात ।
जानि थूलि सूछिम यहै, धूप चाँदनी रात ॥१८॥

गोचर इन्द्री-च्यारि जो, निरखि सकै नहि नैन।
सूछिम थूल बखानिये, गन्ध परस रस वैन ॥१९॥
सूक्षम करम प्रदेश सब, इन्द्री गोचर नाँहि।
अणू-एक स्कन्द-बिन, अति सूछिमता पाँहि ॥२०॥

अथ धर्म द्रव्य, दोहा

सहज गमन जड़-जिय करै, धर्म द्रव्य सहकार।
जैसे जलचर-जिय तरै, ज्यौं जल के आधार ॥२१॥

अथ अधर्म द्रव्य, दोहा

ज्यों सहजै थिति करन कूँ, करै अधर्म सहाय।
त्यों तरु-छाया पथिक कूँ, सहजै ही थितिकार ॥२२॥

अथ काल द्रव्य, दोहा

अगुरुलघु जुत अमिलता, इन्द्री गोचर नाँहि।
निश्चै लक्षिन वरतना, कालाणू के माँहि ॥२३॥

चौपई

भिन्न-भिन्न कालाणू जान, जुदे-जुदे परदेश बखान।
रत्न राशिवत निश्चल लसैं, पूरन तीन लोक में बसैं ॥२४॥

दोहा

निश्चल की परजाय जो, थिर उतपति छैकार।
समयादिक वरतावनी, काल भेद व्यौहार ॥२५॥
अविभागी सूक्षम अणु, बैठी एक प्रदेश।
पहुँचै दुतिय परदेश लौं, तेतैं समयो वेश ॥२६॥
असंख्यात जुक्ता जघनि, समयावलि पहिचान।
सो संख्याती आवली, सासोश्वास प्रमान ॥२७॥
रोग सोग डर नींद बिन, स्वच्छ सुखी स्वाधीन।
ऐसे नर के साँस कूँ, गिनती माँहीं लीन ॥२८॥

अथ महूर्त्त, दोहा

सैंतीसै तहत्रि गिनों, कोविद सासोश्वास।
संग्या आगम कहत है, एक महूरत तास ॥२९॥

अथ अन्तर-महूरत, दोहा

समय घाटि महूरत को, अन्तर-महूरत रिष्ट।
समै-एक अर आवली, जानूँ भेद कनिष्ट ॥३०॥
तीस महूरत राति-दिन, पँदरे दिन पख मान।
दोय पक्षि का मास इक, मास दोय रितु ठान ॥३१॥

महाश्रमण

अयन फिरै ऋतु तीन में, बरस अयन जुग जान ।
सत सहस लखि कोटि अति, संख-असंख्य प्रमान ॥३२॥

अथ पूर्व-संख्या, दोहा

सत्तरि लाख करोड़ मित, छप्पन सहस करोड़ ।
एतै बरस मिलाय के, पूरव संख्या जोड़ ॥१॥

अथ वसु संख्या, चौपई

पल्य तीन सागर सुच्यांगुल, प्रतरांगु फुनि जानि घनांगुल ।
जगश्रेणी जगप्रतरा होत, बहुरि लोकघन वसु विधि गोत ॥२॥

अथ व्योहार पल्य, दोहा

चारि कोस वर कूप खनि, रोम भरो ता माँहि ।
जब सौ बरस वितीत ह्वै, रोम एक निकसाँहि ॥३॥
यों विधि काढ़त रोम सब, बीतैं जेती बार ।
ताको संग्या जिन कही, एक-पल्य व्यौहार ॥४॥

अथ रोम संख्या, अंक-बन्ध, चौपई

चारि एक हि तीन फुनि चारि, पञ्च दोय षट्तीस निहारि ।
तीस आठ लखि बीस सु बात, त्रिन इक सात-सात फुनि सात ॥५॥
चतु नौ पञ्च एक दुव अंक, इक नो दो परिमाँडि निसंक ।
अष्टादश बिन्दी विस्तार, कूप-रूप संख्या निरधार ॥६॥

अथ अंक रचना

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७ ।
४९५१२१९२०००००००००००००००००० ॥

अथ उद्धार पल्य, दोहा

असंख्याते करोड़ मित, बरसों के समयान ।
गुनत अंक व्यवहार पल, ह्वै उधार पलि मान ॥७॥

अथ द्वीप-सागर संख्या, दोहा

कोड़ाकोड़ि पचीस गिन, पलउद्धार प्रवीन ।
ताकै सम मधिलोक में, द्वीप-उदधि लखि लीन ॥८॥

अथ अद्धा पल्य, दोहा

बरस असंखि प्रमान के, लीजै समय सुजान ।
तातैं गुन उद्धार पलि, अध्दा ह्वै परमान ॥९॥

अथ सागर प्रमाण, दोहा

पलि दस कोड़ाकोड़ि का, सागर कह्या बनाय ।
शुभ जीवनि की आयु बल, अद्धा पल्य समदाय ॥१०॥

अथ सुच्यांगुल, दोहा

अद्ध-छेद पल के जिते, तैती पलि ले कोय।
गुनें परस-पर जानियो, सुच्यांगुल विधि सोय ॥११॥

अथ प्रतरांगुल, दोहा

सुच्यांगुल का गुनत जो, सुच्यांगुल तैं कीन।
यों प्रतरांगुल आनियो, ज्ञानवान परवीन ॥१२॥

अथ घनांगुल, दोहा

फुनि प्रतरांगुल कूँ गुनें, सूच्यांगुल तैं कोय।
घनांगूल तब होत है, संशय नाँहीं होय ॥१३॥

अथ श्रेणी, दोहा

अद्ध-छेद पलि के तिनैं, असंख्यात को भाग।
दीयें लाभै अंक जो, ता प्रमान बड़भाग ॥१४॥
गुनित परस-पर कीजिये, घनांगूल की जात।
जगश्रेणी संख्या बनैं, परमित राजू सात ॥१५॥

अथ जग-परतर (प्रतर), दोहा

जगश्रेणी कौं जो गुनें, जगश्रेणी तैं कोय।
ता संख्या का नाम सुनि, जग-परतर है सोय ॥१६॥

अथ लोक घन, दोहा

जग-परतर कौं कीजिये, जगश्रेणी गुनमान।
तबै लोकघन होत है, सबतैं बड़ा प्रमान ॥१७॥

अथ अर्द्धपुद्गल-परावर्तन, दोहा

कोड़ाकोड़ी बीस मित, सागर कलप प्रमान।
तिह अनन्त समया गुनें, अर्द्ध-परावृत जान ॥१८॥

अथ आकास द्रव्य कथन, दोहा

दायक जो अवकास का, दोय भेद आकास।
सब में लोकाकास है, शून्य अलोकाकास ॥१९॥
छींके ज्यों मधि में बसै, लोक पवन आधार।
त्रिनसत त्रिनचालीस मित, घनाकर विस्तार ॥२०॥
ऊपरि माँदल सार-सो, मधि झलरी उनहार।
अधोत्तरोना अर्द्ध सम, अकृत्रिम धरि आकार ॥२१॥

अथ अधो लोक घन, दोहा

व्यास सात मुख एक मधि, अधो सात चौकोर।
उन्नत राजू सात घन, इक-सौ छिनवै जोर ॥२२॥

अथ ऊर्द्ध लोक घन, दोहा

व्यास पञ्च मुख एक को, ब्रह्म सुरग पै थान।
ऊँचो साढे तीन घन, साढे तेहत्रि मान ॥२३॥
ते तौ ही लान्तव सुरग, सिद्ध लोक लौं आन।
इक-सौ सैंतालीस यों, ऊर्द्ध-लोक घन जान ॥२४॥

अथ वात-वलय, दोहा

घनो-वात गोमूत पै, घन मूँगन-सी वाय।
पञ्च वरन तनु सबनि पै, भरमै सहज सुभाय ॥२५॥
जोजन सोलै वात वल, उरध अधो परवान।
मोटी द्वादश जोजनिन, मध्य लोक के थान ॥२६॥
लोक सिखर पै वात वल, च्यारि कोस कछु हीन।
सहज भाव अविचल बहै, एकेन्द्री तन लीन ॥२७॥
तलै लोक कै वात वल, जोजन साठ हजार।
वातवलै विस्तार है, लोकाकास मँझार ॥२८॥

अथ त्रस-नाड़ी वरनन, दोहा

ऊँची चौदा व्यास इक, राजू की त्रस-नाड़ि।
भाजन ज्याता हेत मनुँ, त्रस जीवनि की वाड़ि॥२९॥
नाँहीं काहूँ की रची, त्रस-नाड़ी मरज्याद।
सुतै क्षेत्र परमान है, कमी होय नहि ज्याद ॥३०॥

अथ मधि लोक, दोहा

सात-सात अध-उरध-मधि, मेरू जोजन लाखि।
उपरि सहस निन्यानवै, सहस अधोगति भाखि ॥३१॥
ता समान मधि लोक गनि, राजू मुख प्रस्तार।
असंख्यात दधि-द्वीप मधि, राजै गोलाकार ॥३२॥

अथ ऊर्द्ध लोक, दोहा

ड्योढि रजू लौं मेर परि, सौधर्मरु ईसान।
सनत्कुमार-महेन्द्र दो, रजू ड्योढ में जान ॥३३॥
ब्रह्मकलप - ब्रह्मोतरनी, लान्तव - कापिष्टार।
सुरग शुक्र-महशुक्र फुनि, गिनि सतार-सहस्त्रार ॥३४॥
आनत-प्रानत जानियो, आरन-अच्युत प्रवीन।
अर्द्ध-अर्द्ध में ही बसैं, ऊँचे राजू तीन ॥३५॥
नौग्रीवेक अनुत्तरा, पञ्चानूत्तर थान।
सिला मुक्ति अनुक्रम उरध, राजू में सब जान ॥३६॥

तीन लोक के अग्र में, ईषत् प्रभा जु नाम ।
अष्टम पृथ्वी सुभग है, ताका वरनूँ धाम ।।३७।।
सर्वारथ-सिध ऊपरै, द्वादश जोजन जान ।
सात रजू दखिन उत्तर, पूर्वा-पर इक ठान ।।३८।।
मोटी जोजन आठ है, ता मधि-सिला सुथान ।
सेत छत्र आकार सम, ढाई-द्वीप प्रमान ।।३९।।
बिचि दल वसु जोजन तना, घटत-घटत क्रम रूप।
माखी पर असि-धार सम, पतली कोर अनूप ।।४०।।
घनोद तापैं कोश जुग, कोस-एक घनवाय ।
पोणां सौला-सै धनुष, तनूवात मोटाय ।।४१।।
सिद्ध अनन्तानन्त को, तहाँ शिवालय धाम ।
राजै अव्याबाध सुख, जिनकौं सदा प्रनाम ।।४२।।
या विधि त्रस-नाड़ी विषैं, उरध लोक की ठोर ।
जानि सुधर गिनि लेत हैं, रजू सात का जोर ।।४३।।

अथ मध्य लोक पञ्चासिका, दोहा

सरवगि कूँ सिरनाय कै, लखि जिन-आगम सार।
मध्य लोक पञ्चासिका, वरनूँ विविधि विचार ।।४४।।

चौपई

असंख्यात दधि-द्वीप मँझार, द्वीप-जम्बु मधि गोलाकार ।
लख जोजन विस्तारो हेर, ता मधि गोल सुदर्शन मेर ।।१।।
दूना लवणोदधि सब ओर, सो जलचर जुत ख्यारा जोर ।
तातैं दूना धातुकि जान, कालोदधिता दुगुण प्रमान ।।२।।
यातैं दुगुना पुष्कर जोर, मानुषोत्र गिर आधी ठोर ।
कालो-दधिता दुगुना थान, परै-परै दधि-द्वीप महान ।।३।।
मानुषोत्र तक द्वीप-अढ़ाय, मानुष ह्या है पार न जाय ।
आगै जघन भोगभू रीत, पशु पञ्चेन्द्री दम्पति प्रीत ।।४।।
जलचर विकलेन्द्री नर नाँहि, तृतिय काल की रचन रहाँहि ।
उदधिन में जल जन्तु न पाय, अन्त स्वयम्भू द्वीप लगाय ।।५।।
गिर नागेन्द्र अर्द्ध या माँहि, पार स्वयम्भू उदधि लखाँहि ।
ता बाहरि है कौने च्यार, रचना तिनकी लिखूँ विचार ।।६।।
अर्द्ध द्वीप-दधि कौने च्यारि, कर्मभूमि है पशु परिवार ।
भरत इरावत क्षेत्र विदेह, इनहूँ माँहि कर्मभू गेह ।।७।।
जम्बू की रचना अब कहूँ, दशाध्याय सूत्र सूँ लहूँ ।
पूर्व-अपर लम्बे गिर खेत, दिखनोत्तर चौराय समेत ।।८।।

भरत हैमवत हरि सुविदेह, रमिक हर्नि एरावत तेह ।
सात क्षेत्रवर भया विभाग, छहूँ कुलाचल बिचि-बिचि जाग ॥९॥
हिमवन म्हाहिमवन निषधार, नील रुक्मि सिखरी गिरसार ।
हेमार्जुन तपनीयरु नील, रजत हेम-वरनेपन मील ॥१०॥
तिन मस्तक पै द्रह जल भरें, इनतैं सरिता चौदह झरें ।
पद्म महापद्मीरु तिगञ्छ, केसरि पुंडरीक म्हापुंडञ्छ ॥११॥
षट् कुलाचले वसनी देवी, श्री ह्री धृतिरु सुर तैं सेवी ।
बुधि लक्ष्मी कीरति पहिचान, वरनूँ सरिता नाम विधान ॥१२॥
गंगा सिन्धु रोहित रुहितास, हरिधर हरिकान्ता सरितास ।
सीता सीतोदा नर नारि, नरकान्तासु सुवरना धारि ॥१३॥
रूपकुला अरु रक्ता कही, रक्तोदा जुत चौदह सही ।
पहलै कही पूर्व-दधि मिलै, पिछली कही अपर-दधि मिलै ॥१४॥
आदि तीन हिमवन तैं चली, अन्त तीन सिखरी गिरि टली ।
शेषाशेष कुलाचल थान, दोय-दोय इक गिर तैं जान ॥१५॥
भरत क्षेत्र विसकम्भ विभाग, जम्बू-द्वीप नवति सत भाग ।
क्षेत्र थकी दूना गिर तहाँ, गिर तैं दूना क्षेतर जहाँ ॥१६॥
यों विदेह लौं अनुक्रम धरै, अर्द्ध-अर्द्ध घटता है परै ।
भरत एरावत क्षेत्र दोय, फिरन काल की इनकै होय ॥१७॥
जथा-जोगि सासता काल, और ठौर में रहें विसाल ।
अन्त द्वीप-दधि पञ्चम जान, द्वीप-अढाई माँहि विनान ॥१८॥
बाकि द्वीप असंख विख्यात, तिन में काल तीसरा पात ।
निषध नील बिचि मेरु तलै, उत्तम भोगभु रचना धरै ॥१९॥
दक्खिन-उत्तर जानूँ ठाम, देव-उतर कुरु तिनका नाम ।
पूरव-उत्तर विदेहि थान, है बत्तीस क्षेत्र परमान ॥२०॥
तहाँ चतुर्थकाल है सदा, मुक्ति पन्थ रुकता नहि कदा ।
क्षेत्र हैमवत दूजा काल, तैसा ही हयरनि कै भाल ॥२१॥
मध्य भोगभू रचना जान, तीजा हरि अर रम्यक थान ।
फिरन काल की वरनूँ अबै, भरतैरावत जैसी फबै ॥२२॥
पहला दूजा तीजा काल, चौथा पन षष्टम अरकाल ।
फुनि छठ्ठा फुनि पञ्चम होय, चौथा तीजा दूजा जोय ॥२३॥
बहुरि प्रथम तैं अनुक्रम भाल, या विधि फिरती रहती ढाल ।
पहलैं दूजैं तीजैं काल, उत्तम-मध्य-जघन भूचाल ॥२४॥
चौथें सुर-शिव मारग चलैं, पञ्चम सुर ह्वै मुक्ति न मिलैं ।
छठैं अन्त पहलैं ह्वै जात, काल फिरनि या विधि विख्यात ॥२५॥

अबै अकृत्रिम जिनवर येह, मध्यलोक है वरनूँ गेह ।
मेरु-मेरु प्रतिवन हैं चार, वन-वन प्रति जिनमन्दिर च्यार ॥२६॥
मेरु कौन गजदन्ते चार, तिनके सिर पर मन्दिर चार ।
जम्बू शालमली तरु होय, दोय धाम जिन इनके जोय ॥२७॥
पूरव-अपर वसु वक्षार, षोडश मन्दिर जिनके सार ।
क्षेत्रबत्तीस विदेह प्रमान, भरत इरावत दोय सुथान ॥२८॥
इनके मधि रूपाचल ठोर, च्यारि तीस जिन मन्दिर जोर ।
छहूँ कुलाचल ये षट् थान, इक मेरु प्रति अठन्तर जान ॥२९॥
च्यारि सतक है दश तैं घाट, पाँच मेरु प्रतियेता ठाट ।
धातुकि पुष्कर आधे व्यास, दक्षिण-उत्तर मध्य निवास ॥३०॥
दो-दो परवत इक्ष्वाकार, तिन गिर सिर पर मन्दिर चार ।
मानुषोत्र फुनि मन्दिर च्यार, वरनूँ अब अगला विस्तार ॥३१॥
द्वीप नँदी-सुर अष्टम जाग, ताकी च्यारुँ दिसा विभाग ।
अञ्जन गिर इक एकैं ठोर, च्यार वापिका च्यारुँ ओर ॥३२॥
वापी मधि दधिमुख निरधार, च्यारि वायु के दधिमुख च्यारि ।
एका बाबड़ी के दो कोर, कोर आठ रतिकर वसु जोर ॥३३॥
ठोर एक तेरा गिर जान, तिन सिर ऊपर प्रभु के थान ।
च्यारि ओर के बावन गेह, पूजैं सब सुर हरष अछेह ॥३४॥
कुण्डल शैल च्यारि वौ थान, च्यारि भवन जिन ता सिर जान ।
रुचिक द्वीप रुचिका गिर ठाम, खेत-खेत तैं च्यारि सुधाम ॥३५॥
भवन च्यारि-सैं ठावन जोर, वन्दूँ मध्य लोक की ठोर ।
रचना मन्दिर की अब सुनौ, आगम में गणधर जो मनौ ॥३६॥
प्रथम पञ्च वरन प्राकार, चारि दिशा में गोपुर चार ।
मानसथम्भ मान के हरा, जिन बिम्बाकृति च्यारुँ धरा ॥३७॥
खाई सजल वाटिका फूल, आगै रजत कोट अनुकूल ।
उपवन चैत्य-वृक्ष जुत चार, पंक्ति धुजा हाल तैयार ॥३८॥
कनक कोट सुरद्रुम गिरतूप, मन्दिर पंक्ति विविध अनूप ।
बहुरि सफाटिक का प्राकार, कोट-कोट प्रति गोपुर चार ॥३९॥
तिन में धूप घटानृत सार, जिनमन्दिर के तीन हि दुवार ।
अन्त कोट सहि द्वादश सभा, बिचि मण्डप मणिमाणिक थँभा ॥४०॥
तहँ अठोत्तर-सौ गन्धकुटी, पूरव मुख वसु मंगल बटी ।
बिम्ब अठोत्तर जिन मनहरा, प्रातहार्य पद्मासन धरा ॥४१॥
सिर पै केश सोहते रहैं, खुले होंट मानूँ कछु कहैं ।
धनुष पाँच-सै तन विस्तार, तीन पीठ पै राजै सार ॥४२॥

जुदे-जुदे राजैं जिनदेव, सर्व इन्द्र मिलि करि हैं सेव ।
सौ जोजन लाँवै जिन-गेह, तुंग पौन-सौ शोभ अछेव ।।४३।।
चौड़े जोजन जान पचास, या प्रमाण उत्तम आवास ।
यातैं आधे मध्यम थान, तातैं आधा जघनि प्रमाण ।।४४।।
मानुषोत्र बाहरि जिन-धाम, तहाँ देव ही करैं प्रणाम ।
ढाइ-द्वीप भीतर जिन-गेह, सुर विद्याघर वन्दे तेह ।।४५।।
भूमि गोचरी पहुँचैं नाँहि, पहुँचैं रिधि-धारी तिन माँहि ।
अनादि-निधन रचना है सदा, और भाँति होती नहि कदा ।।४६।।
कहुँ नृत्य सुर-नारी करै, कहूँ अष्टविधि अरचा धरै ।
कहूँ वादित्र बजै अति घना, कहूँ ध्यान धारैं मुनिजना ।।४७।।
पूजक विविध पुण्य विस्तरै, अशुभ कर्म कौं ततक्षिन हरै ।
आगम सुनि मिथ्यातम गिलै, शुद्धातम सहजैं ही मिलै ।।४८।।
बाल ख्याल-सा वरणन किया, करतैं "बुधजन" हरख्या हिया।
जान्या चाहो जो विस्तार, तौ त्रिलोक-सार अवधार ।।४९।।

अथ अधोलोक, दोहा

एक लाख अस्सी-सहस, योजन मोटी जान ।
मेरु तलै चित्रा जमीं, तीन भाग जुत मान ।।५०।।
है जोजन सोला-सहस, खर विभागता माँहि ।
भवन भवनवासी सबै, एक असुर कुल नाँहि ।।५१।।
मध्य-लोक दधि-द्वीप में, हैं व्यन्तर सब जात ।
कै व्यन्तर खरभाग में, बिन राक्षस कुल सात ।।५२।।
जोजन चौरासी-सहस, पंक भाग मोटाय ।
तामैं असुरकुमार फुनि, राक्षस कुल बहुभाय ।।५३।।
जोजन असी-हजार दल, तीजा बहुल विभाग ।
जामैं सो पहला नरक, रत्न-प्रभा की जाग ।।५४।।
पृथ्वी की मोटायता, जोजन सहस-बत्तीस ।
दूजी में दूजा नरक, भाख्या है जगदीश ।।५५।।
चारि-सहस जोजन घटत, इतरोतर दलदार ।
षष्ठी-लौं फुनि सातवीं, जोजन आठ-हजार ।।५६।।
रजू-रजू प्रति-भूमि है, नरक भूमि प्रति माँनि ।
त्रस-नाड़ी में सात सब, अधो-अधोगत जाँनि ।।५७।।
नरक-नरक कै बीच फुनि, स्वर्ग-स्वर्ग के माँहि ।
सूक्षम-थावर जीवरा, वातवलै लौं पाँहि ।।५८।।

चौपई

सर्व लोक में सूक्षम जीव, जैसे भरया घड़ा में घीव ।
जिह अधार तिह बादर जान, ताके तन का करूँ बखान ॥५९॥

दोहा

जम्बू क्षेतर भरत सम, कोशल देश समान ।
नगर अयोध्या मान फुनि, चक्री महल प्रमान ॥६०॥

चौपई

खन्धा अण्डर अर आवास, पुल्वी देह बादरा वास ।
असंख्यात लोका सम खन्ध, आगै अधिक - अधिक सम्बन्ध ॥६१॥
लोक असंख्याता गुनमान, भीतर-भीतर अधिके जान ।
खन्धा थकी देह लौं जीव, या अनुक्रम तैं बसैं सदीव ॥६२॥

दोहा

एक शरीर निगोद में, येते जीव बखान ।
गये काल के सिद्ध तैं, कहे अनन्त प्रमान ॥६३॥

उक्तं च, दोहा

बढ़ैं न सिद्ध अनन्तता, घटैं न राशि निगोद ।
जैसे के तैसे रहैं, यह जिन-वचन विनोद ॥६४॥

तथा

जिय सूक्षम आधार बिन, लोक तीन सब ठान ।
छेद भेद नहि जास तन, रुकै न कोई थान ॥६५॥
भोग चतुर गति जाय फुनि, इतर-निगोद विधान ।
जाय नहीं निकसै कठिन, नित्य-निगोदनि थान ॥६६॥

उत्तर, चौपई

बादर जाति निगोद्या जीव, देह आठ में नाँहि सदीव ।
भू जल तेज पवन जिन-देव, आहारक नारक सुर भेव ॥६७॥

अथ षट् द्रव्यनि का गुण-परजाय कथन, दोहा

विविध चिन्ह जे वस्तु के, सो गुन संग्या जान ।
जहाँ परिनमन वस्तु का, सो परजाय विधान ॥१॥
गुण अविनाशी सासतें, विनाशीक परजाय ।
एक काल गुण सब मिलै, मिलै न सब परजाय ॥२॥

अथ गुण कथन, दोहा

मिलै और हूँ ठौर जो, सो वे गुण सामान ।
मिलै न काहूँ और में, सो विशेष गुण जान ॥३॥

अथ सामान्य गुण के नाम, चौपई

असितत वस्तु द्रव्य परमेय, मूरति बिन मूरति सुन भेय ।
परदेशत्व अचेतनवान, चेतन अगुरुलघु दश ठान ।।४।।
इन सामानि गुणनि में होय, एक द्रव्य में आठ हि सोय ।
अब विशेष गुण की सुनि बात, तिनके नाम सोलहै जात ।।५।।
वीरज सुख दर्शन फुनि ग्यान, सपरस वरण गन्ध रस जान ।
गति तिथि वर्तन जड़ता रूप, चेतन अवगाहन अनरूप ।।६।।
जिय के अर पुद्गल के माँहि, षट् गुण होय अधिक ह्वै नाँहि ।
बाकी धरमादिक इवि चार, तीन-तीन गुण जुत सब धार ।।७।।

अथ परजाय कथन, चौपई

वस्तु परिनमन गुण परजाय, वस्त्वाकार द्रव्य परजाय ।
दोय भेद परजाय सुभाय, सरधा तैं संशय सब जाय ।।८।।

अथ शुद्ध गुण-परजाय, चौपई

प्रनवन हानि-वृद्धि अवधार, समय-समय मधि षट् परकार ।
जैसे रतन लहरि परभाय, उपजे बिनसैं सहज सुभाय ।।९।।
या षट् द्रव्य सुगुण परजाय, सुनि अशुद्ध पुद्गल जिय पाय ।
सपरस वरण गन्ध रस वैन, भावान्तर पिलिटिनता दैन ।।१०।।
सो अशुद्ध पुद्गल परभाव, राग-दोष जिय अशुध सुभाव ।
अब सुनि कथन द्रव्य परजाय, तास मान जिय आकृति पाय ।।११।।
सिद्ध देह तैं कछु इक हीन, अशुध जीव तन गति समलीन ।
शुध पुद्गल तो एक प्रदेश, पुद्गल अशुध तनाँ सुनि भेस ।।१२।।
दूणिक महाखन्ध परजन्त, तीन लोक सम भाख्या सन्त ।
शेष द्रव्य व्यञ्जन परजाय, उत्पाद लेय गिनि नहि जाय ।।१३।।
भेद अपेक्षा दो खँद शर्म, तीन लोक-सम धर्म-अधर्म ।
एक प्रदेश अमूरति वाँनि, अविभागी कालानूँ जाँनि ।।१४।।
लोक-अलोक प्रमाण अकास, या विधि पूरण परजे न्यास ।
फुनि सुनि द्रव्यनि का निरधार, जो भाख्या वसुनन्दि विचार ।।१५।।

अथ षट् द्रव्यनि प्रति द्वादश भेद कथन, चौपई

परिणामी जिय मूरतिवान, फुनि परदेशी एक सुथान ।
किरिया जुत नित कारण करता, सब व्यापि इक क्षेत्र हि वसता ।।१६।।

दोहा

जिय पुद्गल परणाम जुत, बिन परनामी चार ।
जीव द्रव्य तो जीव है, पाँच अजीव निहार ।।१७।।

पुद्गल मूरतिवन्त लखि, पञ्च अमूरति वाँच ।
इक-परदेशी काल है, बहु परदेशी पाँच ॥१८॥
धर्म - अधर्म अकास इक, द्रव्य पदारथ होय ।
जीव अनन्ता ताँहि तैं, नन्त गुना जड़ सोय ॥१९॥
असंख्यात कालानुँ हैं, रत्न राशिवत जोय ।
छेत्र सहित आकाश इक, पञ्च अछेत्री होय ॥२०॥
चारों किरिया रहित गिन, जिय-जड़ किरिया दाव ।
नय निश्चै में नित्य सब, जिय-जड़ अनित प्रभाव ॥२१॥
सब कारण हैं जीव के, एक अकारण जीव ।
पाँच अकरता जानियो, करता जीव सदीव ॥२२॥
नहि करता करता छहूँ, निश्चै नय परकाश ।
पाँच लोक व्यापी कहैं, सब व्यापी आकाश ॥२३॥
थान अपेक्षा एक ठे, भिन्न अपेक्षि सुभाव ।
छहूँ द्रव्य वरणन भया, गाथा के परभाव ॥२४॥

युक्ति विंशका; बीस युक्ति सर्ग, दोहा

द्रव्यन का सरधान हित, जिन-आगम परमान ।
युक्ति विशंका रचत हूँ, सम्यक्-ग्यान निधान ॥१॥

चौपई

छोटा कालानूँ सब माँहि, भिनि अविभागी मिलता नाँहि ।
सबतैं दीरघ है आकाश, आदि-अन्त बिन निश्चल वास ॥२॥
वर्तन गुणकालानूँ माँहि, या बिन नव-जीरन कम नाँहि ।
एक छोरि दूजा अणु गहै, सो परमाणू समया कहै ॥३॥
जो कालानूँ भिन्नि नहि होय, तो समया उत्पति नहि कोय ।
असंख्यात अधरम परदेश, तो लौं थिर कालानूँ वेश ॥४॥
होत मास पख दिन पल घरी, निश्चय काल द्रव्य इन करी ।
थिर नहि होता अधरम दर्व, फिरते रहते चञ्चल सर्व ॥५॥
या प्रमाण पाँचुँ द्रव्य बसैं, या बिन आधे अधिक न धसैं ।
असंख्यात परदेश प्रमान, गमन नियत इक धर्म महान ॥६॥
ता प्रमान जिय पुद्गल चलै, धर्म द्रव्य इम जान्या भलै ।
धर्म द्रव्य गुण गमन सहाय, दूजा अधर्म थिर गुण दाय ॥७॥
अवकाशक आकाश पिछान, ग्यायक सब में जीव सुजान ।
काल द्रव्य नव जीरण करै, पाँच अरूपी नजर न परै ॥८॥
रूपी परस गन्ध रस वर्ण, ऐसे गुण का पुद्गल धर्म ।
अविभागी परमाणू सोय, म्हा सकन्धलों मिलि-मिलि होय ॥९॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

जात खन्ध की जानूँ होय, कै सूक्षम कै बादर होय ।
सूक्षम इन्द्री गोचर नाँहि, बादर इन्द्रनि गोचर पाँहि ॥१०॥
बनै गलै फूटै फुनि मिलै, पानी पवन भूमि में रुलै ।
दल फल फूल होय कै झरै, विविध धातु मणि पुद्गल करै ॥११॥
धूप चाँदनी तम उद्योत, शीत उष्ण धुनि पुद्गल होत ।
चौदह राजू शीघ्र हि जाय, मन्द-गमन सम वालों पाय ॥१२॥
परमाणू तैं मपै प्रदेश, मापनि याँहीं तैं ह्वै वेश ।
परमाणु तैं उपज्या तुला, यातैं या बिन और न तुला ॥१३॥
अवकाशक दायक आकाश, ताँहीं मधि है सब का वास ।
ऐसा गुण याँहीं कैं माँहि, इसा काज और कैं नाँहि ॥१४॥
परमाणू-परमाणू मिलैं, जहाँ जीव तैं नाँहीं मिलै ।
सो समान पुद्गल परजाय, निज सुजात मिलि-मिलि कै थाय ॥१५॥
जहाँ सुजात विजाती मिलै, चेतन पुद्गल दोऊ मिलै ।
सो असमान जाति परजाय, सुर मानुष पशु नारक थाय ॥१६॥
अनादि काल संसारी जीव, तन में मिलता रहै सदीव ।
निज अनुभव करि निजपद लहै, सो तन तजि सिध पद कूँ गहै ॥१७॥
ग्यान रहित जड़ पञ्च अजीव, निज-पर ग्याता चेतन जीव ।
स्वसंवेदन प्रतषि लखाँहि, इन्द्री द्वारै गोचर नाँहि ॥१८॥
जीव-द्रव्य अनन्ती रास, नन्त गुना तिस पुद्गल तास ।
एक - एक द्रवि तीन पिछान, धर्म-अधर्म अकाश महान ॥१९॥
घटै नाँहि संसारी जीव, सिद्ध राशि नहि होत अतीव ।
ऐसैं भाखी श्रीजिन-देव, ''बुधजन'' सरधो तजि अहमेव ॥२०॥

॥ इति जीव-अजीव तत्त्व वर्णन ॥

अथ आश्रव तत्त्व, लक्षण, दोहा

काय वचन मन शुभ-अशुभ, वरतत जोग उपाय ।
आगम नूतन कर्म मग, आश्रव तना सुभाय ॥१॥

अथ पन्द्रह योग, दोहा

साँच असति अनुभै उभै, मन वच वसु विधि जान ।
औदारिक फुनि विक्रिया, फुनि आहारक जान ॥२॥
पृथक तीन फुनि मिश्रजुत, कारमाण मिलि सात ।
यहैं पञ्चदश जोग तैं, कर्म आश्रवै आत ॥३॥

अथ बारह अविरत, दोहा

इन्द्री पाँचूँ मन सहित, बिन संवर षट् मान ।
पाँचूँ थावर तिरस वध, अविरत द्वादश जान ॥४॥

अथ पञ्च मिथ्यात, दोहा

बुध इकँत विपरीत द्विज, विनय सन्यासि ध्यान।
संसै श्वेताम्बर जती, मुसलमान अज्ञान ॥५॥

अनन्तानु-अपरत्याख्यान, चौपई

अनन्तानु अन-प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान संज्वलन जान।
क्रोध मान माया लोभान, चार-चार चहुँ सोलै ठान ॥६॥
हासि अरति रति शोक भयान, वेद पुरुष तिय क्लीव गिलान।
पण्डित नूँ पच्चीस कषाय, इन भावन तैं आश्रव थाय ॥७॥
जाँनि जोग अविरत मिथ्यात, बहुरि कषाय भेद विख्यात।
पन्दरै बारै पाँच पचीस, आश्रव सत्तावन गिनि धीस ॥८॥

दोहा

मूल जगत का आश्रवा, मोह आश्रवा मूल।
मोह मूल मिथ्यात है, किरिया कूँ निरमूल ॥९॥
करम वरगना तैं सकल, पूरित सहज सुभाय।
आकर्षै आश्रव तिनैं, तीवर-मन्द कषाय ॥१०॥

अथ आश्रव अष्ठोत्तरी, दोहा

ताकूँ हूँ वन्दन करूँ, शुद्ध वचन मन काय।
जे आश्रव तैं रहित हैं, आप-आप में थाय ॥१॥
आश्रव बिन शिव सिद्ध हैं, आश्रव जहाँ संसार।
ताकै जोग कषाय का, कारण दोय प्रकार ॥२॥
द्रव्याश्रव तो वर्ग्गना, कर्मरूप ह्वै जाय।
भावाश्रव चेतन तना, राग-दोष के जाय ॥३॥
पुण्याश्रव शुभ जोग तैं, मन्द कषाया होय।
पापाश्रव मिथ्यात में, मलिन भाव तैं जोय ॥४॥
ईर्ज्यापथ ह्वै जोग तैं, प्रकृति प्रदेश समाज।
समय माँहि बन्धैं झरैं, कछु नहि कारज काज ॥५॥
साम्पराय हि कषाय तैं, होवै थिति अनुभाग।
तातैं याके कथन कूँ, करूँ धारि अनुराग ॥६॥
भवि हित उमास्वामी मुनि, वरनैं आश्रव भाव।
ताँहीं की भाषा रचूँ, टीका के परभाव ॥७॥

मूल-फाँकी सूत्र

इन्द्रिय कषाया-व्रत क्रियाः पञ्च चतुः
पञ्च पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥१॥

भाषा, चौपई

इन्द्री पञ्च कषायें चार, अविरत पाँच प्रकार निहार ।
पाँच-बीस किरिया के भेद, या आश्रव का करो निषेध ॥८॥

दोहा

इन्द्री सपरस जीभ फुनि, नाक नैन अर कान ।
विषय परस रस वासना, वर्ण शब्द पहिचान ॥९॥
इन विषयन की लुब्धता, धारे करै कषाय ।
चारि भेद ताके सुनों, क्रोध लोभ मद माय ॥१०॥
अविरत पाँच प्रकार का, सबै पाप की खान ।
हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रहवान ॥११॥
अशुभ अशुभ हि कषाय ह्वै, शुभ तैं शुभ ह्वै जात ।
वर ह्वै सात सम्यक्त्व के, करै कनिष्ठ मिथ्यात ॥१२॥
अनन्तानुबन्धी उदै, जब लूँ तब लूँ जोय ।
वरत करो वा ना करो, जात मिथ्यात न कोय ॥१३॥
अनन्तानुबन्धी बिना, उदै अप्रत्याख्यान ।
नाँहीं बन हैं अणुव्रती, हो है दर्शन-ग्यान ॥१४॥
अनन्तानुबन्धी रहित, रहित अप्रत्याख्यान ।
प्रत्याख्यानी के उदै, हो है अणुव्रतवान ॥१५॥
उदय संज्वलन होय मुनि, तीन कषाय भुँजाय ।
यथाख्यात संजम न ह्वै, महाव्रती ह्वै जाय ॥१६॥
कृत कारित अनुमोद जुत, मन वच तन परवीन ।
माया मिथ्या निदान बिन, ह्वै उदास व्रत लीन ॥१७॥
थूल त्याग अणुव्रत विषैं, पञ्च पाप दुखदाय ।
त्यागै सर्व महाव्रती, वीतराग मुनिराय ॥१८॥
इन्द्री चार कषाय तैं, गुनैं होत हैं बीस ।
क्रोध कपट मद लोभ तैं, अस्सी कह जगदीश ॥१९॥
वर कनिष्ट मद भेद तैं, ह्वै दो-सै चालीस ।
सो पचीस किरियान प्रति, कहै सहस-षट् ईश ॥२०॥

अथ मूल किरिया पाँच, तिनके नाम, दोहा

साम्पराय अर कायिकी, तीजी दुक्रिया जान ।
अनाकांक्षि चौथी क्रिया, अनिवृत पञ्च पिछान ॥२१॥

प्रथम; पाँच साम्परायिक क्रियाओं के नाम एवं स्वरूप, दोहा

आदि समिकती वर्द्धनी, मिथ्या वर्द्धनि जान ।
तृतिय असंजिम वर्द्धनी, प्रमाद वर्द्धनि आन ॥२२॥

ईर्ज्यापथ जुत पाँच ये, साम्पराय के भेद ।
सो प्रत्येक वर्णन करूँ, संसै भर्म उछेद ॥२३॥
पूजन दानादिक सबै, करै जिनागम जोय ।
पोखै नाँहि मिथ्यात कुँ, समकित वर्द्धनि सोय ॥२४॥
करै क्रिया ऐसी अधम, जातैं बढ़ै मिथ्यात ।
धर्म विरुद्ध भाखे वचन, मिथ्या वर्द्धनि जात ॥२५॥
धर्मातम पद थापिकै, चलै अयितनाचार ।
क्रिया असंजिम वर्द्धनी, स्वै-पर करै विगार ॥२६॥
त्याग मोहि ह्वै भोग रुचि, आरस जुत आचार ।
ढोरे अधिक जलादि कौं, प्रमाद वर्द्धनि धार ॥२७॥
जहाँ हलन-चलनादि में, होय विवेक विचार ।
सो है इर्ज्यापथ क्रिया, तातैं होत सुधार ॥२८॥

द्वितीय; पाँच कायिकी क्रियाओं के नाम एवं स्वरूप, दोहा

पर-दोषिक अर कायकी, अघकरनी पर-ताप ।
प्राण-घात की जुग क्रिया, भेद व्यापिका थाप ॥२९॥
करत दान उपकार तब, क्रोधाकुल ह्वै जाय ।
पर-दोषक किरिया यहै, ईर्षा सहज सुभाय ॥३०॥
काय क्रिया है जातकी, कायकि चेष्टा होय ।
तातैं आपा-पार का, भला-बुरा हो जोय ॥३१॥
हिंसा के उपकरण कौं, धारैं रहत सदीव ।
अघ करनी किरिया थकी, दुख पावैं सब जीव ॥३२॥
काय चेष्टा मुख वचन, करत शोक भयकार ।
सो किरिया परताप की, पण्डित जन परिहार ॥३३॥
दौ जालन पृथ्वी खनन, ताल-पाल दे फोर ।
शस्त्र चलावै सहज ही, प्राण घातकी घोर ॥३४॥

तृतीय; पाँच दुःक्रियाओं के नाम एवं स्वरूप, दोहा

पाँच दुःक्रिया जानियो, दर्श परस पर-त्याय ।
समन्तानु-पातनि बहुरि, अनाभोग दुखदाय ॥३५॥
दुर्गम उपवन धन सदन, नृति वीणादि सरूप ।
निरखनि की वाँछा करन, क्रिया दर्श अघ रूप ॥३६॥
कोमल पट पल्लव पुसप, बालक बाला काय ।
स परस को अभिलाष जिह, क्रिया परसना गाय ॥३७॥
किरिया सो या त्याग की, कहे घात की बात ।
हिंसा के उपकरण बहु, रचै अपूरव जात ॥३८॥

मानुष तिरजग का जहाँ, शैय्या आसन गैल ।
समन्तानु-पातन तहाँ, झारै मूतर - मैल ॥३९॥
हार निहारु उपकरण, शैय्या आसन आन ।
थापै जोगि-अजोग थल, अनाभोग का जान ॥४०॥

चतुर्थ; पाँच अनाकांक्षि क्रियाओं के नाम एवं स्वरूप, दोहा

भनि सुहस्त नैसर्ग्गिका, तृतिय विदारन सञ्च ।
आग्या लंधि अनादरा, अनाकांक्षिका पञ्च ॥४१॥
सर्व करै कोइ न करै, अनुचित पाप समाज ।
सो निज कर सहजै करैं, क्रिया सुहसता काज ॥४२॥
सीख्या बिना बनाय ले, मन वच काय उपाय ।
सो निसर्ग्ग किरिया कही, वीतराग मुनिराय ॥४३॥
औगुण घर का पार का, अन्य लोक में जाय ।
चावत करवै कों कही, क्रिया विदारन ताय ॥४४॥
आगम तैं झूठा करै, परवृति सरधा ग्यान ।
जिन आग्या लंघन क्रिया, नन्त काल दुख दान ॥४५॥
आगमोक्ति विधि करण में, आदर नाँहीं होय ।
ताकूँ क्रिया निरादरा, भाषी पण्डित लोय ॥४६॥

पञ्चम; पाँच अनिवृत क्रियाओं के नाम एवं स्वरुप, दोहा

परारम्भ पर-ग्राहनी, माया बहुरि मिथ्यात ।
किरिया अप्रत्याख्यान जुत, अनिवृत जानि विख्यात ॥४७॥
आरम्भ की शिक्षा कहै, सहजै बनत महन्त ।
परारम्भ किरिया यहै, आरँभ सुनि हरषन्त ॥४८॥
सो किरिया पर-ग्राहनी, जिह आशा अति होय ।
कहाँ कथा धन-धान की, पर पाथर ले गोय ॥४९॥
क्रिया कपट वच काय करि, हरैं आन धन मान ।
माया नाम क्रिया वहै, है तिरजग गति दान ॥५०॥
झूठी सकलाई कहै, पूजै विविध कुदेव ।
या निगोद दायक क्रिया, मिथ्या दर्शनि टेव ॥५१॥
तजैं नहीं कछु कहुँ सदा, भोग भोगता जाय ।
क्रिया अप्रत्याख्यान की, गति नारक दुखदाय ॥५२॥

॥ इति पच्चीस क्रिया सम्पूर्णम् ॥

अथ जीव-अधिकरण, दोहा

इन्द्री भोगन मगन अर, पाँचूँ पाप प्रधान ।
क्रोध लोभ मय मान जुत, जान-अजान पिछान ॥५३॥

तीवर-मन्द सुभाव तैं, जैसा वीरज पात ।
जीव-अजीव अधार जब, तैसा आश्रव आत ॥५४॥
जीव-अजीव आधार बिन, एक हि तैं नहि होय ।
तातैं जीव अधार का, भेद कहत हूँ जोय ॥५४॥
संरम्भरु सारम्भ फुनि, तीजा आरँभ ताय ।
कृत कारित अनुमोद जुत, मन वच काय लगाय ॥५६॥
सात-बीस ये ह्वै गये, तिन प्रति चार कषाय ।
जोरै इक-सौ आठ ह्वै, जिय हिंसा दुखदाय ॥५७॥

॥ इति जीवाधिकरण ॥

अथ अजीव-अधिकरण, दोहा

सुनि अजीव आधार का, निरवर्त्तनरु निछेप ।
फुनि संजोग निर्सगता, भेद चार संक्षेप ॥५८॥
निरवर्त्तन है दोय विधि, मुल-उत्तर गुण जान ।
काय वचन मन साँस का, निपजन मूल पिछान ॥५९॥
उत्तर गुण निरवर्त्तना, दूजी या विधि जान ।
काठ पुस्त चित्राम की, निपजावन पहिचान ॥६०॥
है निछेप सो थापिवो, ताके चार विधान ।
बिन देखे थल थापिवो, अप्रतिवेक्षत आन ॥६१॥
अन-आदर तैं पौंछिकैं, वस्तु थापिये ठाम ।
दुःपृमेष्ठ निक्षेप का, तब ही पावै नाम ॥६२॥
शीघ्र वस्तु को पटकवो, सहसा जानूँ सोय ।
जहाँ-तहाँ ही थापिवो, अनाभोग तैं होय ॥६३॥
जाँनि संजोग मिलायवो, ताके दोय विधान ।
प्रथम मिलावैं उपकरण, दूजैं भोजन-पान ॥६४॥
निसर्ग्ग कहे परिवर्त्तन, काय वचन मन ठान ।
या विधि तैं वर्नन भया, कर्माश्रव सामान ॥६५॥
मुखि-मुखि प्रकृति बन्ध कौं, जो-जो आश्रव हेत ।
सो सूतर अनुसार तैं, वरणौं बुद्धि निकेत ॥६६॥

अथ ग्यानावरणी के आश्रव हेतु, दोहा

ग्यानी ह्वै पूछै नटै, मन तैं करैं विवाद ।
अविनय निन्दा ईरषा, आलस मद उनमाद ॥६७॥
बेंचै शास्तर जिन-छबी, तत्त्व सथापै और ।
समय चूक भाषै कथन, निपट अशुचि की ठौर ॥६८॥

विघन करै पढ़ते निरखि, नाहक दूषण देय ।
महिमा कौं सहि ना सकै, पुस्तकादि हर लेय ।।६९।।
ग्यान-ग्यान धारक थकी, ऐसे दूषण ल्यात ।
तब ग्यानावर्णादि का, कर्म आश्रवा आत ।।७०।।

अथ दर्शनावरणी के आश्रव हेतु, दोहा

लक्ष्य-अलक्ष्यक हार कैं, ऐसै औगुन कीन ।
जबै दर्शनावर्ण का, कर्म आश्रवा लीन ।।७१।।
भंग भोग इन्द्री करै, जागत देत सुवाय ।
बाधा नेत्रनि कै करै, दर्शनावर्ण लगाय ।।७२।।

अथ असाता-वेदनी के आश्रव हेतु, दोहा

छेदैं तन अर दल-मलैं, रोकि बाँधि दें मार ।
क्षुधा तृषा आकुल करैं, धरैं पीठि अति भार ।।७३।।
लूँण लाख लखरी किरम, छुरी तीर तलवार ।
फाँसी जाली पींजरा, खोटे विनज अपार ।।७४।।
परनिन्दा परसंस निज, चुगली अर वन दाह ।
भूमि खनन सागर मथन, क्रूर सुभाव अथाह ।।७५।।
शोक रुदन आताप दुख, प्राण वियोग पुकार ।
निजकै कैं परकै किये, आत असाता भार ।।७६।।

अथ साता-वेदनी के आश्रव हेतु, दोहा

विनय करै पूजन करै, जिनवर मुनिवर जोय ।
काज क्रिया ऐसी करै, परशंसा ही होय ।।७७।।
व्रत धारक फुनि सबनि की, दया करै दे दान ।
धीर क्षमा निरलोभ बुधि, साता आश्रव आन ।।७८।।

अथ दर्शन-मोह के आश्रव हेतु, दोहा

निरदोषिक जिन कौं कहैं, दोष क्षुधादिक लीन ।
अम्बर जुत गुर कौं कहैं, मुनि परगै तैं हीन ।।७९।।
दया-धर्म-वर-तत्त्व कौं, दूषण जुत रचि लेत ।
आश्रव दर्शन-मोह का, करै मिथ्यात समेत ।।८०।।

अथ चारित्र-मोह के आश्रव हेतु, दोहा

उदय पाये कषाय का, तीव्र भाव ह्वै जाय ।
तब ही चारित्र-मोह का, कर्म आश्रवा थाय ।।८१।।
हाँसि अरति रति शोक भै, अर गिलान के भाव ।
करै आप अर पार कै, तब तैसा ह्वै पाव ।।८२।।

तकै निरन्तर छिद्र-पर, झूठे ढीट लवार ।
काम कोतुहल मगन जे, नारि वेद अधिकार ॥८३॥
संतोषी निज नारि कै, धारक मन्द कषाय ।
अल्पारम्भ विवेक जुत, वेद पुरुष तैं पाय ॥८४॥
तीव्र कषायी हिंसकी, विभचारी बलहीन ।
गुह्य-अंग छेदक बनै, वेद नपुंसक लीन ॥८५॥

॥ इति मोहनीय कर्म ॥

अथ आयु कर्म के आश्रव हेतु, दोहा

कलुषित क्रूर कठोर चित, अति आरँभ की चाय ।
सात विसन-रत हिंसकी, पावत नारक काय ॥८६॥
मुख कोमल मीठे वचन, वरणैं कपट अपार ।
ते तिरजग गति आयु कौं, पाय फिरैं संसार ॥८७॥
अल्पारँभ संतोष जुत, राखै सरल सुभाय ।
मन्द कषाय मध्यस्थ चित, धारैं मानुष आय ॥८८॥
सरधानी जिन भक्त जुत, मुनि-श्रावक व्रतधार ।
और आनहूँ तप थकी, देव आयु निरधार ॥८९॥
वरत सील तैं रहित जे, लहैं चतुर्गति आय ।
शील सहित जे व्रत धरैं, ते अनुक्रम शिव जाय ॥९०॥

नाम कर्म के आश्रव हेतु, दोहा

योग वक्रता कौं करैं, विसंवादना लाय ।
अशुभ नाम आश्रव बनैं, भावित शुध शुभ थाय ॥९१॥
होवै दरश-विशुद्धता, सोलै-कारण भाय ।
तीर्थंकर की प्रकृतितना, तब ही आश्रव पाय ॥९२॥

अथ गोत्र कर्म के आश्रव हेतु, दोहा

परशंसा पर की करै, अपनी निन्दा गाय ।
गुण प्रकटै औगुण ढकै, उच्च-गोत्र तब पाय ॥९३॥
पर-निन्दा ओगुण बकै, अपना सुयश बखान ।
नीच-गोत्र का आश्रवा, इन भावनि तैं जान ॥९४॥

अथ अन्तराय कर्म के आश्रव हेतु, दोहा

दान करत दानी निरखि, बरजै प्रगट अगूढ ।
तातैं किरपण बुद्धि ह्वै, देय सकै नहि मूढ ॥९५॥
प्रापति होती जाँनि कै, विघन करै जो कोय ।
लाभ माँहि अन्तरायता, ऐसी मति तैं होय ॥९६॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

पाँचूँ इन्द्रिय भोग में, जो को करत विगार।
भोग विषैं अन्तर परैं, ताँहीं कैं निरधार ॥९७॥
है गै भूषण तिय वसन, नाश करै जे आन।
अन्तराय उपभोग का, तिन जीवनि के जान ॥९८॥
पराकरम वीरज करत, अशुभ हेत शुभ भेट।
सो कायर ह्वै दीनजन, दुरलभ भरि है पेट ॥९९॥
माँनूँ परभव ना गिनै तातैं रहत सुछन्द।
तिन कैं आश्रव होत हैं, नरक निगोद समन्द ॥१००॥
क्षणिकमती बुध थिर नहीं, झरै पाप तैं नाँहि।
अखजा खाय पर-विघन करि, नरक निगोद्या जाँहि ॥१०१॥
करता ईश्वर माँनि कै, रहै भक्ति में भूल।
नरक निगोद्या जाय जो, धरै विराग न मूल ॥१०२॥
एक ब्रह्म कौं माँनि कै, भूलै नाना रूप।
ते पापी निज आप कौं, बोरत हैं भव कूप ॥१०३॥
भोले-जन कूँ लूटि ले, हिंसा धर्म बताय।
ते महन्त सेवक सहित, नरक निगोद्या जाय ॥१०४॥
अनेकान्त नय छोड़ि कै, गहै एक नय कोय।
नरक निगोद्या जाय जो, क्रूर मिथ्याती होय ॥१०५॥
एक बार इक ठौर का, अनँत जनम को पा।
होय न एक मिथ्यात-सम, यौं भाख्यो जिन आप ॥१०६॥
मन्द कषाय बनाय कैं, कोटि मेरु दे दान।
तोऊ न होय रञ्च सम, क्षन सम्यक् परमान ॥१०७॥
यातैं तुम सौं वीनती, "बुधजन" करै निहोरि।
जैसे तैसे धारियौ, सम्यक् सरधा दोरि ॥१०८॥

॥ इति आश्रव अष्टोत्तरी ॥३॥

अथ बन्ध तत्त्व निरूपण, दोहा

ह्वै कषाय जुत आतमा, तब आकरषै अंस।
कर्म वर्गना कौं गहै, बँधै बन्ध को वंस ॥१॥
मिलै वारि में लोन ज्यौं, बिन अन्तर ह्वै एक।
त्यौं आतम परदेश में, बन्धै कर्म अनेक ॥२॥
हरड़ फिटकड़ी लोद बिन, रंग मजीठ न होय।
त्यों कषाय बिन आतमा, कर्म बन्ध नहि कोय ॥३॥
कर्म वर्गना पूर्व की, कारमान हि शरीर।
आता में नूतन बँधै, पिछली झरै अधीर ॥४॥

अनँत वर्गना कर्म की, चेतन एक प्रदेश ।
एक क्षेत्र अवगाह ह्वै, करै बन्ध परवेश ॥५॥
बन्ध तहाँ संसार है, बन्ध विवर्जित मोक्ष।
चार भेद ता बन्ध के, भाषे जिन निरदोष ॥६॥
प्रकृति बन्ध परणाम विधि, थिति मरज्याद प्रवेश।
कर्म सुरस अनुभाग है, कर्म अंश परदेश ॥७॥

अथ प्रकृति बन्ध दृष्टान्त, चौपई

ज्ञानावरनी ज्यों पटद्वार, दर्शनवरनी ज्यों प्रतिहार ।
वेदनि सिता लिप्त असिधार, मोह गहल मदिरा अविचार ॥८॥
लखि खोढ़ा चारूँ गतिकाल, गोतर जानूँ पिरजापाल ।
चित्रकार त्यों नाम सुजान, अन्तराय भण्डारी मान ॥९॥

अथ मूल प्रकृति में उत्तर प्रकृति केती ?

ताकी गिनती, सोरठा

ज्ञानावरनी पाँच, नौ विधि दर्शनवरनि है ।
दोय वेदनी साँच, अष्टा-बीसौं मोह की ॥१०॥
जानि आयु की चार, भेद नाम त्र्यानवै ।
गोत्र हि दोय सुधार, अन्तराय विधि पाँच का ॥११॥
मूल प्रकृति हैं आठ, ताँहीं की उत्तर प्रकृति ।
ताका सुनि अब ठाठ, दोय घाटि है डेढ-सै ॥१२॥
है आच्छादन ग्यान, ज्ञानावरनी पाँच ये ।
मति श्रुत अवधि पिछान, मनपरजै केवल महा ॥१३॥
दर्श-आवरणवान, दर्शनावरनी भेद नौ ।
चक्षु अचक्षु विधान, बहुरि अवधि केवल गिनौ ॥१४॥
निद्रा प्रचला दोय, निद्रानिद्रा भेद इक ।
प्रचलाप्रचला जोय, स्थानगृद्धि निद्रा महा ॥१५॥
द्वै उपयोग सुजान, कै चेतन की चेतना ।
दर्शन लखि सामान, ज्ञान विशेष विलोक वो ॥१६॥
जाँनि वेदनी दोय, दुख-असात साता-सुखद ।
भेद मोहनी होय, अष्टा-बीस प्रकार के ॥१७॥
दरश-मोहनी जात, तीन भेद मिथ्यात का ।
सम्य-प्रकृति मिथ्यात, सम्य-मिथ्या मिथ्यात हि ॥१८॥
अनन्तान की चार, चार अप्रत्याख्यान की ।
प्रत्याख्यानी चार, चारि प्रकृति संज्वलन की ॥१९॥

क्रोध लोभ मय मान, ये सोलै अब नौ मुनौ ।
तीनूँ वेद गिलान, हास अरति रति शोक भै ॥२०॥
भेद आयु के चार, नर नारक तिरजग सुरा ।
वरनौं नाम विधान, प्रकृति तास की त्र्यानवै ॥२१॥
पैंसठि पिण्ड धरीर, अष्टा-बीस अपिण्ड की ।
लखती जाति शरीर, आंगो-पांगो बन्धना ॥२२॥
संघाता संस्थान, सहनन सपरस रस वरन ।
गन्ध पूरवी-आन, चाल सहित पैंसठि बनैं ॥२३॥
चारों गति पहिचान, नर नारक तिरजग सुरा ।
जात इकेन्द्री जान, वे ते चतु पञ्चेन्द्रिया ॥२४॥
औदारिक वैक्रीय, आहारक तैजस गहौ ।
कारमाण जुत भेय, पाँचों-जानि शरीर के ॥२५॥
ये शरीर की जात, बन्धन पाँचूँ बोलिये ।
ये हि नाम संघात, अंग-उपांग विधान सुनि ॥२६॥
तैजस तन कारमाण, अंग-उपंग तैं रहित हैं ।
बाकी तीनूँ जान, आंगो-पांगो भाखिये ॥२७॥
बावन कुब्जक आन, अर निग्रोध-परिमण्डला ।
सांतक हुण्डक थान, समचतुरक संस्थान छै ॥२८॥
वज्र-वृषभ-नाराच, वृषभ-नराच नराच है ।
चौथा अर्द्धनराच, कील सफाटिक संघना ॥२९॥
सीला उष्ण कठोर, नरम सचिक्कण रूखिका ।
हलका भारा जोर, सपरस आठ प्रकार का ॥३०॥
मीठो कटुक कसाय, खाटा तीखा पाँच रस ।
द्वै सुगन्ध की गाय, कै सुगन्ध दुरगन्धता ॥३१॥
काला पीला लाल, श्वेत हरा पाँचूँ गना ।
भली-बुरी कै चाल, आनपूरवी चार गति ॥३२॥
सूक्षम बादर मान, त्रस थावर थिर अथिरता ।
परज अपर्ज विधान, सुसुर दुसुर शुभ अशुभता ॥३३॥
साधारण परतेय, यश अपयश सो भोगता ।
दुरभागी आदेय, बहुरि अनादे लीजिये ॥३४॥
अगुरुलघू परघात, आतापन उद्योतता ।
गिनि उसास अपघात, तीर्थयकर निरमाण कौं ॥३५॥
नाम तनी पहिचान, ये ही प्रकृति तिरानवै ।
गोतर की द्वै जाँनि, ऊँच-नीच विधि दोय का ॥३६॥

भेद पाँच अन्तराय, दान लाभ उपभोग फुनि ।
भोगरु वीरज गाय, कर्म प्रकृति इम गुरु कही ॥३७॥

॥ इति एक-सौ अडतालीस कर्म प्रकृति नाम निरदेश ॥

अथ आठ कर्मनि की उत्कृष्ट स्थिति, दोहा

ग्यान दर्श अर वेदनी, अन्तराय जुत जोड़ि।
थिति सागर है तीस की, जाँनूँ कोड़ाकोड़ि ॥३८॥
सत्तरि कोड़ाकोड़ि थिति, सागर मोह प्रमान ।
सागर कोड़ाकोड़ि मित, बीस काल पहिचान ॥३९॥
नाम गोत्र दो कर्म थिति, अब सुनि आयु विधान ।
थिति सागर तैंतीस वर, भाखी श्रीभगवान ॥४०॥

चौपई

जिघनि सथिति का सुनौं प्रमान, द्वादश महुरत वेदनि मान ।
नाम गोत्र महुरत वसु जान, अन्तर महुरत सेसा आन ॥४१॥

अथ अनुभाग बन्ध कथन, चौपई

सुन अनुभाग तना निरधार, रस शुभ अशुभ चार प्रकार ।
गुड़ अर खाण्ड सितामृत पान, काञ्जी नीम कटुक विष जान ॥४२॥

अथ प्रदेश बन्ध, दोहा

पूरव बन्ध प्रदेश तैं, नूतन कर्म प्रदेश।
एक क्षेत्र मिल जाय वो, जाँनूँ बन्ध प्रवेश ॥४३॥

॥ इति बन्ध-तत्त्व निर्देशः ॥४॥

अथ संवर-तत्त्व कथन, दोहा

कारण आश्रव बन्ध का, जे-जे भाव अज्ञान ।
तिन भावनि का त्यागवो, संवर जाँनि सुजान ॥१॥
इन्द्री मन कूँ रोक कैं, तजै मिथ्यात असार ।
सो संवर दो भेद हैं, श्रावक-मुनि आचार ॥२॥
द्वादश व्रत कूँ आदि ले, ग्यारा प्रतिमा धार ।
जिन मत का श्रावक धरम, सुर-शिव सुख दातार ॥३॥
अनुप्रेक्षा चितवन सहित, सहै परीसह भार ।
गुप्तित्रय दशधर्म धर, चारित सुमति विचार ॥४॥

॥ इति संवर-तत्त्व निर्देश ॥५॥

अथ निर्जरा-तत्त्व कथन, दोहा

चार भेद के बन्ध करि, जे सत्ता में कोय ।
तिन कर्मनि का निरझरन, भेद दोय तैं होय ॥१॥

रस विपाक भोगै झरै, निर-मरज्याद समान।
सो सविपाकी निर्जरा, सहज सबनि कैं जान ॥२॥
उदय अजोगि उदीर करि, तप बल देय खिराय।
या अविपाकी निर्जरा, कारण सिद्ध उपाय ॥३॥
डार लग्या फल पकि झरै, सो सविपाकी जान।
पाल लगाय पकाय वो, सो अविपाकीवान ॥४॥

॥ इति निर्जरा-तत्त्व निर्देश ॥

अथ मोक्ष-तत्त्व कथन, दोहा

सर्व कर्म के बन्ध सब, किये ध्यान तैं नाश।
अगुरुलघु गुन आतमा, लोक शिखर पै वास ॥१॥

॥ इति मोक्ष सहित सात-तत्त्व नाम निर्देश पूर्ण ॥

सोरठा

सात-तत्त्व के नाम, कथन किया सो सरधया।
कहो निक्षेप विधान, त्यौं विशेष ह्वै जानपन ॥१॥

अथ निक्षेपनि का नाम, दोहा

नाम थापना द्रव्य फुनि, भाव निक्षेपा चार।
इन तैं तत्त्व विचार तैं, मिटैं अतत्त्व विचार ॥२॥

अथ नाम निक्षेप, दोहा

सारथीक गुन ह्वै नहीं, वस्तु अतद्गुण सोय।
जिह प्रशस्त संज्ञा कहन, नाम निक्षेपा जोय ॥३॥
अर्थ रहित जो बोलिये, विविध वस्तु बहु नाम।
कहत जगत नरसिंह सब, कहाँ सिंह के काम ॥४॥

अथ थापना निक्षेप, दोहा

होत थापना दोय विधि, निराकार साकार।
धातु पाथर माटि चितर, काठ विविध विधि धार ॥५॥
जैसा जाका भाव गुण, तैसा ही आकार।
सो ये ही उर देखिवो, तबै थापना सार ॥६॥
चेतन में चेतन तनी, थपन किये मिथ्यात।
होत अचेतन थापना, चेतन की विख्यात ॥७॥
वसू विषय ही वस्तु की, करैं थापना ठीक।
आरोपणा अवस्तु का, सब ही तरैं अलीक ॥८॥
मन वच तन में थापिये, भाव होय तल्लीन।
निराकार साकार पै, पाप-पुण्यता कीन ॥९॥

अथ द्रव्य निक्षेप, दोहा

परजै भूत-भविष्य की, जोगि द्रव्य सो जान।
नो-आगम आगम दुविधि, जाके भेद पिछान ॥१०॥

अथ नो-आगम भेद, दोहा

नो आगम द्रवि तीन विधि, ग्यायक प्रथम हि जान।
भावी दूजा तीसरा, तद्व्यतरिक्त पिछान ॥११॥

अथ ग्यायक नो-आगम द्रव्य, दोहा

जो शरीर त्रिकाल गति, गोचर होय सुजान।
ग्यायक नो-आगम दरव, ताँहि कह्या भगवान ॥२२॥

अथ नो-आगम भावी द्रव्य, दोहा

विद्यमान जिय सासतैं, अपने सहज सुभाव।
गुन सामान विचार तैं, भावी जिय नहि पाय ॥१३॥
मानुष भव सनमुख हुवो, गति अन्तर में जीव।
नो-आगम भावी द्रवी, ये विशेषपन लीव ॥१४॥

अथ नो-आगम तद्व्यतिरिक्त भेद, दोहा

जीव रहित शरीर सो, तद्व्यतिरिक्त पिछान।
इक नो-कर्म शरीर फुनि, आठ कर्ममय जान ॥१५॥
औदारिक फुनि विक्रिया, आहारक हूँ आन।
षट् परज्यापत का गहन, सो नो-कर्म विधान ॥१६॥

॥ इति नो-आगम द्रव्य निक्षेप ॥

अथ दूजा; आगम-द्रव्य निक्षेप, दोहा

जानैं प्राभृत कर्म का, अथवा प्राभृत जीव।
बिन उपयोग अकाजिमय, आगम द्रव्य सुजीव ॥१७॥

॥ इति द्रव्य निक्षेप ॥

अथ आगम-भाव निक्षेप, दोहा

वर्तमान परयाय जुत, भव निक्षेपा होय।
आगम नो-आगम सहित, तेहूँ जागूँ दोय ॥१८॥
आप्तागम धारण सहित, आवत कर्म पिछान।
रत ऐसे उपयोग सों, आगम-भाव सयान ॥१९॥
कर्मागम जानत बहुरि, कर्म उदय फल जाव।
जो भोगत सो जानियो, जियनो आगम भाव ॥२०॥

कर्मागम जानत बहुरि, कर्म उदय फल चाव।
जो भोगत सो जानियो, जिय नो-आगम भाव ॥२१॥
जीव निछेपा चार विधि, कछु इक लखि उन्मान।
तैंसे सब ही वस्तु प्रति, लगा लेहु मतिवान ॥२२॥

चौपई

होत थापना बिना न नाम, नाम निछेपा में इक नाम ।
द्रव्य बिना जु भाव नहि होय, द्रव्य माँहि तो द्रव्य हि जोय ॥२३॥

दोहा

सबै निछेपा समझि कूँ, गज पै कहूँ बनाय ।
त्यौं ही सकल पदार्थ प्रति, पण्डित लेहु लगाय ॥२४॥
गुण किरिया आकार नहि, नहि परजाय न जात।
नाम निछेपा गज तनो, हाथी नाम विख्यात ॥२५॥
चित्र काठ पाषाण मूँ, रहत चेतना वस्तु ।
ताकूँ हाथी मानना, थापन करी प्रशस्त ॥२६॥
जो आगामी जोग्य सों, द्रव्य निछेपा माँनि ।
आगम नो-आगम दुविधि, ताके भेद पिछाँनि ॥२७॥

सोरठा

गज आगम का जान, वर्तमान उपयोग बिन।
ऐसा पुरुष सुग्यान, गज को आगम द्रव्य सौं ॥२८॥

दोहा

गज परिक्षक सम्बन्ध कौं, नो-आगम द्रवि जोय।
ग्यायक फुनि भावी बहुरि, तद्-व्यतिरिक्ती होय ॥२९॥
नो-आगम ग्यायक दरवि, करी परीक्षिक काय।
भूत भविषित वरतता, तीन भेद मुनि गाय ॥३०॥
वर्तमान तत्काल तन, मृत्युक जाँनि अतीत।
आयु अन्त लौं ग्यान तन, जाँनि अनागत मीत ॥३१॥
ग्यान रहित तन मृत्यु कौं, तीन भेद करि जान ।
च्युत च्यावत अर तिक्त विधि, तन का तजन विधान ॥३२॥
स्वतः मरत सो च्युत कह्या, च्यावत कदली-घात।
तिक्त सलेखन धरन की, वरणूँ तीनूँ जात ॥३३॥
तजि अहार विधि चार का, दृढ आसन इक थान।
करत करावत तन जतन, भुक्त-प्रत्यग्या जान ॥३४॥

पुलाकश्रमण मुनि

होनहार परजाय गज, आन गतिन में कोय।
भावी नो-आगम दरवि, ताँहि कहै कवि लोय ॥३५॥
तद्व्यतिरिक्त शरीर है, भेद तास के दोय।
एक देह नो-कर्ममय, कारमाण फुनि होय ॥३६॥
आगम नो-आगम दुविधि, भाव निछेप बताव।
गज परीष गज वरनतो, गज को आगम भाव ॥३७॥
वरतमान परजाय तैं, गज तैसा उपयोग।
सो तो आगम-भाव गज, भाखै ग्यानी लोग ॥३८॥
किते नाम को भाव गिनि, किते गिनै द्रवि भाव।
समझे बिना निछेप विधि, मिटै मिथ्यात न भाव ॥३९॥

॥ इति निक्षेप कथन पूर्ण ॥

अथ निरदेशादि विधान, सोरठा

वरनें नै परमाण, सात तत्त्व निक्षेप चतु।
निरदेशादि विधान, अब वरणौं मति विसद हित ॥१॥

दोहा

नाम पाठ निर्देशता, स्वामी अधिपति कार।
साधन कारण जानियो, गिनि अधिकरण अधार ॥२॥
थिति आबाधा रूप है, भेद स्वरूप विधान।
शब्द अर्थ ऐसा बहुरि, विसद विशेष प्रमान ॥३॥

अथ निर्देश कथन, चौबीस ठाना

गति इन्द्री षट् कायरु जोग, वेद कषाय ज्ञान वसु थोग।
संजम दरशन लेस्या कैनि, भवि सम्यक् अहारक सैनि ॥४॥
गुणस्थान फुनि जीवसमास, परज्यापता प्राण संग्यास।
लखि उपयोग ध्यान परतेय, जोनि कुल कोड़ि का भेय ॥५॥
जाकै उदै पाप परजाय, प्रणवै आतम राम सुभाय।
सो गति चारि प्रकार पिछान, सुर नर नारक तिरजग जान ॥६॥
जाकरि जगजन जानत जाय, सो कहिये इन्द्री समुदाय।
एकेन्द्री जिय की परजाय, भू जल तेज वनसपति वाय ॥७॥
रसना सपरस इन्द्री दोय, शंख सीप लट सुलसी जोय।
जिव्हा नासा सपरस धारि, वीछू चींटी कीट कँसारि ॥८॥
श्रवन बिना चौ इन्द्री जीव, माँछर माँखी भ्रमर सदीव।
पञ्चेन्द्र्या में चारूँ भेव, मानुष तिरजग नारक देव ॥९॥

काय समूह प्रदेश पिछान, ताके भेद कहे षट्जान ।
वन्हि वनसपति भू जल वाय, ये ही पाँचूँ थावर काय ॥१०॥
वचनादिकधारी त्रस होय, विकलत्रिक पञ्चेन्द्री जोय ।
जिस प्रदेश चपलता धरै, जाँनि जोग जो विधि पन्धरै ॥११॥
साँच असति अनभै अर उभै, मन वच सुविधि जाँनूँ सबै ।
वैक्रियिक औदारिक अहार, फुनि ये तीनूँ मिश्रप्रकार ॥१२॥
कारमाण जुत इकठे करै, पँदरै जोग तबै उच्चरै । (अर्द्ध छन्द)

दोहा

कारमाण जुत मिश्र ह्वै, वैक्रिय तन अवदार ।
अपरयाप्त आस्था बनै, परजापत न लगार ॥१३॥
आहारक की मिश्रता, औदारिक जुत होय ।
षष्टम गुण मुनिराज कै, औरन कै नहि कोय ॥१४॥
अन्तर-महुरत रहत इक, और जोग फुनि पाय ।
बाहरि जाने जात नहि, संस्कार रहि जाय ॥१५॥
जोगरु वेद कषाय फुनि लेस्या ध्यान लखाय ।
श्रेष्ठ महुरत एक थिर, बहुरि दुतिय हो जाय ॥१६॥

चौपई

पुरुष चाहि फुनि मायाचार, या विधि नारी वेद विचार ॥१७॥
कछु साहस कछु धीरजवान, चाहि त्रिया की पुरुष पिछान ।
आतुर उभै नपुंसक वेद, या विधि जाँनूँ तीनूँ भेद ॥१८॥
करषै हनैं जीव का भाव, सो कषाय पच्चीस विभाव ।
अनन्तान अपरत्यख्यान, प्रत्याख्यान संज्वलन जान ॥१९॥
क्रोध लोभ माया अर मान, चारि चौकरी सोलै ठान ।
अनन्तान समकित नहि करै, अप्रत्याख्यान त्याग नहि धरै ॥२०॥
प्रत्याख्यान महाव्रत हीन, संज्वल अलप कषाय प्रवीन ।
हाँसि अरति रति शोक गिलान, भै तिहुँ वेद सहित नौ जान ॥२१॥
जानपना तो एक हि साँच, भय आवरण तैं विधि हि पाँच ।
इन्द्री मन कारण मति ग्यान, सुरत अर्थ-अर्थान्तर जान ॥२२॥
अवधि कछुक रूपी कौं लखै, मनपरजै पर चितवन अखै ।
केवल द्रवि परजै सब जान, कुमति कुश्रुति कुवधि कुज्ञान ॥२३॥
सामायक समता रस धार, छेदथापना फुनि दिखिकार ।
परिहरि-विशुद शुद्धता दाय, लघु कषाय सूक्ष्म साम्पराय ॥२४॥
जथाख्यात निरमोही ग्यान, संजमासंजम पँचम थान ।
बहुरि असंजिम व्रत तैं हीन, संजम सात गिनौं परवीन ॥२५॥

जो सामान विलोकन जान, ता दर्शन का चार विधान ।
चक्षु अचक्षु अवधि पहिचान, केवल चौथा दर्शन जान ॥२६॥

छह लेश्या कथन, चौपई

कषाय जोग की प्रवृति होय, सो लेश्या तुम जानों सोय ।
सो लेश्या षट् मारग माँहि, तिनैं आम चूषन की चाँहि ॥२७॥
प्रथम मूल उपारन लग्यो, दूजा डाल तोडन पग्यो ।
तीजो टहनी काटत जोय, चौथा गुच्छा तोरत कोय ॥२८॥
पञ्चम तोरि-तोरि फल लहै, भूमि पतित कूँ षष्टम गहै ।
या माफिक दृष्टान्त पिछान, अनुक्रम तैं लेश्या षट् जान ॥२९॥

दोहा

कृष्ण नारकी होत हैं, थावर नील प्रभाव ।
तिरजग होत कपोत तैं, पीत लहैं नर आव ॥३०॥
पद्म थकी ह्वै देव पद, शुक्ल शिवालय देव ।
उत्कट लेस्या भाव के, काज कहे जिन येव ॥३१॥

अर्द्ध चौपई

भवि मारगना द्वै विधि पोख, अभवि अजोगि जोगि भवि मोख ॥३२॥

चौपई

समकित सरधा रुचि परतीत, प्रथम मिथ्यात तत्त्व विपरीत ।
फुनि सासादन मिश्र बखान, उपसम वेदक षायक जान ॥३३॥
भेद अहारक जानूँ दोय, अनअहार आहारक जोय ।
हारिक औदारिक वैक्रिया, गहें वर्गना हारक कह्या ॥३४॥
धारन चितवन समृत विचार, ग्यान प्राण तन मन अवधार ।
जीव असैनी के मन नाँहि, सैनी जीवन के मन पाँहि ॥३५॥
जिनमें जीव विलोकित होय, सो चौदा मारगना जोय ।
शिव तट लौं जे ह्वै गुणथान, चौदह ते अब वरणौं जान ॥३६॥
मिथ्याती सासादन आन, मिश्र अविरती सरधावान ।
श्रावक देशव्रती गुण पञ्च, परमत मुनि नहि परिगै रञ्च ॥३७॥
अपरमत्त आपूरव-कर्ण, निवृत्तिकर्ण वेद का हर्ण ।
सूक्षम-लोभ मोह-उपसन्त, क्षीण-कषाय सयोग महन्त ॥३८॥
गिनि अजोगि चौदे गुण पूर, जे धारैं ते जग में सूर ।
अल्प भेद सब में परकाश, सो कहिये अब जीवसमास ॥३९॥
एकेन्द्री सूक्षम अरु थूल, विकलैत्रिक जुत पाँच कबूल ।
गिनि मन जुत मन बिन पञ्चाखि, परज-अपरजै चौदे भाखि ॥४०॥

अन्य कृत प्राचीन जीवसमास लिख्यते, चौपई

पृथी काय दो भेद बखान, कोमल माटी कठिन पषान।
पानी पावक पौन विचार, नित्य इतर साधारण धार ॥१॥
सातों सूक्षम सातों थूल, इनके चौदे भेद कबूल ।
कहि प्रत्येक काय दो जात, सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भ्रात ॥२॥

दोहा

दूब बेलि छोटो विरख, बड़े विरख अर कन्द ।
पञ्च भेद प्रत्येक के, लखत नाँहि मति-मन्द ॥३॥
जब इन माँहि निगोद ह्वै, सुप्रतिष्ठित तब जान।
जब निगोद नहि पाइये, अप्रतिष्ठित तब मान ॥४॥
जात दशौं प्रत्येक की, वे चौदा चौबीस ।
पर्ज-अपर्ज अलब्धि सौं, भये बहत्तर दीस ॥५॥
वे ते चौ इन्द्री तिहुँ, पर्ज-अपर्जें लब्धि ।
विकलैत्रिक ये भेद नौ, हिंसा करो निषिद्ध ॥६॥

चौपई

कर्मभूमि तिरजञ्च विख्यात, गर्भ समूर्च्छन द्वै-द्वै जात।
गर्भज पर्ज अपर्ज प्रवीन, लब्ध सहित सम्मूर्च्छन तीन ॥७॥
सैनी पञ्च असैनी पञ्च, दशौं भेद जलचर तिरयञ्च।
दशौं भेद थलचर पशुकाय, दशों व्योमचर उड़ै सुभाय ॥८॥
कर्मभूमि तिरजञ्च मँझारि, तीस भेद भाखे निरधार।
भोगभूमि अब सुनौं सुजान, थलचर नभचर दो सरधान॥९॥
परज-अपरजापत करि गिनें, चारों भेद इहाँ तैं बनें।
उत्तम मध्य जघनि भू तनें, द्वादश भेद जिनागम भनें ॥१०॥

दोहा

पञ्चेन्द्री तिरजञ्च के, बियालीस कहि भेद ।
तेरा भेद मनुष्य के, समझो भरम उछेद ॥११॥

चौपई

उत्तम भोमभूमि सुख खान, उत्तम पात्र दान फल जान ।
मध्यम जघन भोगभू दोय, चौथि कुभोगभूमि नर जोय ॥१२॥
पञ्चम मलेछ खण्ड मँझार, छठै आरज गर्भजा सार ।
पर्ज-अपरजापत करि लये, बारह भेद इहाँ तब भये ॥१३॥

अडिल्ल

नारि जोनि थन नाभि काख में पाइये।
नर-नारिन का मल-मूतर मँगाईये॥
मुरदा में सम्मूर्च्छन सैनी जीवरा।
अलब्ध परजाप्त दयाधर हीवरा॥१४॥

सोरठा

नरक पटल उनचास, परज-अपर्जै जान वै।
ऐसै जीवसमास, नरक माँहि अठ्यानवै॥१५॥

दोहा

नरक माँहि अठ्यानवै, पशु इक-सौ तेईस।
नर तेरा-सौ देव का, सतक बहत्तरि दीस॥१७॥

अडिल्ल

परज्यापता इक-सौ छियासी जानिये।
अपरज्यापत इक-सौ छियासी मानिये॥
अलब्धी परज्यापत जीव चौंतीस हैं।
चौंसट् षट्परि करना कहैं मुनीस हैं॥१८॥

॥ इति जीवसमास ॥

अथ पर्याप्ति, चौपई

हार शरीर इन्द्री मन आन, सासोसास भास षट् जान।
परज-अपर्ज अलब्धि तीन, सुनि इनके लक्षन परवीन॥१९॥
सब पूरन तैं परजै जोय, कछुक हीन तैं अपर्जै होय।
बिन निष्ठापन ही मर जाय, अलब्धि प्रजाप्त ताँहि बताय॥२०॥
प्रतिस्थाप तो है समकाल, निष्ठापन भिन-भिन्न विसाल।
शक्तिरूप परजापत मान, व्यक्तिरूप दश प्राण विधान॥२१॥

अथ प्राण एवं संज्ञा, चौपई

इन्द्री पाँच वचन मन काय, सासोसास आयु समुदाय।
आगैं वरनूँ संग्या चार, मैथुन परिगै भै आहार॥२२॥

अथ उपयोग एवं ध्यान, चौपई

जान प्रनति द्वादश उपयोग, दरशन चारि ग्यान वसु थोग।
चित एकाग्र चारि विधि ध्यान, आरति रौद्र धर्म शुक्लान॥२३॥
इष्ट-वियोग अनिष्ट-संजोग, पीड़ा-चितवन तीजा थोग।
बहुरि निदान-बाँधिवो जोय, आरति ध्यान चतुर्विध होय॥२४॥

हिंसा मृषा चोरी परग्रहि, आनन्द चारि रुद्र में सहि।
आग्यापाय विपाक संस्थान, धर्मध्यान के चारि विधान ॥२५॥
शुक्ल पृथक्-वितर्क-वीचार, फुनि इकत्व-वितर्क-वीचार।
सूक्ष्मक्रिया-अपर्ती-पात, विपरत-क्रिया-निवृत्ते जात ॥२६॥

॥ इति ध्यान ॥

अथ आश्रव, चौपई

जाँनि योग अविरत मिथ्यात, बहुरि कषाय भेद विख्यात।
पन्दरै बारै पाँच पचीस, आश्रव सत्तावन गिनि धीस ॥२७॥

॥ इति आश्रव ॥

अथ योनि, चौपई

पृथ्वी अगनी वार वयार, इतर निगोद निगोद विचार।
ये षट् सात-सात लख भाख, हरित प्रत्येक जाँनि दश लाख ॥२८॥
बावन लाख इकेन्द्री जीव, विकलै-त्रिक षट् लाख सदीव।
वे ते चतुरेन्द्री तिहुँ जात, दोय-दोय लखि कहे विख्यात ॥२९॥
अमरा तिरजग नारका जान, चारि-चारि लख जात प्रमान।
नर चवदा-लख ढाई-दीव, जोनि लाख-चौरासी जीव ॥३०॥

॥ इति योनि ॥

अथ कुल-कोड़ि, चौपई

भू बाईस सात जल जान, अष्टा-बीस वनसपति मान।
वायु सात अगनि तिहुँ जोड़ि, थावर सरसठ लाख किरोड़ि ॥३१॥
वे इन्द्रि सात तेन्द्री आठ, चतुरेन्द्री के नवकर पाठ।
चतुर-बीस लख कोड़ि प्रमान, सब विकलत्रिक के जिय जान ॥३२॥
द्वादश भूचर दश नभचरा, साढ़े-द्वादश जलचर वरा।
नव ऊपर सब तिरग पचास, गिनियो साढ़-तियालिस लाख ॥३३॥
मानुष द्वादश लख कुल कोड़ि, लाख पचीस नारकी जोड़ि।
कोड़ि छबीस लाख कुल देव, पूरण कुल-कोड़ी सब भेव ॥३४॥

॥ इति निरदेश-चौबीस ठाना ॥

अथ स्वामित्त्व, दोहा

चतुर-बीस थानक तनौं, कह्यौ नाम निरदेश।
स्वामी है अधिपतिपना, ताका कहिये भेस ॥१॥
स्वामी सबको जीव सो, यौं विचरत संसार।
इन्द्रिय के संसर्ग तैं, वरनूँ पञ्च प्रकार ॥२॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

अथ एकेन्द्रिय वर्णन, दोहा

एकेन्द्री थावर पशू, गुण मिथ्यात सदीव ।
संजम समकित नैन मन,-नाँहीं चारि कलीव ।।३।।
जीवसमास इकेन्द्रिया, अनाहार - आहार ।
आरति-रुद्र कुध्यान जुत, चारों संग्या धार ।।४।।
अभवि-भव्य दो रासि के, मति-श्रुत दोय अग्यान।
कृष्ण नील कापोत जुत, लेस्या तीन निधान ।।५।।
कारमान औदार-द्विक, तीन जोग के ईस ।
पुरुष-तिया दो वेद बिन, है कषाय तेईस ।।६।।
आयु काय इन्द्री बहुरि, सास-उसास सुँ जान ।
होय चार परज्यापता, फुनि ये चारों प्रान ।।७।।

चौपई

धरैं तीन उपयोग सुभाय, तीन जोग तेबीस कषाय ।
अविरत सात पञ्च मिथ्यात, अढतीसों हि आश्रवा पात ।।८।।

योनि-जाति, दोहा

वनसपती प्रत्येक दश, भू जल अगनी वाय ।
नित्य इतर षट् भेद प्रति, सात-सात लखि गाय ।।९।।

कुल, दोहा

भू बाईसरु सात जल, तेज तीन कुल जात।
अष्टा-बीस वनसपती, वायु काय कुल सात ।।१०।।

अथ वे इन्द्रिय कथन, दोहा

मन बिन पञ्च पर्यातया, छहूँ प्रान जुत भोग।
द्विक-औदारिक वचन इक, कारमाण चतु जोग ।।११।।
वेन्द्री त्रस आहार-द्विक, वेन्द्री एक समास ।
लाख कोड़ि कुल सात फुनि, जोनि लाख द्वै जास ।।१२।।
जोग चार अवरित वसू, फुनि कषाय तेईस ।
जो ये पञ्च मिथ्यात जुत, है आश्रव चालीस ।।१३।।
पृथकपनैं जिनकौं लखे, तिनकौं दये बताय ।
शेष भेद के भेद सब, एकेन्द्री सम भाय ।।१४।।

अथ ते इन्द्रिय कथन, दोहा

आठ लाख किरोड़ कुल, तेन्द्री जीवसमास ।
प्राण सात ते इन्द्रिया, काय वचन थिति सास ।।१५।।

अधिक एक आश्रव जहाँ, वे इन्द्री तें मान।
और भेद सब जानियो, वेन्द्री जात समान ॥१६॥

अथ चौ इन्द्रिय कथन, दोहा

ते इन्द्री के भेद सम, चतुरेन्द्री पहिचान।
जो कहु जामैं पृथकता, ताका करूँ बखान ॥१७॥
कुल नव लाख करोर का, चतुरेन्द्री वसु प्राण।
आश्रव दो-चालीस मित, जिय चौ इन्द्री थान ॥१८॥

अथ पञ्चेन्द्रिय कथन, दोहा

पञ्चेन्द्री की जात में, धारि चतुर गति भेव।
तिन प्रति वर्णन कीजिये, नारक पशु नर देव ॥१९॥

अथ नरक गति, दोहा

नारक गति पञ्चेन्द्रिया, सैनी तिरस कलीव।
संज्ञा परजै प्राण सब, संजम नाँहि सदीव ॥२०॥
द्वै कषाय तेईस फुनि, सब हारकता पाँहि।
बिन केवल दर्शन सरब, भव्याभव्य बनाँहि ॥२१॥
जाँनि ज्ञान मति श्रुति अवधि, तामैं माँनि विनान।
मिथ्याती अग्यानता, सम्यक्ती शुभ ग्यान ॥२२॥
कारमाण द्विक-विक्रिया, मन वच जोग निधान।
मिथ्याती सासादनी, मिश्र अवरती थान ॥२३॥
तिहुँ दर्शन जुत ग्यान षट्, जो उपयोग सयान।
आरत रूद्र कुध्यान सब, कहुँ इक धर्म सुध्यान ॥२४॥
उपसम वेदक सात लग, पहलैं क्षायक होत।
अब लेस्या विस्तार सुन, आदि दुतिय कापोत ॥२५॥
तीजो नील-कपोत दो, नील चतुर में थान।
नील-कृष्ण दो पाँचवैं, शेष कृष्ण पहिचान ॥२६॥

चौपई

अविरत द्वादश पँच मिथ्यात, अर इकादश जोग विख्यात।
नरकनि में तेईस कषाय, यों आश्रव इक्यावन थाय ॥२७॥

शिष्य प्रश्न, दोहा

नहि जिन मुनि नहि जैन कुल, क्यों समकित तिह थान।
प्रथम जाय क्यों क्षायकी, सब तैं समरथवान ॥२८॥

उत्तर, दोहा

महा-पाप तैं नरक को, होत आयु का बन्ध।
ता पाछैं समकित गहै, जिनमत के सम्बन्ध ॥२९॥
भया बन्ध छूटै नहीं, घटै अनागति आय।
तातैं षट् तजि क्षायकी, प्रथम नरक ही जाय ॥३०॥
आयु छेद श्रेणिक करी, जिन समकित परभाव।
राखी पहलै नरक मध, नरक सातई आव ॥३१॥
उपसम वेदक सात लौं, वरतत ऐसे भाय।
कै उपदेश्या अमर ह्वै, पहले लीया जाय ॥३२॥
दुख की वेदन तो करै, पिछले भव की याद।
सो कुल श्रावक जानि निज, तजे मिथ्यात अनादि ॥३३॥
मर्ण समय समकित मिटै, प्रगटै अनँत कषाय।
अपर्ज्यापत षट् नरक में, यो समकित नहि पाय ॥३४॥

अथ तिर्यञ्च गति, दोहा

तिरजग गति में होत हैं, इन्द्री वेद कषाय।
लेस्या समकित प्राण भवि, सैनी काय बताय ॥३५॥
फुनि अहार परज्यापता, संग्या जीवसमास।
इन सरवनि के भेद सब, आगैं पृथक प्रकाश ॥३६॥
कारमाण अवदार तब, बहुरि मिश्र अवदार।
आठ वचन मन जोग हैं, एकादश परकार ॥३७॥
षट्विधि मति श्रुति अवधिविधि, कहुँ अज्ञान कहुँ ज्ञान।
संजम-देश असंजमी, द्वै विधि संजम ठान ॥३८॥
दरशन तीनों ग्यान षट्, नौ विधि को उपयोग।
मिथ्या सासादन मिसर, अविरत विरत मनोग ॥३९॥
आठ रुद्र आरति चरण, धरम ध्यान पद तीन।
वैक्रिय हारक-द्विक बिना, त्रेपन आश्रव लीन ॥४०॥
नरकनि ज्यों तिरजञ्च गति, जिय सम्यक्ती जोय।
ये थावर विकलै-त्रया, समकित सहित न होय ॥४१॥
नारि सुरी तिरयञ्चनी, समकित कलित न होय।
फुनि जिनमत लखि भाव धरि, समकित धारैं जोय ॥४२॥
बावन लाख इकेन्द्रिया, विकलै-त्रय षट् लाख।
चार लाख पच्येन्द्रिया, यो पशु बासठि लाख ॥४३॥
सरसठि कुल एकेन्द्रिया, विकलत्रय चौबीस।
पच्येन्द्री तिरजञ्च कुल, साढे त्रय-चालीस ॥४४॥

सो साढे-चौंतीस मित, लाख कोड़ि कुल मान ।
वरणन गति तिरयञ्च का, पूरण भया विधान ।।४५।।

अथ मनुष्य गति, दोहा

धर्म-राग मीठे वचन, प्रभु पूजक गुरु सेव ।
देव थकी मानुष भया, ऐसे गुण लखि लेव ।।४६।।
बन्धु विरोधी मूढ हित, कोय कटुक वच रोग ।
नारक तैं मानुष भया, तामैं ऐसे जोग ।।४७।।
दया दान रुचि मृदु-हसित, विनयवान तुछ लोभ ।
मानुष तैं मानुष हुवा, ताकी ऐसी शोभ ।।४८।।
कपटी धीट संतोष च्युत, मूढ क्षुधातुर जान ।
तिरजग तैं मानुष भया, आरसवन्त महान ।।४९।।
मानुष तिरस पञ्चेन्द्रिया, सैनी जीवसमास ।
गिनि विक्रिय के द्विक बिना, तेरै जोग प्रकाश ।।५०।।
पचपन आश्रव होत यौं, द्विक-विक्रिय नहि जोर ।
जोनि चतुर-दश लाख फुनि, कुल द्वादश लख कोर ।।५१।।
शेष भेद तिनको सरव, मानुष गति है थान ।
जब यह गुण थानक चढ़ै, तब कछु धरत विधान ।।५२।।

अथ देव गति, दोहा

देव असंजम मन सहित, तिरस पञ्चेन्द्रि जीव ।
चातुर-बीस कषाय हैं, नाँहीं वेद कलीव ।।५३।।
कारमाण द्विक-विक्रिया, आठ वचन मन जोग ।
छहूँ ग्यान दरशन तृतिय, नौ प्रकार उपयोग ।।५४।।
मति श्रुति अवधि प्रकार द्वै, ग्यान अग्यानी भेद ।
दरश-तीन केवल बिना, पुरस तिया दो वेद ।।५५।।
भवि सम्यक्त्व प्रज्यापता, संग्या प्राण अहार ।
इनके भेद सबै तहाँ, जहाँ जोनि लखि चार ।।५६।।

अथ शिष्य प्रश्न, दोहा

जो आवै सुर सों तजै, उपदेश्या मिथ्यात ।
जिनका आगम ह्वै नहीं, सो क्यों समकित पात ।।५७।।

उत्तर, दोहा

भव सुमरण तैं को लहै, को संग लिया जाय ।
ऐसे सुर लखि आचरण, समकित गहै सुभाय ।।५८।।

उपसम तीनूँ गति विषय, परज्यापत में जोय।
बिन परज्यापत एक गति, देव लोक में होय ॥५९॥
मानुष सुर तिरयञ्च फुनि, पहले नरक मँझार।
परज-अपर्ज दुहूँन के, क्षायक वेदक सार ॥६०॥
मिथ्या सासादन मिसर, अविरत लौं गुणथान।
पूरणि आरत रुद्र फुनि, ह्वै पद धर्म सुध्यान ॥६१॥

चौपई

अविरत दुवादश पँच मिथ्यात, अर चौबीस कषाय विख्यात।
गिनी एकादश जोग समान, सुर गति बावन आश्रव आन ॥६२॥

दोहा

देव भवनवासी बहुरि, व्यन्तर जोतिग थान।
सौधर्म-ईसान में, लेस्या पीत प्रधान ॥६३॥
सनत्कुमार-माहेन्द्र दो, पीत-पद्म पहचान।
सुर लान्तव-कापिष्ठ लौं, लेस्या पद्म सुजान ॥६४॥
सुर शतार-सहसार ज्यौं, पदम-शुकलता ठान।
शेष देव अनुतरन ज्यौं, लेस्या शुकल महान ॥६५॥
लाख छबीस करोर कुल, चार जाति के देव।
चतुर-बीस थानक कह्या, पञ्चेन्द्री प्रति भेव ॥६६॥

॥ इति स्वामित्व कथन ॥२॥

अथ साधन कथन

साधन कारण रूप है, अब ताका विस्तार।
कहिये जीवनि कैं विषय, परमागम अनुसार ॥१॥
कारज जासौं ऊपजै, सो कारण उरधार।
मुख्यकरण निज भाव हैं, और बाह्य विवहार ॥२॥
नारकीन के भाव ह्वै, गुण अविरत परजन्त।
निकसै जात पञ्चेन्द्रिया, नर पशु जन्म लहन्त ॥३॥
च्यारच्यों गति तिरजग लहैं, जथा भाव परमान।
शिव नहि पावै पाप हैं, पञ्चम लौं गुणथान ॥४॥
चारों गति में सञ्चरैं, नर की शक्ति महान।
कर्म बन्ध जग में बसैं, कर्म जीत शिव थान ॥५॥
अविरत लौं गुणथान सुर, क्षिर उपजै मधि लोय।
थावर कै पञ्चेन्द्रिया, मानुष तिरजग होय ॥६॥

अथ दण्डक गति, दोहा

जथा नरक तैं आवना, सो आगति पहिचान ।
यथा नरक में पहुँचना, सो गति लेना जान ॥१॥
पृथ्वी वारि वनस्पती, दशगति धारत जोय ।
विकलैत्रिक तिरजञ्च नर, थावर पाँचूँ होय ॥२॥
वन्हि वनस्पति भूमि जल, एते तन तजि जीव ।
सब थावर विकलैत्रिया, सुर नर त्रिजग सदीव ॥३॥
तेज वायु को तन गहै, दश थानक गति लेत ।
विकलैत्रिक तिरजञ्च गति, थावर पञ्च समेत ॥४॥

आगति, दोहा

तेज वायु को तन गहै, दशथानक के आय ।
नर तिरजग विकलैत्रिया, पाँचूँ थावर काय ॥१॥
गति-आगति दश थान में, विकलै-त्रिक की मान ।
मानुष पशु विकलै-त्रिया, थावर पाँचूँ जान ॥२॥
सातूँ ही नरका तनी, गति-आगति है दोय ।
कै तिरजग पञ्चेन्द्रिया, कै मानुष भव होय ॥३॥
पञ्चेन्द्रिय तिरजञ्च की, गति-आगति लख लेव ।
थावर फुनि विकलै-त्रिया, पशु नर नारक देव ॥४॥
तिरजग नर सुर नारकी, थावर पाँचूँ काय ।
विकलै-त्रय फुनि मोक्ष थल, सो गति मानुष जाय ॥५॥
विकलै-त्रय थावर तिहूँ, तेज वात बिन जान ।
नारक सुर मानुष त्रिजग, गहत मनुष भव आन ॥६॥
देव होत तिरजञ्च नर, भवनवासि दश थान ।
वसु व्यन्तर पन ज्योतिषी, सऊ-धर्म ईशान ॥७॥
व्यन्तर जोतिग भवन सुर, आदि कल्प दुव धारि ।
फिर उपजत तिरजञ्च नर, वनस्पती भू वारि ॥८॥
जानि द्वादशम स्वर्ग लौं, आगति-गति दो भेव ।
पञ्चेन्द्री तिरजञ्च के, कै मानुष लखि लेव ॥९॥
पञ्चानूतर थान लौं, मानुष आवत-जात ।
कर्म काटि शिव गति गये, सो निश्चल ह्वै जात ॥१०॥
ग्रीवा लौं मिथ्यात मत, आगे समकितवान ।
नारि सोलवाँ स्वर्ग लौं, आगे पुरुष सुजान ॥११॥
पशु तिरजञ्च तहाँ लखे, आगति-गति के माँहि ।
तहँ पञ्चेन्द्री जानियो, विकल-त्रिक ह्वै नाँहि ॥१२॥

।। इति साधन, दण्डक कथन ।।३।।

अथ अधिकरण कथन, दोहा

सर्व द्रव्य को एक नय, लोकाकाश अधार ।
परमारथ तैं देखिये, जिन परदेश अधार ।।१।।
छहूँ द्रव्य रतना-त्रया, चौबीसों शिव थान ।
तिन अधिकरण व्यौहार हि, सबका जीव सुजान ।।२।।
बादर फुनि विकल-त्रिया, पशु पञ्चेन्द्री धार ।
तरु जल थल नभ आदि के, जीव तहैं आधार ।।३।।
रिद्धिवन्त नर देव सब, फुनि सूक्ष्म जिय जान ।
ये आश्रय आकाश के, भू नर नारक थान ।।४।।

।। इति अधिकरण कथन ।।४।।

अथ स्थिति कथन, दोहा

उत्तम मध्यम जघनि करि, आयु तीन जगजन्त ।
उत्तम वरणन जोगि है, मधि के भेद अनन्त ।।१।।
प्रथम हि उत्तम आयु का, कथन सुनो विस्तार ।
एकेन्द्री के जीव में, थावर पञ्च प्रकार ।।२।।
पृथ्वी काय दो जात के, दोय भेद थिति पाय ।
बरस सहस बाईस की, भू कठोर की आय ।।३।।
बरस दुवादश सहस थिति, नरम भूमि जिय जान ।
सात सहस अप बरस थिति, तेज तीन दिनमान ।।४।।
तीन सहस बरसा तनी, वायु काय सरधान ।
आयू बरष हजार दस, वनसपती पहिचान ।।५।।
वेन्द्री द्वादश बरष, थिति तेन्द्री गुनचास ।
चतुरेन्द्री षट्मास की, जानुँ बुद्धि परकाश ।।६।।
थिति सागर तैंतीस वर, देव नरक की पाय ।
तीन पल्य उत्कृष्ट की, मानुष पशु परजाय ।।७।।

जघन्य आयु का कथन, सोरठा

भू जल तेज वयारि, फुनि निगोद जुत पाँच के ।
गहिये भेद विचारि, सूक्ष्म बादरा दस भये ।।८।।
एक प्रत्येक मिलान, ह्वै एकादश थान सब ।
एकथान प्रतिजान, षट् हजार द्वादश भये ।।९।।
असी दुयेन्द्री धार, ते इन्द्री के साठि भव ।
चतुरेन्द्री चालीस, भव चौबीस पचेन्द्रिया ।।१०।।

दोहा

छाछठि सहस रु तीन-सै, फुनि छतीस भव जोर।
अन्तर महुरत में करे, वरणों ताकी ठोर ॥११॥
जगवासी जिय जात की, जघन आयुमय जान।
एक सास में क्षुद्र भव, अष्टादश परमान ॥१२॥

कुण्डलिया

थिति व्योहारी राशि की, सागर दोय हजार।
एक सहस विकलेन्द्रिया, एक पञ्चेन्द्रिया धार॥
एक पञ्चेन्द्रिया धार, लहै जिनमत जो शरना।
सो पावै शिव वास, हरै जामन अर मरना॥
ये उत्तम थिति पाय, तजैं नहि मिथ्यातम पथि।
सो निगोद में बसैं, अनन्तानन्त जास तिथि ॥१३॥

दोहा

रहना सदा निगोद में, कठिन निकसना होय।
येती लख सुलझैं नहीं, फुनि निगोद ले सोय ॥१४॥

दोहा

हाँसी खेल न मिनष भव, कहाँ रहे हो भूल।
कर्म हनों आनों मुकति, नहि जै है निरमूल ॥१५॥

॥ इति स्थिति कथन ॥५॥

विधान-भेद कथन, सोरठा

जीव द्रव्य के भेद, शिव जगवासी दोय विधि।
शिववासी निरभेद, जगवासी के भेद पुनि ॥१॥
भव्य-अभव्य दुय रास, मन जुत मन बिन होत हैं।
थावर-त्रय दो भास, पञ्च तास थावर तनैं ॥२॥
भू जल वन्ही वाय, वनस्पती जुत जानियों।
सूक्ष्म-बादर काय, एकेन्द्री तन कूँ गहै ॥३॥
तिरस भेद परमाण, वे ते चौ पञ्चेन्द्रिया।
पञ्चेन्द्री पहिचान, नारक तिरजग नर सुरा ॥४॥
सात नरक के थान, पशु जल थल नभचर परा।
मन युत मानुष जान, चतुर निकाया है सुरा ॥५॥
जोतिग पञ्च प्रकार, वसु व्यन्तर दश भवन के।
धारो कल्प विचार, कल्परु कल्पातीत हैं ॥६॥

।। इति विधान कथन ।।६।।

अथ सत्संख्यादि कथन, दोहा

निर्देशादिक धारतैं, होत मिथ्यात उछेद ।
त्यों ही ह्वै हैं जाँहि तैं, सो सुनि वसु विधि भेद ।।१।।
सत कहिये अस्तित्वता, संख्या वस्तु गिनान ।
थल निवास क्षेतर कथन, सपरस विचरत थान ।।२।।
काल कथन विरिया लगन, अन्तर विछुरन वार ।
भाख्या त्रपेन भेद हैं, अल्प-बहुत निरधार ।।३।।
जीव तत्त्व असितत्त्वता, है चौदा गुणथान ।
यातैं गुणथानक तनूँ, वरणन करूँ विधान ।।४।।

चौदह गुणस्थानों के नाम, दोहा

मिथ्याती सासादनी, मिश्र अविरती सार ।
देशव्रती श्रावक धरम, परमत मुनि आचार ।।५।।
अपरमत्त गुण सातवाँ, करत अपूर्व सुजान ।
नवमाँ अनिवृत-कर्ण फुनि, सूक्षम-लोभ विधान ।।६।।
ह्वै उपशान्त-कषाय फुनि, द्वादश क्षीणकषाय ।
संजोगी जिन केवली, गहि अजोगि शिव जाय ।।७।।

पहला; मिथ्यात्व गुणस्थान, दोहा

जहाँ अतत्व सरधान जुत, गहै अविद्या भाव ।
जो जग सन्मुख शिव विमुख, सो मिथ्यात सुभाव ।।१।।

अविद्या भाव का लक्षण, दोहा

रोवै सोवै डर जगै, कुच लागै हितमान ।
बिना सिखाये शिशु करै, संगि अविद्यावान ।।२।।
विसन भोग में अति निपुण, त्याग करन दुखदाय ।
दया भाव नहि ऊपजै, हिंसा सहज सुभाव ।।३।।

अतत्त्व का स्वरूप, दोहा

झूँठी को साँची गिनैं, अहित करैं हित जान ।
निज-पर का नहि दीखता, सो अतत्त्व सरधान ।।४।।
मानैं आतम-देह को, गिनैं न पृथक सुभाव ।
सान्त-पुष्टि वसि कौ करैं, हिंसक निन्द उपाव ।।५।।
दुख में दुख सुख में सुखी, तन में आतम भूल ।
वर कनिष्ट निरखै न जड़, रहैं आपदा झूल ।।६।।

जगत सन्मुख, शिव विमुख, दोहा

धर्म देव गुरु ना रुचैं, रुचै पराई घात ।
पर-धन पर-तिय लालची, हाँसी नाच सुहात ॥७॥
है मिथ्यात अनादि बहु, है कुबुद्धि सरधान ।
तामैं मुख है पञ्च विधि, ताका सुनो निदान ॥८॥
बुध एकान्त विपरीत द्विज, विनय संन्यासी जान ।
संशय श्वेताम्बर जती, मुसलमान अज्ञान ॥९॥
दुखदाई मारग तजैं, कीट पशु शठ जान ।
खोटा जानि मिथ्यात कूँ, क्यों न तजैं बुधिवान ॥१०॥

अथ मिथ्यात प्रति चौबीस ठाना, दोहा

गति च्यारूँ के जीव में, इन्द्री पाँचूँ जात ।
काय तिरस थावर दुहूँ, तीनुँ वेद विख्यात ॥११॥
जोग अहारक-दुक बिना, बहुरि पचीस कषाय ।
मति श्रुति अवधि कुज्ञानता, एक असंजित भाय ॥१२॥
दर्शन नैननि नैन-बिन, लेश्या षट् परकार ।
भवि अर अभवि बताइये, समकित मिथ्याधार ॥१३॥
बिन अहार आहार फुनि, मन जुत मन बिन वान ।
गुण-थानक मिथ्यात इक, जियसमास सब मान ॥१४॥
परज्यापत के भेद सब, सब विधि धारक प्रान ।
संज्ञा चारों होत हैं, आर्ति रुद्र कुध्यान ॥१५॥
ज्ञान-तीन दर्शन-दुविधि, यह पाँचों उपयोग ।
मान अहारक-द्विक बिना, पचपन आश्रव जोग ॥१६॥
जोनि भेद कुल भेद सब, मिथ्यातीपन थान ।
चतुर-बीस थानक यहै, करै भविक सरधान ॥१७॥
कर्म बन्ध सत्ता उदै, प्रकृति उदीरन होय ।
गुण-थानक प्रति लिखत हूँ, ग्रन्थ सनातन जोय ॥१८॥

लक्षण, दोहा

बन्धन नूतन का बनैं, सत्ता चिर संजोग ।
हठकर भोग उदीरना, उदै देत रसभोग ॥१९॥
इक-सौ अठ-चालीस में, जोग एक-सौ बीस ।
कर्म प्रकृति का बन्ध ह्वै, बन्ध नहि अठ-बीस ॥२०॥
एक मिश्र मिथ्यात फुनि, समकित प्रकृति मिथ्यात ।
गर्भित बन्ध मिथ्यात में, गिनी न दोनूँ जात ॥२१॥

बन्ध प्रकृति कथन, दोहा

गर्भित प्रकृति शरीर में, बन्ध विषैं दश जात।
पञ्च प्रकृति बन्धन तनी, प्रकृति पञ्च संघात॥२२॥
वरण गन्ध रस परस की, बीस प्रकृति के माँहि।
मूल चारि के बन्ध हैं, षोडश गिनि ये ताँहि॥२३॥
या विधि अष्टा-बीस बिन, शेष बन्ध में आत।
उदय मिश्र दो अधिक है, सम्य प्रकृति मिथ्यात॥२४॥

चौपई

जो विछुरत पूरव सम्बन्ध, सौ नहि उदै तथा नहि बन्ध।
इतरोतर इम अनुक्रम जान, विछुरी जो पुनि मिलै न आन॥२५॥

दोहा

कै अबन्ध के अन-उदै, मिथ्याती गुण माँहि।
कै फुनि उत्तर प्रकृति सौं, बन्ध उदै फुनि पाँहि॥२६॥
उदै समान उदीरना, है चौदा गुणथान।
जो कछु लहत विशेषता, ताको सुनूँ विधान॥२७॥
मिनख आय है वेदनी, तीनूँ वीछर जाँहि।
उदै चौदहै तेरवैं, छठें उदीरन माँहि॥२८॥
सत्ता में सब पाइये, इक-सौ अड़तालीस।
सो फुनि वरणन तीनि विधि, कीनों है जगदीश॥२९॥
जोगि एक अजोगि फुनि, विछति त्यागिवे जोग।
गुणथानक प्रति जानियो, वर्णन बहुत मनोग॥३०॥

प्रथम गुणस्थान, दोहा

बन्ध प्रकृति मिथ्यात में, इक-सौ सतरा होय।
प्रकृती तीनि अबन्ध हैं, विछुरत षोडश जोय॥३१॥
होय न बँध मिथ्यात में, यहैं तीन सरधान।
प्रकृति अहारक-दुक बहुरि, तीर्थंकर मतिवान॥३२॥

बन्ध विछति, दोहा

आनपूरवी आयु गति, तीनि नरक समुदाय।
विकलैत्रिक की तीनि फुनि, सूक्षम हुण्डक जाय॥३३॥
साधारण एकेन्द्रिया, आतापन मिथ्यात।
बहुरि सफाटिक संहनन, वेद नपुंसक जात॥३४॥
थावर बिन परजाय तो, यह है सोलह जोय।
चढ़ै तबै मिथ्यात तैं, तबै विछरवो होय॥३५॥

प्रथम गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति पाइये,

ताका वर्णन, दोहा

तीर्थङ्कर सो प्रकृति की, मिथ्याती गुणस्थान।
कैसे सत्ता होत है, सो कहि दया निधान ॥३६॥

उत्तर, कुण्डलिया

करि मिथ्या नरक का, फुनि अव्रत गुणथान।
सोलह कारण भाय के, बन्ध तहाँ ह्वै जाय ॥
बन्ध तहाँ ह्वै जाय, उदै आवन ना पाई।
आयु महूरत शेष, तबै सम्यक्त्व गमाई ॥
मरण कियो तब जाइ, भयो नारक विपता पर।
तृतिय नरक परजन्त, सत्त इम है तीर्थंकर ॥३७॥

प्रथम गुणस्थान में उदै, दोहा

उदै बन्ध सामान है, विछरत पञ्च सुजान।
होत अन-उदै पञ्च का, मिथ्याती गुणथान ॥३८॥
मिश्रक सम्यक् मोहनी, फुनि तीर्थंकर जान।
बहुरि अहारक-दुक गिनै, पञ्च उदय उनमान ॥३९॥
सूक्ष्म बिन परज्यापता, आतापन मिथ्यात।
साधारण जुत पाँच ये, पहले विछती पात ॥४०॥

उदीरना, दोहा

जैती उदै उदीरणा, तैती प्रकृति पिछान।
इक-सौ अठचालीस की, संख्या पहले थान ॥४१॥

॥ इति मिथ्यात गुणस्थान ॥

दूसरा; सासादन गुणस्थान, दोहा

समकित बल निर्मल लखै, जिय निज आतम भाव।
चिगे बहुरि वा भाव तैं, अनन्तान परभाव ॥१॥
अन्तर वरतै भाव जो, पहुँचत सीम मिथ्यात।
सो सासादन गुण कह्यो, जिनवर जग के तात ॥२॥
लखि अतत्त्व मिथ्यात में, मिश्र मिश्रगुणथान।
अनविवक्षति भाव है, सासादन गुणथान ॥३॥

दूजा गुणस्थान प्रति चौबीस ठाना, दोहा

च्यारों गति पञ्चेन्द्रिया, तिरस सहित मन होय।
भविक अहार अहार-बिन, वेद तीन में सोय ॥४॥

विकलत्रय थावर विषैं, अपरजाप्त के माँहि ।
सासादन जुत जात है, नारक गति में नाँहि ॥५॥
जोग अहारक-दुक बिना, तीन कुग्यान सुभाय।
दर्शन चक्षु-अचक्षु सह, बहुरि पचीस कषाय ॥६॥
तिहुँ अनान दर्शन दुविधि, लख उपयोग सुजान।
जीवसमास पँचेन्द्रिया, सासादन गुणथान ॥७॥
समकित हूँ सासादनी, लेश्या षट् परधान ।
संज्ञा चार असंजमी, धारत है दश प्रान ॥८॥
आरति रुद्र कुध्यान जुत, परजै अपरजै मान ।
जोनि लाख छब्बीस है, च्यारों गति जिय आन ॥९॥
अविरत द्वादश भेद के, योग तेरहैं जास ।
जानि कषाय पचीस जुत, आश्रव गिनि पच्चास ॥१०॥
साढ़े षट् अरु एक-सौ, गति चारों कुल कोड़ि ।
निरखो सासादन विषै, चतुर-बीस विधि जोड़ि ॥११॥
बन्ध एक-सौ एक का, है अबन्ध उगनीस ।
सासादन गुणथान में, बन्ध विछति पच्चीस ॥१२॥

चौपई

षोडश विछुरत तीन अबन्ध, मिथ्याति गुणथान सम्बन्ध।
सो अबन्ध गुन्नीस सुजान, आनौ सासादन गुणथान ॥१३॥

दोहा

अनन्तान की चौकरी, संघन वज्रनराच।
कीलक और नराच फुनि, संघन अर्ध नराच ॥१४॥
सान्तक कुबजक बावना, निग्रोधक संस्थान ।
निद्रानिद्रा स्थानगृधि, प्रचला-प्रचला आन ॥१५॥
वेद तिया अप्रशस्त गति, अनादेय उद्योत ।
दुस्वर दुर्भग रूपता, अवर नीच कर गोत ॥१६॥
आनपूरवी आयु गति, तीन तिजग की जान ।
बन्ध विछति पच्चीस की, सासादन में मान ॥१७॥
एकादश की अन-उदै, उदै विछति नौ होय।
इक-सौ ग्यारा का उदै, सासादन में जोय ॥१८॥
उदै विछति अर अन-उदै, पहले की दश आन।
आनपूर्वी नरक मिलि, ग्यारै दूजै थान ॥१९॥
एकेन्द्री थावर गिनूँ, विकलैत्रिय की तीन ।
अनन्तान की चौकरी, उदै विछति नौ लीन ॥२०॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

इक-सौ पैंतालीस की, सत्ता दूजै पाँहि।
आहारक-दुक तीर्थकर, सुनि हौ सत्ता माँहि ॥२१॥

दूसरे गुणस्थान में उदै, उदीरणा समान है,
इति दूजा सासादन गुणस्थान
अथ तीसरा; मिश्र गुणस्थान, दोहा

साद मिथ्याति उपशमी, उदै मिश्रमिथ्यात।
मिश्रभाव आतम लखै, भिन्न सरूप न ध्यात ॥१॥
ह्वै न ठीक भिन सुवाद कि, मिली दधि-सिता खात।
त्यों तीजे गुणथान में, मिश्रभाव ह्वै जात ॥२॥

अथ तीजा गुणस्थान प्रति चौबीस ठाना, दोहा

सैनी भविक अहार जुत, तिरस पञ्चेन्द्री धार।
लेश्या छहूँ असंजमी, तीन वेद गति चार ॥३॥
जोग आठ मन वचन फुनि, वैक्रीयिक औदार।
मिश्रग्यान मतिश्रुतिअवधि, ग्यान-अग्यान प्रकार ॥४॥
अनन्तान की च्यारि बिन, गिन इकईस कषाय।
दर्शन दोनूँ मिश्र में, चक्षु-अचक्षु बनाय ॥५॥
जीवसमास पञ्चेन्द्रिया, सब संज्ञा दश प्रान।
मिश्रसम्यक्ती नामगुण, षट् परज्यापत जान ॥६॥
रुद्रध्यान के चारपद, चारों आरति ध्यान।
धर्मध्यान का चरण इक, आग्याविचै प्रधान ॥७॥
अविरत द्वादश जोग दश, अर इकईस कषाय।
आश्रव तियालीस विधी, मिश्र तीसरे गाय ॥८॥
पाँचूँ विधि उपयोग है, दोय-दरश त्रय-ग्यान।
नारक तिरजग देव नर, जोन-जात कुल आन ॥९॥

तीजा मिश्र-गुणस्थान में बन्ध, दोहा

विछुरत नाँहीं मिश्र में, छीयालीस अबन्ध।
प्रकृति चौहोत्तर बन्ध ह्वै, मिश्र थान सम्बन्ध ॥१०॥
चवालीस दूजैं रही, उतरी सुर नर आय।
छीयालीस अबन्ध यौं, मिश्र तीसरे पाय ॥११॥
उदय मिश्र में एक-सौ, उदय नाँहि बाईस।
मिल्यो मिश्र मिथ्यात जो, सोई विछती दीस ॥१२॥
उदय विछति अरु अन-उदय, सासादन की बीस।
आनपूरवी तीन मिल, भई प्रकृति तेईस ॥१३॥

इनमें तैं निकसी मिली, मिश्र मोहनी आन।
नाँहि उदय बाईस यों, मिश्र तीसरे थान ॥१४॥
इक-सौ सैंतालीस की, सत्ता तीजे होय।
सासादन तैं बँध गई, मिली अहारक दोय ॥१५॥

तीसरे गुणस्थान में उदै, उदीरना समान है।

॥ इति तीसरा; मिश्र गुणस्थान ॥

अथ चौथा; अविरत गुणस्थान, दोहा

जो निज-पर का भेद ले, तन तुष-माष पिछान।
उदासीन घर में बसै, सो चौथा गुणथान ॥१॥
सात तत्त्व षट् द्रव्य को, गुण परजाय विधान।
जैसा भाष्या केवली, तैसा कर सरधान ॥२॥

अथ चितवन पच्चीसी

सूतो जीव अनादि को, मोह नींद में दीन।
कर्म शत्रु धन लूट कैं, करच्यै सम्पदा हीन ॥३॥
जागै गुरु उपदेश तैं, मोह नींद तज जीव।
सनै-सनै कर्मनि तजैं, सम्पति रहै सदीव ॥४॥
विषय विरेचन औषधी, श्रीजिन वचन प्रमान।
जन्म-जरा दुख दाघ हर, शिव सुख दायक जान ॥५॥
अनन्तचतुष्टय का धनी, मदिरा मोह वसादि।
रंक भया चिर दुख सहै, निज धन करै न यादि ॥६॥
रहिये जा सँग जाँहि सौं, आदि अन्त सुख भोग।
आदि अन्त दुखमय सदा, परसँग तजिये जोग ॥७॥
जरै मरै फाटै गरै, नव जीरणतावान।
जरै मरै नहि जीव तू, दुखी परायी हान ॥८॥
हानि-वृद्धि के जोग में, दुखी-सुखी मत मान।
जो बोया सो ही मिलै, निज प्रापति उनमान ॥९॥
जो अलाभ औ लाभ सिर, बँधसो मिल है आय।
कर्म जोगि ह्वै मति जिसी, बाही देत भिराय ॥१०॥
जो कुछ नीत-अनीत तैं, निरखि परायी गैर।
क्षमा करै तो ना घटै, बढ़ै धरै जिय वैर ॥११॥
जो जिन-दर्शन भ्रष्ट कै, लाज लोभ भय पाप।
इष्ट जाँनि के पग परै, ताको समकित जाय ॥१२॥
सम्यक् रुचि सरधान तैं, शुद्ध ज्ञान उपलब्ध।
तातैं निज आचरण ह्वै, कर्म नाश शिव सिद्ध ॥१३॥

धर्ममूल सम्यक्त्व जिन, कह्यो देव निरदोष ।
धर्महीन समकित बिना, होय न कबहूँ मोष ॥१४॥

बिना मूल ज्यों विटप के, दल फल फूल न वृद्धि ।
धर्ममूल समकित बिना, त्यों न होय शिव सिद्धि ॥१५॥

विषम परीस्या को सहै, बिन समकित सरधान ।
करै कोटि लख वरष तप, तो न लहै निरवान ॥१६॥

चूटत काटत दल मलत, मिटत न दूभ मिथ्यात ।
मूल उखारत समकिती, फुनि निकास नहि यात ॥१७॥

चरित-मोहनी कै उदय, वरत न धारैं लेश ।
पहिचान निज-पार कूँ, रहै उदासी भेश ॥१८॥

जो जग अपयश ना बढ़े, धर्म विरोधी कोय ।
वा कारज को समकिती, करै उद्यमी होय ॥१९॥

मेरी नाँहीं राजरिधि, सुत दारा परिवार ।
राग-दोष तन मन वचन, क्रोध लोभ मद मार ॥२०॥

इनमें मैं तब ही कियो, अहंकार ममकार ।
जब-जब बाँध्यो कर्म मुझ, लयो कुगति दुखभार ॥२१॥

मैं नहि इनका ये न मम, हुए न होंगे नाँहि ।
मैं एकाकी ग्यानधन, जिसा शिवालय माँहि ॥२२॥

पहलैं का नैं भूलिजे, उदै आय रस देय ।
तासौं परवश परिरह्यो, करज देय सो लेय ॥२३॥

जड़ को करता जड़ सही, मैं मेरा करतार ।
विरथा करना होय पर, कैसे भुगतौं मार ॥२४॥

मन वच काय शरीर सब, पर-पुद्गल के खन्ध ।
फुनि ग्यानावरणादि वसु, द्रव्यकर्म सम्बन्ध ॥२५॥

मेरा लक्षण चेतना, असंख्यात परदेश ।
गलै-वलै फूटै नहीं, आदि अन्त बिन वेश ॥२६॥

अहोभाग समकित जग्यौ, निजधन लाग्यो हाथ ।
कर कलेश बाढ्या बढ्या, दुख सहते पर-साथ ॥२७॥

जे नर भव समकित गहै, ता महिमा सुर लोय ।
जे अजान विषया मगन, बूढ़े सागर सोय ॥२८॥

महिमा समकित धारकी, को कहि सकै बनाय ।
सुरपति नरपति नागपति, पावत पदवी धाय ॥२९॥

शिष्य; प्रश्न, दोहा

जानै आपा-पर लख्यो, त्याग जोग लियो जान।
सो आरम्भ के त्याग कूँ, क्यों न करै मतिवान ।।३०।।

उत्तर, दोहा

देव नरक गति समकिती, ह्वै आतम पहिचान ।
तहाँ त्याग नहि बन सकै, समता गहै सयान ।।३१।।
अनुचित कारिज नृप हुकम, करै उदासी होय ।
त्यौं करमा वशि समकिती, जग कारज में जोय ।।३२।।
अनुक्रम तैं बढ़वारता, कर्म नाश कुछ होय।
तब निकसै घर बन्ध तैं, निडर जगत तैं जोय ।।३३।।

सोरठा

वन्दौं श्री अरिहन्त, दया कथन जिनधर्म को ।
गुर-निर्ग्रन्थ महन्त, और न मानैं सर्वथा ।।१।।
राग-दोष जुत देव, मानैं हिंसक धर्म फुनि ।
सग्रन्थ गुर की सेव, सो मिथ्याती जग भ्रमैं ।।२।।
मूरख लखै समान, गुण को पहिचाने बिना ।
तातैं करूँ बखान, परमेष्ठी का गुणतना ।।३।।

अरिहन्त गुण, दोहा

छीयालीसों गुण सहित, नहि अष्टादश दोष ।
कर्महर्ण अरहन्त सौं, पूजक पावै मोष ।।४।।
चौंतीसौं अतिशय सहित, प्रातिहार्य फुनि आठ।
अनन्तचतुष्टय गुण करो, छियालीस मुखपाठ ।।५।।
छियालीस का नेम नहि, अनन्तचतुष्टयवान ।
सो सामानिक केवली, मुनि अरहन्त पिछान ।।६।।

जन्म के दश अतिशय, दोहा

अतिशय-रूप सुगन्ध तन, नाँहि पसेव निहार ।
मधुर वचन अतोलबल, रुधिरश्वेत आकार ।।७।।
लक्षण सहसरु आठ तन, समचतुरक संस्थान ।
वज्रबृषभ नाराच युत, जनमत ये दश जान ।।८।।

केवलज्ञान के दश अतिशय, दोहा

सुभिक्ष शत-योजन विषै, गगन गमन मुख-चार।
नहि अदया उपसर्ग नहि, नाँहि कवल-आहार ।।९।।

सब विद्या ईश्वरपनों, नाँहि बढ़ै नख-केश।
अनिमिषदृग छाया रहित, ये दश केवल भेष ॥१०॥

देवकृत चौदह अतिशय, दोहा

देव रचित ह्वै चार-दश, अर्द्धमागधी भाष।
आपस माँहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश ॥११॥
होत फूल-फल सर्वऋतु, पृथ्वी काँच समान।
चरण कमल तल कमल दल, मुखतैं जै-जैवान ॥१२॥
मन्द सुगन्ध वयार फुनि, गन्धोदक की वृष्टि।
भूमि विषैं कंटक नहीं, हर्षमई सब सृष्टि ॥१३॥
धर्मचक्र आगै चलै, फुनि वसु मंगल धार।
अतिशय श्रीअरहन्त के, ये चौंतीस प्रकार ॥१४॥

अष्ट प्रातिहार्य, दोहा

तरुअशोक के निकट में, सिंहासन छबिदार।
छत्र तीन सिर पर लसैं, भामण्डल प्रस्तार ॥१५॥
दिव्य धुनी आनन खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरैं चौंसठ चमर सुर, बाजैं दुन्दुभि जोय ॥१६॥

अनन्त चतुष्टय, दोहा

ज्ञान अनन्तानन्त सुख, दरश अनन्त प्रमान।
बलअनन्त अरिहन्त जो, इष्टदेव पहिचान ॥१७॥

अष्टादश दोष, दोहा

जन्म जरा तिरषा क्षुधा, विस्मय आरति खेद।
रोग शोक मद मोह डर, निद्रा चिन्ता स्वेद ॥१८॥
वैर प्रीति मरजायवो, ये अष्टादश दोष।
नाँहि होत अरिहन्त के, सो छबि दायक मोष ॥१९॥
मानुषभव पञ्चेन्द्रिया, त्रयोदशम गुणथान।
वीतराग अरिहन्त पद तीर्थंकर पहिचान ॥२०॥
ऐसे गुण तैं कलित छबि, अचल थावरा मान।
समोशरण जुत केवली, जंगम प्रतिमा जान ॥२१॥
नाम थापना भाव द्रवि, लखिये गुण परजाय।
चारों भेद अरिहन्त के, पूजित पातक जाय ॥२२॥
आगमोक्त जो नाम जिन, करि उचार मुख सोय।
द्रव्य चढ़ोहें शिर नमें, नाम निछेपा जोय ॥२३॥

चारि संघ तैं साखि तैं, निराकार-साकार।
सो थापन अघहार जो, आगमोक्त विस्तार ।।२४।।
जो जिय आगम में कहे, होनहार अरिहन्त।
द्रव्य निछेपा जाँनि जिय, करो पूज हुलसन्त ।।२५।।
वर्तमान केवल सहित, समोशरण जुत होय।
पूजत सुर नर नागपति, भाव निछेपा सोय ।।२६।।

सिद्ध गुण, सोरठा

सम्यग्दर्शन-ग्यान, अगुरुलघू अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान, निरावाध गुण सिद्ध के ।।२७।।

दोहा

गुणथानक चौदा विषैं, सर्व कर्म करि नाश।
लहैं आठ-गुण सिद्ध के, समै माँहि शिववास ।।२८।।
जिनमुद्रा निर्ग्रन्थगुरु, मुनि जग के हितकार।
तामैं पद ये तीन तिन, वरणौं गुण विस्तार ।।२९।।
दिक्षा-शिक्षा में निपुण, प्रायश्चित परिहार।
धरैं संघ आचारव्रत, आचारज अनुसार ।।३०।।
पढ़ैं-पढ़ावैं अघ हरैं, उपाध्याय मुनिराज।
ध्यान धरैं मुख मौन गहि, साधु करैं निज काज ।।३१।।
तीनूँ पद जिनराज के, छठें-सातवाँ माँहि।
साध षष्टमाँ गुण थकी, द्वादश गुण लौं पाँहि ।।३२।।

आचार्य गुण, दोहा

द्वादशतप दशधर्मजुत, पालैं पञ्चाचार।
षट् आवसि त्रयगुप्ति गुण, आचारज पदसार ।।३३।।

उपाध्याय गुण, दोहा

चौदह पूरव कूँ वरैं, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ैं-पढ़ावैं ग्यान ।।३४।।

साधु गुण, दोहा

पञ्च महाव्रत समित पन, इन्द्री पञ्च निरोध।
षट् आवसि मञ्जन तजन, शयन भूमि को सोध ।।३५।।
वस्त्रत्याग कचलौंच फुनि, लघुभोजन इकबार।
दन्तन धोवन ना करैं, ठाड़े लेय अहार ।।३६।।
तीनूँ पद मुनिराज के, अट्ठाईस गुण पाँहि।
जिसा साध ही में मिलै, तिनकौं कहों बनाँहि ।।३७।।

दश प्रकार सम्यक्त्व के, बहुरि पञ्च विधि ग्यान।
चारित तेरा भेद जुत, अष्टा-बीस प्रमान ।।३८।।

शिष्य, प्रश्न

कह्या साध का गुण विषैं, दर्शन-ग्यान प्रधान।
कह्या कौन-सा मुनिनि में, ताका कहो बखान ।।३९।।

उत्तर, चौपई

नाना मुनि ग्यानी तपवान, तिनके समकित कौन प्रमान।
समकित रहित साधु नहि होय, बिना साधु केवल नहि जोय ।।४०।।

दोहा

द्रवि लिंगी समकित रहित, शिव न जाय सुर होय।
बिन पहिचानें निरखि छबि, मानें पूजै लोय ।।४१।।
जो जिनमत बिम्ब न नमैं, सो दुरमती कनिष्ट।
वीतराग छबि देखि के, नमिवो ही है इष्ट ।।४२।।

तथा प्रश्न, दोहा

पञ्च महाव्रत कैं विषैं, वस्त्र त्याग क्या नाँहि।
वस्त्र त्याग फुनि क्यों कहा, सो संशय मन माँहि ।।४३।।

उत्तर, दोहा

वसन सहित जिन-अर्जिका, धरै महाव्रत पञ्च।
वसन सहित मुनि नाँहि यों, वसन त्याग फुनि सञ्च ।।४४।।

बहुरी प्रश्न, दोहा

धरै अर्जिका वसन जो, अयल धरैं कोपीन।
गहै महाव्रत सहित क्यों, अयल होय क्यों हीन ।।४५।।

उत्तर, दोहा

उत्तमश्रावक ममत तैं, राखत हैं कोपीन।
शक्तिवान ह्वै ना तजैं, यों महव्रत तैं हीन ।।४६।।
वसन धरैं असमर्थ ह्वै, नाँहीं ममत अग्यान।
यों उपचार महाव्रती, सहित अर्जिका जान ।।४७।।

चौपई

म्हाव्रत षष्टम गुण है सोय, पञ्चम गुण में कैसे होय ?।
पद्मपुराण बड़े में कहा, महावरत सीता ने गहा ।।४८।।
मुनि ज्यों असन तपस्या गहै, अर जो सकल परीसा सहै।
असक होय राखै इक-चीर, भावित महाव्रती गम्भीर ।।४९।।

दोहा

समकित माँहीं कहत हूँ, भेद सुकारण काल ।
गुणस्थान दृष्टान्त थिति, अचल चलाचल साल ।।१।।

सम्यक्त्व के भेद

भेद होत समकित तनैं, दशविधि त्रिविधि सुजान।
पहलें दश विधि कहत हूँ, कारण कथन विधान ।।२।।

प्रथम; सम्यक्त्व के दश नाम, चौपई

आग्या मारग फुनि उपदेश, सूत्र बीज संक्षेप विशेष ।
अरथ-परकिरन मन अवगाढ़, दशमों है परमाअवगाढ ।।३।।
जो जिन भाषित सो सब सही, आग्या समकित में इम कही।
अशुभत्याग शुभमारग लगै, मारग समकित या विधि जगै ।।४।।
सुनि पुराण सरधा उरआन, सो सम्यक् उपदेश बखान।
आचारांग थकी सरधान, रिजूसूत्र समकित पहिचान ।।५।।
बीज समकिती ले सरधान, बीजभूत सुनि तत्त्व सुग्यान ।
लखि पदार्थ ले अल्प विधान, सो संक्षेप सम्यक्त्वि जान ।।६।।
द्वादशांग सुनि परगट होय, नामविशेष सम्यक्त्वि जोय ।
परकीरन तैं जो सरधान, अर्थसम्यक्ति सो पहिचान ।।७।।
अंगबाह्य अर अंगप्रमान, लखि अवगाढ़ करै बुधिवान ।
केवल निरखैं सब परजाय, सो परमाअवगाढ़ बताय ।।८।।

द्वितीय; सम्यक्त्व के तीन भेद, दोहा

भेद तीन सम्यक्त्व सुनि, क्षायिक स्वच्छ सरूप।
क्षय-उपसम फुनि उपशमी, ऐसे भेद अनूप ।।९।।

कारण, चौपई

क्रोध लोभ माया अर मान, अनन्तान की चार भयान।
प्रकृति मिथ्यात मिश्रमिथ्यात, गिनि मिथ्यात मोह की सात ।।१०।।
सातौं क्षय तैं क्षायिक होय, सातौं उपशम उपशम जोय ।
कछु उपशम कछु क्षय ह्वै जाय, कछुक उदय क्षय-उपशम माय ।।११।।

सम्यक्त्व कथन, दोहा

सर्व काल समकित सरव, नाना जिय सापेक्ष।
गति नर सुर नारक पशू, भाष्यो केवल देश ।।१२।।

सम्यक्त्व के गुणस्थान, दोहा

चौथा गुणथानक तनी, प्रगटै समकित तीन ।
क्षायक जान अजोग लौं, बहुरि सिद्ध गति लीन ।।१३।।

गुणस्थान है ग्यारवों, जो उपशान्तकषाय ।
तोलौं उपशम पाइये, बहुरि पतन ह्वै जाय ॥१४॥
अप्रमत्त गुण सातवाँ, जी - जो वेदक जान ।
क्षय-उपशम तैं भाव की, होय चारि गुणथान ॥१५॥

समकित दृष्टान्त, दोहा

बिन तपाय ज्यों भस्म में, अगनि परजलै नाँहि ।
त्यों न उदय मिथ्यात फुनि, क्षायक समकित माँहि ॥१६॥

सोरठा

ज्यों कजली आछाद, पवन जोग प्रकटै अगनि ।
त्यों कषाय उनमाद, उपशम तजि मिथ्यात ह्वै ॥१७॥

दोहा

बिन तताय भसमी कहूँ, सूक्षम कहुँक तताय ।
त्यों क्षय-उपशम समकिती, वरतैं ऐसे भाय ॥१८॥

सम्यक्त्व के स्थिति, दोहा

जिघन स्थिति समभाव है, लखि अपेक्षि गुणथान ।
तीनों समकित की सुनों, अन्तर-महुरत मान ॥१९॥
क्षायक की थिति मोक्ष में, जानि अनन्तानन्त ।
जिय संसारी क्षायकी, ताका सुनि विरतन्त ॥२०॥
भनि सागर तैंतीस फुनि, आठ बरस करि हीन ।
दोय कोड़ि पूरव अधिक, अन्तर-महुरत लीन ॥२१॥
नरभव आरजखण्ड में, कोड़िपूर्व थिति पाँहि ।
क्षायक ले वसु बरस का, अन्तर-महुरत माँहि ॥२२॥
अन्तर महूरत बिन थिति, आठ होय तम हीन ।
कोड़िपूर्व की भोग थिति, सर्वारथसिधि लीन ॥२३॥
सो सागर तैंतीस थिति, फुनि मानुष ले आय ।
तहाँ कोड़ि पूरव विषैं, गहि दिक्षा शिव जाय ॥२४॥
या विधि जानूँ तीन भव, अर जो देवै दान ।
ते सिवाय गिनि भोगभू, चार भवा निरवान ॥२५॥
उपशम लखि कै जो रुलै, को उत्तम थिति धार ।
परावर्त पुद्गल-अरध, बहुरि तजै संसार ॥२६॥
उपशम श्रेणी जिय धरै, इक भव में दो बार ।
अर्द्ध-पुद्गलावर्त में, जानों विरिया चार ॥२७॥

उपशम अन्तर-महुरत थिति, अधिक रहे नहि कोय।
तद्भव शिवह्वै कै लहै, अर्द्ध-परावृत सोय ।।२८।।
क्षय-उपशम उत्कृष्ट ह्वै, छ्यासठि सागर होय ।
दो सागर पहले सुरग, नवमें षोडश जोय ।।२९।।
अष्टादश थिति ग्यारमें, फुनि अष्टम ग्रैवेक ।
सागर तीस तनी गहै, गिनौं छाँड़ि के टेक ।।३०।।
जो इन सागर आय में, कछुक काल ह्वै हीन ।
सो क्षय-उपशम समकिती, मानुष भव धरि लीन ।।३१।।
फुनि दूजी विधि हूँ विषैं, छ्यासठि सागर मान ।
दोय बार सौधर्म में, सागर चार सुजान ।।३२।।
सात आन तीजै सुरग, ब्रह्म विषैं दशदीस ।
चौदा लान्तव सुरग में, अन्तिग्रीव इकतीस ।।३३।।

अचल, चलाचल श्रद्धान, दोहा

बन्ध उदै सत्ता विषैं, करै प्रकृति को नाश ।
मिटै न क्षायक थिर रहै, पहुँचावै शिववास ।।३४।।
सत्ता को मेंटि न सकै, करै उदै आछाद ।
उपशम लौं निर्मल रहै, धारै बहुरि विषाद ।।३५।।
परमत त्यागै वेद की, जिनमत में अनुराग ।
निज देवागम गुरु विषैं, मम-पर करै विभाग ।।३६।।

सम्यक्त्वी की पहिचान

लोक-राज अविरुद्धवर, देश काल वय जोग ।
पट-भूषण धारै इस्या, तृष्णा रहित मनोग ।।३७।।

जिनमत के तीन का चिन्ह, चौपई

नगनमुनी जिनमुद्रा लीन, उत्तमश्रावक जुत कोपीन ।
एक अर्जिका राखै चीर, चौथा भेद न जानूँ वीर ।।३८।।

चौथा गुणस्थान प्रति, चौबीस ठाना, दोहा

तिरस काय पञ्चेन्द्री जान, चारों गति भवि सैनी आन ।
तेरह जोग अहारक बिना, तीनूँ वेद असंजितपना ।।
मति श्रुति अवधि तीन सुग्यान, बिन केवलदर्शन सब जान ।
षट् लेस्या इकईस कषाय, अनन्तानुबन्धी नहि ताय ।।३९।।
नाम जाँनि अविरत गुणठान, क्षयिक उपशम वेदक मान ।
जीवसमास पञ्चेन्द्री जान, परज्यापत षट् जुत दशप्रान ।।४०।।

सब संग्या षट्विधि उपयोग, नाँहि अहार अहार संजोग।
लाख छबीस जोनि को जोर, इक-सौ साढे षट्कुल कोर ॥४१॥
आरति-रुद्र आठ विधि जान, भेद जु होय धरम के आन।
आग्या-विचय अपाय सुजान, अविरत माँहीं दशविधि ध्यान ॥४२॥
आश्रव षट्-चालीस संजोग, द्वादश अविरत तेरह जोग।
फुनि इकईस कषाय मिलाय, येते चौथे थान कथाय ॥४३॥

दोहा

थावर तन विकलत्रया, अभवि असैनी प्राण।
लब्धअपर्जें संयमी, केवल दर्शन-ग्यान ॥४४॥
अनन्तान की चौकड़ी, काय अहारक दोय।
पञ्चभेद मिथ्यात का, अविरत में नहि कोय ॥४५॥

चौथा गुणस्थान में बन्ध-उदय विछति, दोहा

बँध सतत्तर अविरत में, तीन मिश्र तैं थाय।
तीर्थङ्कर परकति बहुरि, दो मानुष-सुर आय ॥४७॥

बन्ध विषैं विछति, चौपई

क्रोध लोभ माया फुनि मान, अप्रत्याख्यानी चार बखान।
गति अरु आनपूरवी आय, तीनूँ मानुष तनें सुभाय ॥४८॥
औदारिक को अंग-उपंग, तन औदारिक का परसंग।
संहन वज्रवृषभनाराच, ये दश विछुरति अविरत साँच ॥४९॥

उदय, दोहा

उदय एक-सौ चार का, उदै अठारह नाँहि।
उदै विछति सरता लहै, अविरत थानक माँहि ॥५०॥
विछति अन-उदय मिश्र में, तीन-बीस पहिचान।
तामैं निकसि उदय भई, पाँच चतुरथै थान ॥५१॥
गिनि इक समकित मोहनी, आनपूरवी चार।
यों अष्टादश अन-उदय, अविरत माँहि सँभार ॥५२॥

उदै विछति, दोहा

आनपूरवी आयु-गति, नरक वेद षट् जान।
फुनि मानुष तिरजञ्च दो, आनपूरवी आन ॥५३॥
विक्रिय अंग-उपंग अरु, विक्रिय देह प्रमाण।
क्रोध लोभ माया गरव, चार अप्रत्याख्यान ॥५४॥
अजस अनादे दुरभगी, सतरा प्रकृति सजोय।
चौथा तैं पञ्चम गहत, तबै विछरवो होय ॥५५॥

सत्ता, दोहा

इक-सौ अड़तालीस की, सत्ता अविरत पाय।
तीर्थंकरनामा मिली, विछति नारकी आय ॥५६॥

शुभ लक्षण, दोहा

त्याग गृहन में जोगिता, जिन प्रभावना भाव।
मरमी जिनमत रहसि का, धीरज धरै उछाय ॥५७॥

अशुभ लक्षण, दोहा

लोभी परिजन काज को, भोगी विकथा लीन।
तिथि बाँधै विकलप रचै, बनै कपट तैं दीन ॥५८॥
कर्मप्रबल के वशु परे, सुर नर चौथे थान।
देशत्याग व्रत ना धरै, जिनपूजै दे दान ॥५९॥

सोरठा

बड़े भाग हैं ताँहि, जो निज-घर पूजैं प्रभू।
अर सामर्थि जो नाँहि, तो मन्दिर जा पूजि हैं ॥६०॥
जो नर-नारी कोय, जिनवर नितिप्रति पूजि हैं।
पूजैं तिहि सुरलोय, साखि सिन्दूर प्रकर्ण में ॥६१॥
दोऊ विधि उत्कृष्ट, सचित अचितकरि पूजिये।
मिथ्यामती कनिष्ट, आगमोक्त मानैं न जो ॥६२॥
बनैं न काज महान, विभो आय वीरज अलप।
पूजौं प्रभू सुग्यान, निरफल मति खोवो जनम ॥६३॥
लीजे शीश चढ़ाय, गन्धोदक अर आसिका।
दीनैं मैना लाय, श्रीपाल नृप सिर धरै ॥६४॥
पञ्चामृत अभिषेक, अतिपवित्र द्रवि करि करौ।
प्रासुक जल ही एक, अनसर तैं करता भला ॥६५॥

छप्पय

तन की बाधा भाँनि छनें उष्णोदक न्हावै।
धोती-दुपटो धार प्रभू अभिषेक रचावै॥
जल चन्दन-कश्मीर घसैं तन्दुल धो लावै।
मिष्ट सच्चिकण धान दूध नैवेद बनावै॥
सुच्छ सुगन्ध फल-फूल अति, हरित सुसक कर धारि कै।
जोय दीप घृत धूप तैं, पूजो जिन अघ टारि कै ॥६६॥

सोरठा

कीजे नाँहि हानि, दान निरन्तर दीजिये।
पातर भक्ति प्रधान, दुःखित की करुणा लये ॥६७॥
आरसवन्त अज्ञान, करि बिना तकिवो करै।
करै न पूजा दान, डूब्या आप डुबावता ॥६८॥

॥ इति चतुर्थ गुणस्थान कथन ॥

पञ्चम गुणस्थान, चौपई

उदय उपशम अप्रत्याख्यान, सब जिय जानैं आप समान।
आतमलीन प्रतिज्ञावान, देशव्रती पञ्चम गुणथान ॥१॥

दोहा

धारै गुण इकीस को, तजि अभक्ष्य बाईस।
हरै विसन ले मूलगुण, जिन बिन नमैं न शीश ॥२॥

श्रावक के इकईस गुण, दोहा

लज्या-दशा प्रसन्न-चित, सोम-दृष्टि संतोष।
गुणग्राही उपगारता, फुनि ढाँकन परदोष ॥३॥
प्रीति सबन में सुष्ट-पखि, गौरव हित-मित वैन।
क्रियावान-पण्डित-रसिक, ग्यानी थरमी जैन ॥४॥
ना अभिमानी दीन नहि, मधि विवहारीवान।
विनयवान श्रावकग्रही, गुण इकईस निधान ॥५॥

बाईस अभक्ष्य, दोहा

पीलू पीपर ऊवरा, कटूवरा बड़गोल।
मदिरा आमिष फुनि सहित, मिलत दुदल तैं घोल ॥६॥
फल अजान विष मृत्तिका, वस्तु चलित-रस जोय।
बिन ताया-घृत-लूणियाँ, शीत जम्याजल होय ॥७॥
वृन्ताओला अलपफल निशिभोजन संथान।
कन्दमूल बहुबीजफल, तजि बाईस अखान ॥८॥

वनस्पती प्रति जीवन का स्थान।

मूल काठ दल फल त्वचा, बीजपुष्प ये सात।
इनमें जीव जुदाजुदा, दया करो लखि भ्रात ॥९॥

षट् हिंसा कर्म, दोहा

चूला चाकी ऊखली, जल-घट हार निहार।
गेही के षट् कर्म अघ, कीजे जतन विचार ॥१०॥

अवर (दूसरे) त्याग, दोहा

चर्मपात्र के मध्य का, हींग तेल घृत वारि ।
बींध्या-अँन जल बिन छन्या, बासी रोटी दारि ॥११॥
अन-मूँगादिक सावता, सावत-फल पूंगादि ।
वेर कुसुम अरु शाकदल, श्रावक को नहि खादि॥१२॥
जैसे जिय के चर्म में, धरिये घृत जल तेल ।
जैसे जिय उपजत घनें, दोय घटी के मेल ॥१३॥
चून न लहो बजार का, बींधे का न प्रमान ।
छाज चालनी ताखड़ी, सपरस चर्म सुजान ॥१४॥
चाकी घरो किवार में, निरचूँ छाया कीन ।
दिन में झारि पिसाइये, कन चिहुँटी तैं बीन ॥१५॥
सुनि मर्यादा चून की, शीतकाल दिन सात ।
गरमी माँहीं पाँच दिन, तीन दिवस बरसात ॥१६॥
खाण्ड चासनी सीरनी, चार पहर की जोग ।
भाजी रोटी दार हूँ, दोय पहर लौ भोग ॥१७॥
बिन छान्या जल अञ्जुली, पीवत एता पाप ।
सौ गाँवन के दाह तैं, ह्वै जे तो संताप ॥१८॥
गाढे पट दुहरा थकी, वारि छानि कै पीव ।
सुविधि जिवान्या कीजिये, धरिकैं दया सदीव ॥१९॥
छानि लिया जल द्वै-घटी, उष्ण किया वसु जाम ।
अन्य द्रव्य तैं मिश्रजल, दोय पहर का काम ॥२०॥
दोय-घटी काचा दुगध, उष्ण जाम शुभ चार ।
दही-छाछ दिन दोय लौं, खाजे राख विचार ॥२१॥
वरण-वास पलटै तबै, ह्वै है जोगि-अजोग ।
मोदक मेवा तेल घी, तजो चलित-रस भोग ॥२२॥
राई लौंन मिला दही, बाढ़ै खाटा राब ।
तजो जलेबी दधिसु गुड़, मुरवा वारि-गुलाब ॥२३॥
साधरमी तैं बिन किया, भोजन नाँहीं लीन ।
लोंजी मुरवा खाइये, दोय जाम का कीन ॥२४॥
चूला लकरी झारि कैं, दिन में अगनि जलाय ।
सुविधि बनाया खाइये, निशि का किया न खाय ॥२५॥
लेना देना जोग नहि, पात्र वसन निज ताँहि ।
जो किरिया जानैं नहीं, अपने मत में नाँहि ॥२६॥

जिनमत कहे अखादि कौं, जे विषई बनि खात।
सो त्रस-थावर जीव का, घाति गहै मिथ्यात ॥२७॥
वसन असन पातर वपू, छीबत पाप महान।
रजस्वला तिय चार दिन, अन्तजवत् पहिचान ॥२८॥
प्रछन रहै भू पै परै, लोहपात्र में खाय।
द्योस पाँचवें स्नान तैं, रजस्वला शुधताय ॥२९॥
द्वादश म्हाजन पँच द्विज, सूदर पन्द्रै जान।
रजपूतन के दश दिवस, सूतक काल प्रमान ॥३०॥

श्रावक की दिनचर्या, दोहा

प्रात हि उठि जल छाँनि कैं, तन की बाधा भान।
मुँह धो दाँतुन ना करै, दे वन्दीजन दान ॥१॥
बहुरि न्हाय उजरे वसन, बिन सीया तनधार।
निरजन थानक देखि के, सामायक ले सार ॥२॥

चौपाई

जल चन्दन तन्दुल पहुपारु, दीप धूप फल अर्घ सुचारु।
वसुमंगल उपकरण सरूप, विविधि जाति वादित्र अनूप ॥३॥

दोहा

जो नहि आया लाहना, जो नहि भोजन शेष।
जो नहि बींध्या चलित-रस, ऐसा द्रवि विशेष ॥४॥
जिनमन्दिर जा वस्तु को, मेलै जतन सँवारि।
सपरस हीन निवारि कैं, जिय की हिंसा टारि ॥५॥
प्रथम जिनालय जाय कैं, लखि दर्शन जिनदेव।
करि अष्टांग प्रणाम कौं, तीन-प्रदक्षिणा देय ॥६॥
दो-कर दो-पद एक-शिर, मन-वच-काय सयान।
भुमि विषैं दण्डवत नमन, सो अष्टांग विधान ॥७॥
पञ्चकल्याणक में सुनें, जे-जे कारण काज।
ते जिनछबि पै ध्यान धरि, लखिये समै समाज ॥८॥
तन-मन-वचन पवित्रकरि, आगमोक्ति पढ़ि पाठ।
जिन न्हावन करि पूजिये, रचि उछाह के ठाठ ॥९॥
बहुविधि जिनवर स्तुति, पढ़ि जिन आगमपूज।
जिनमत गुरपद पूजिये, करि तत्त्वनि की बूझ ॥१०॥
स्वाध्याय को कीजिये, जो गुरु दिया बताय।
फुनि इन्द्री अर प्राण तैं, लीजे संजम ध्याय ॥११॥

उक्तं च श्लोक

देव-पूजा-गुरुपास्तिः, स्वाध्यायः संयमं तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने-दिने ॥क्षेपक॥

दोहा

यथाशक्ति व्रत ग्रहण करि, बहुरि निजालय आय।
लखि पात्रन कूँ भक्ति तैं, दान चार विधि दाय ॥१२॥
ये षट् कर्म उछाह में, करि पूरण बुधिवान ।
बहुरि अर्थसाधन करैं, भोजन जोगि पिछान ॥१३॥

जिनमन्दिर में ऐसे कार्य नहीं करना, दोहा

पाँचों इन्द्रिय के विषैं, शय्या शयन निहार ।
शोक हास्य विकथा वृथा, क्रय-विक्रिय विवहार ॥१४॥
थूक गारि कर्कश वचन, अशुचि निलज मदपान।
सुरतादिक क्रीड़ा अधम, जिन मन्दिर नहि ठान ॥१५॥

अलीन कर्म, दोहा

बाधी करै न डाह दे, पेलै कोलू नाँहि ।
द्रह-तडाग फोड़ै नहीं, ना दौ दे वन माँहि ॥१६॥
दन्त-केश-रस ऊपला, कोला दल फल फूल ।
पशु-किराय गणिका-करज, खानि-खनन के सूल ॥१७॥
दासी पशू क्रय-विक्रय, नील कसूमा आल ।
लोह लाख लकरी किरम, सावन खारी खाल ॥१८॥
प्राणहरण सहुरादि विष, महुवा मादिक खादि ।
जिनमत कहे अभक्ष्य फुनि, बींधधान तिल आदि ॥१९॥
श्रावक के कुल पाय कैं, कुविनज अते निवारि ।
सुविनज करि आजीवका, क्रोधि कपट कूँ टारि ॥२०॥
करत-करत आजीवका, रहत द्योस अवशेष ।
ले-पे स्वादिक खाद्य का, गहत त्याग निशि-देस ॥२१॥
साक्षि समैं जिनछबि निरखि, करै परमेष्ठी जाप।
धरै श्रवण गुरु कै वचन, हरै आपके पाप ॥२२॥
बहुरि आप अपने सदन, दैं परिजन कूँ जाव ।
पोढ़ रहै निज सेज पै, परतिय का नहि साव ॥२३॥
यथाशक्ति साधन करै, धर्म अर्थ अर काम ।
करै नहि विपरीत मत, गहै दया वसु जाम ॥२४॥
वरण्यों श्रावक आचरण, यों संक्षेप विधान ।
ग्यारैं प्रतिमा याँहि में, ताका सुनों बखान ॥२५॥

कर्म-मोक्ष जिन-ध्यान में, ह्वै तन थिति तैं ध्यान।
सो तन थिति श्रावक करै, दे-दे भोजनदान ॥२६॥
तन विरक्त मुनि मन बसै, रहत सदन सुखदान।
उदासीन गेही रहै, अचरज धरत महान ॥२७॥
ह्वै उदास संसार तैं, पालै व्रत पचखान।
संयम की उत्पति जहाँ, प्रतिमा ताकूँ जान ॥२८॥

अथ ग्यारह प्रतिमा के नाम, दोहा

दर्शन व्रत सामायकी, पोखै सचितअखान।
दिवस-नारि निशि ना अशन, ब्रह्मचर्य पहिचान ॥१॥
निरारम्भ निरपरग्रही, अनुमतित्याग महान।
उद्देशत का परिहरण, ग्यारह प्रतिमा जान ॥२॥
ग्यारै लौं अनुक्रम सहित, श्रावक चढ़त पुनीत।
भंग अनुक्रम ना चढ़ै, चढ़ै गिरै सु अनीत ॥३॥
षट् लौं श्रावक जघनि गिनि, नव लौं मध्यमवान।
प्रतिमा दशमी-ग्यारमी, श्रावक उत्तम जान ॥४॥

पहली; दर्शन प्रतिमा, कुण्डलिया

सेवत प्रभु अरिहन्त कौं, धर्म दयामय जान।
सर्वसंघ त्यागी गुरु, मानैं दर्शनवान ॥
मानैं दर्शनवान, आतमा पुद्गल न्यारा।
नय-परमाण पिछान, सात तत्त्वनि रुचि धारा ॥
वर व्रतभावसु कर नमें, नहीं आन कुदेवत।
आठ मूलगुण धरैं, व्यसन सातूँ नहि सेवत ॥१॥

आठ मूलगुण, दोहा

पीपर बरड कठूँवरा, ऊमर पीलूँ पाँच।
मधु मदिरा आमिष तजन, आठ मूलगुण साँच ॥२॥

सात व्यसन नाम, दोहा

जूवा आमिष परतिया, वेश्या चोर शिकार।
मदिरा जुत सातूँ व्यसन, सेवत नर्क तयार ॥३॥

सप्त व्यसन स्वरूप, कुण्डलिया

जूवा कबहुँ न खेलिये, सर्व व्यसन को मूल।
तुरत मिलावै आपदा, पतितन का सम-तूल ॥
पतितन का सम तूल, गारि मुख सहजैं सुनिये।
करै शपथ जो कोटि, धीज ताकी नहि मुनिये ॥

कुल के सज्जन कहै, भैया तू हमसुँ मूवा ।
अब घर में मति रहो, अन्त कहुँ वसि रे जूवा ।।४।।
आमिष क्रमिकुल कलित है, कबहुँ न होत अदोष ।
निपट निंद्य असुहावना, महापाप का कोष ।।
महापाप का कोष, जान धरमीजन छांड्या ।
लायक नर्क निवास, जोग जिन खावन मांड्या ।।
घास खाय वन बसै, दुष्ट डर रहै अनामिष ।
ऐसे जीवनि मारि, अधम नर काढ़त आमिष ।।५।।
नारी-पर प्यारी चहै, कुल की लाज गमाय ।
निश-दिन चित चितवत रहै, कब संगम ह्वै जाय ।।
कब संगम ह्वै जाय, तहाँ खरका सुनि धूजत ।
मिलै व्योंत अविरुद्ध, होश मन की नहि पूजत ।।
सुनत राज हर लेत, खोसि धन करत खुवारी ।
परभव नरक निवास, तजो पर-नारि अनारी ।।६।।
गणिका मन निरखत हरै, परसत धन हर लेत ।
भोग किये रोगी करै, हीन भये तजि देत ।।
हीन भये तजि देत, प्रीति जाकी नहि साँची ।
बहुपुरुषन की झूठ, निलज ह्वै घर-घर नाँची ।।
ऐसि अधम तैं प्रीत, करत धृक तन मन तिन का ।
परभव भोगैभोग, उष्ण लोहे की गणिका ।।७।।
चोरी चित कलुषित करै, चितवत अह-निश घात ।
प्रगटन भोगै सम्पदा, जानि परै उत्पात ।।
जानि परै उत्पात, रूप विपरीत बनावै ।
कारो मुख करि काढ़ि, मूँड सिर गधै चढ़ावै ।।
हा ! हा ! सब मिलकरैं, निरखि ताके सँग थोरी ।
प्रचुर कष्ट भोगाय, नर्क ले जावै चोरी ।।८।।
वन में बसती तजि बसैं, निर्धन वस्तर हीन ।
चोरी करै न चाकरी, घास चरै मृगदीन ।।
घास चरै मृगदीन, तिनूँ पै आयुध साधे ।
करै क्रूर निज प्राण, पार के प्राण विराधे ।।
ताके फल तैं अशुभ, भोग भोगै नरकन में ।
नेक स्वाद के काज, धिरक जे फिर है वन में ।।९।।
पीवत मद विषयी अधम, खोवत अपना ग्यान ।
जोगि-अजोगिन जान ही, होत विकल तन प्राण ।।

होत विकल तन प्राण, नारि निरखे ही दौरत।
बोलै वाक कुवाक, जान जननी निज औरत ॥
ठान अशुचि विपरीत, ताँहि "बुध" नाँहीं छीवत।
हीन सदन में बनी, राशि कृमि धृक जे पीवत ॥१०॥

छप्पय

सम्यक्‌दर्शन ग्यान, चरित शिवमारग केरा।
जनमें अविरतथान, वृद्धअनुक्रम भोतेरा ॥
आदि अणुव्रत लहै, बढ़ै ग्यारै प्रतिमा लौं।
बहुरि महाव्रत गहै, चढ़ै श्रेणी द्वादश लौं ॥
पूरण बनें सजोग गुण, वहाँ चतुष्टय तैं भरैं।
तहाँ प्रगटि केवल दरश, ज्ञान वीर्ज सुख अनुसरैं ॥११॥

दूजी; व्रत प्रतिमा, दोहा

काल अनन्तानन्त लौं, रहै सुथिर निज माँहि।
लोकालोक विलोकतो, उपजे बिनसैं नाँहि ॥१॥
सात तत्त्व सरधान धरि, व्यसन न सेवै कोय।
आठ मूलगुण संग्रहै, सुर ह्वै फुनि शिव लोय ॥२॥
पालै पाँचूँ देशव्रत, धारै गुणव्रत तीन।
शिक्षाव्रत चारों सहित, सो प्रतिमा-व्रत लीन ॥३॥

चौपई

जग-सुभाव कूँ बारम्बार, गहि विराग चित करै विचार।
माया मिथ्या बहुरि निदान, ना चितवै वरती बुधिवान ॥४॥
जाति जीव तैं मैत्री भाव, गुणी देखि हरखै करि चाव।
दुःखित की करुणा वर धरै, दुष्टनि तैं माद्धिस्या करै ॥५॥

अथ पञ्चअणु व्रतों के नाम, दोहा

हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह भार।
एकोद्देशी त्यागवो, पञ्च अणुव्रत धार ॥६॥

पहला; अहिंसाणुव्रत

कृत कारित अनुमोदना, मन वच तन करि लाग।
व्रती होय जो करत है, जावत जीवत त्याग ॥७॥
लोक-लाज नृप डर थकी, तजै लोक पन पाप।
अशुभ आश्रव विरति हैं, तजै जिनमती आप ॥८॥
महाव्रती मुनिवर तजै, त्रस-थावर का घात।
अणुव्रती श्रावक थका, त्रस हिंसा वचि जात ॥९॥

चौपई

गेही तैं आरँभ नहि टरै, डरतो अनसरतो लघु करै ।
अग्नि वनस्पति भू जल वाय, घीव दूध लौं वरतैं जाय ॥१०॥

प्रश्न, दोहा

अणुव्रती गेही तजैं, नवकोटी त्रसघात ।
ताके ये कैसे रहैं, है गै खेती वात ॥११॥

उत्तर, दोहा

उदिम विरोधी आरँभी, कलपित हिंसा चार ।
संकलपी उद्यम तजै, शेषा करे विचार ॥१२॥

कुण्डलिया

गेही-पद में शान्ति जिन, चक्रि भरत हरिषेन ।
सेठ सुदर्शन आदि बहु, अणुव्रत कहा धरेन ॥
अणुव्रत कहा धरेन, काज कीनें पद सारूँ ।
फोज खेप व्योपार, कृषी-सेवा के धारूँ ॥
कियो कथन विस्तार, मुनीश्वर पुराण घनो ही ।
निश्चय सुरपद लहै, अनुक्रम ले शिव रोही ॥१३॥
देखो अबै अभाग ये, परगट हुण्डक काल ।
साकेता चौगिरद भू, दीखै नाँहीं हाल ॥
दीखै नाँहि हाल, धर्म मुनिश्रावक धारी ।
परम्परा गी टूटि, हानि मोठी है ख्वारी ॥
कर्म कुमाई मिली, सुतो ताको न परेखो ।
तामें सहि राय है, शास्त्र-बँचते वह देखो ॥१४॥
नृपति सेठ द्विज शूद्रजन, लेते अणुव्रत धार ।
करते निजपद जीविका, हरते पाप विकार ॥१५॥
अणुव्रत धारै गीध ने, धरै करी मृगराज ।
मानुष जैनी ना धरै, बूडै छोड़ जिहाज ॥१६॥

दोहा

मेरे जैसा पार कै, ये उर राखि विचार ।
पाँच पाप कूँ डर तजै, सो वरणी हितकार ॥१७॥

हिंसा का लक्षण, दोहा

पीड़ैं प्राण प्रमाद तैं, सो है हिंसा पाप ।
पर की हिंसा हो न हो, निश्चय हो है आप ॥१८॥

जाकी हिंसा हिंस सौं, करता हिंसक जान।
हिंसा प्राण न पीडना, फल हिंसा अघ खान ॥१९॥
गोपि प्रतक्षि आगम कथत, कृत कारित अनुमोद।
या विधि हिंसा होत है, कारज कीजै सोद ॥२०॥
गोपि नाज फूली सहित, परतखि गोचर नैन।
विदल चलत-रस चर्म-जल, भाषत आगम जैन ॥२१॥
हिंसा के संकल्प को, त्यागै वरती होय।
आरँभ उदिम विरोध की, त्यागै अनुक्रम जोय ॥२२॥
ह्वै कषाय तैं वे-खवरि, इन्द्रनि का सञ्चार।
यही प्राण निज पीड़िवो, तन मन वचन विकार ॥२३॥
जतन सावधानी निपट, नहि प्रमाद का लेश।
हिंसा बन गई जो कदा, तो न पाप प्रवेश ॥१४॥
जहाँ सावधानी नहीं, वशप्रमाद कै भूल।
हिंसा जिय की ना हुई, तरु कषाय का मूल ॥१५॥

प्रश्न, चौपई

प्राण नाश प्राणी नहि नसै, तापै हिंसा कैसे बसै।
तिय धन हरते प्राण न हनै, तामैं हिंसा कैसे बनै ॥२६॥

उत्तर, सोरठा

व्योहारै दशप्राण, परमारथ नैं ज्ञान है।
ज्यों-ज्यों पीडैं ज्ञान, त्यों-त्यों हिंसा अवतरै ॥२७॥
मृतिका काठ पषाण, चित्र वन्या प्राणी हनैं।
जाका पाप महान, राय जसोधर साखि सुनि ॥२८॥
एक वचन सो पाप, मन तन जुत को कहि सकै।
गारी काढै आप, डरै नहीं मारै-मरै ॥
हिंसा सो नहि पाप, दया समान न धर्म की।
हिंसा जग संताप, दया मात है जगत की ॥२९॥

अथ अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

रोकै बाँधै नाँहि, छड़ी चाबुक नहि मारै।
कान नाक नहि छिदै, भूख तिरषा न विडारै ॥
अधिक न्याय का बोझ, कँदा लादै नहि ज्ञानी।
राखैं हिये विचार, दुखावै कोय न प्रानी ॥३०॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

कुण्डलिया

जे जिय वरजै ना रहै, करै आपमें रार।
जिनकै सिर अर पीठ पै, राखे रहिये भार ॥
राखे रहिये भार, युगान्तर यों चलि आई।
करै विविध उपकार, नाज चारा दे भाई ॥
करी यही भरतेश, अजो करि है सब गरजै।
तिणा खाय पय देय, काज ऐसे ही सरजै ॥३१॥
हिंसा अघ का मूल है, नर्क पन्थ अनुकूल।
फुनि हिंसक फुनि नारकी, यो ही याको शूल ॥
यो ही याको शूल, तूल अणु ह्वै साधारण।
काल अनन्तानन्त, निगोद करे भव धारण ॥
सब जिय आप समान, लखै भवि धरि कै सम्यक।
यातैं "बुधजन" तजो, क्रिया जे-जे हैं हिंसक ॥३२॥

दोहा

धर्म अहिंसा जिन कह्यो, ताँहीं के ये भेव।
अनृत चोरी परतिया, आरँभ धरन अछैव ॥३३॥

अथ दूसरा; सत्याणु व्रत का कथन, दोहा

साँचे अथवा झूँठ जो, अप्रशस्त दुखकार।
इस्या वचन का त्यागना, अनृत विरति विचार ॥३४॥
बिन कीनी कीनी कहै, कीनी करि नटि जाय।
छती अनछती कहत है, अनृत के परभाय ॥३५॥
धर्म करै पीड़ा हरै, इसी झूठ भो साँच।
साँच नहीं वा झूठ है, धर्म हरै दे आँच ॥३६॥
झूठ न बोलै सर्वथा, गहै मौन मुनिराज।
गेही बोलै दुख हरण, तथा धर्म के काज ॥३७॥

सत्याणु व्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

खोटा दे उपदेश, क्रिया दम्पति की खोलै।
बिना कही लिख देत, रचे पर-धन का भोलै ॥
पर-तन चेष्टा देख, कहै वाके मन की जब।
अतीचार ये पाँच, दूसरे व्रत के हैं सब ॥३८॥

कुण्डलिया

हित मित वचन उचारिये, लखि निज-पर उपकार।
जहाँ कछु नहीं बोलना, बोले होत बिगार ॥३९॥

बोले होत बिगार, सरलता राखो मन में।
तजो कामना दुष्ट, हरो ममता परजन में ॥
कह एस्या उपदेश, जिस्या कहना ही उचित।
नातर ल्यौ प्रभु नाम, करो कारज अपना हित ॥४०॥

दोहा

तन मन की तो दुष्टता, अलप-बुरी तहकीक।
वचन दुष्ट तैं जग डरै, तातैं बोलो ठीक ॥४१॥

॥ इति सत्याणु व्रत ॥

अथ तीसरा; अचौर्य अणु व्रत, दोहा

जो लेवे द्रवि बिन दिया, चोरी ताँहि बताय।
जल हुँ ले न मुनि बिन दिया, गेहि तजै अन्याय ॥४२॥
जो जीवत है प्राण तैं, प्राण रखै धन-धान।
जे पर का धन-धान ले, सो हत्यारा जान ॥४३॥

प्रश्न, दोहा

चोरी परतिय घात त्रस, त्यागे दर्शनवान।
व्रतप्रतिमा फुनि क्यों लिख्या, ताका कहा विधान ॥४४॥

उत्तर, दोहा

प्रथम मूल-मातर तजैं, इहाँ तजैं नव कोट।
अन्तराय हुँ बचाय कै, पर खादे नहि खोट ॥४५॥

कुण्डलिया

धन प्यारा है प्रान तैं, धन राखै दे प्रान।
जो जिय परधन को हरै, याही मोटी हान ॥
याही मोटी हान, होत निज-पर के आकुल।
जगत निन्द ह्वै मरै, धरै खोटी गति व्याकुल ॥
मिलि है प्रापतिमान, आन समतावर "बुधजन"।
तजि अनीत भजि नीत, हरो मति पर के तन धन ॥४६॥

दोहा

जो ही साँचा जिनमती, जिनवर आग्या मान।
आँन वस्तु जो ना लहै, लये मिथ्याती जान ॥४७॥
मिथ्या तन कै वर बसै, कपट झपट कर ठाट।
निश्चय बिन प्रापत कठिन, मिलै न हेरै वाट ॥४८॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

अथ अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

आप परे रह चोर, गहै धन चोरी लाया।
भारे हरवे वाट, भलै में खोट चलाया॥
गोप विञ्ज करि लेत, नृपति कै हासिल खोवे।
चोरी के अतिचार, पाँच या विधि तैं होवे॥४९॥

॥ इति अचौर्याणुव्रत अणु व्रत ॥

अथ चौथा; ब्रह्मचर्याणु व्रत, सोरठा

दम्पति चेष्टा राग, सो मैथुन मुनिवर तजै।
निज-परनी बिन त्याग, गेही अब्रह्म व्रत करै॥५०॥

प्रश्न, दोहा

गणिका राजी धन लिये, परतिय राजी मोह।
होत कहा अपराध है, सो भाखो तजि कोह॥५१॥

उत्तर, दोहा

नीति हनैं निन्दा बढ़ै, दोऊ कुल अकुलात।
राग बढ़ै तन बल घटै, या सम को उत्पात॥५२॥
ग्यान रहै नहि धर्म का, त्यागै सकल उपाय।
चकित-थकित चित ह्वै रहै, लहै सदा चित चाय॥५३॥

कुण्डलिया

नारी नागिन-सी मनूँ, पै यामैं अधिकाय।
नागिन या भव कूँ हरै, या भव-भव दुखदाय॥
या भव-भव दुखदाय, रहै नहि कुछ सुध अपनी।
खान-पान तज देत, करै तिय मूरति जपनी॥
आगल मुकती दुवार, तनी या जानूँ भारी।
''बुधजन' सबही तजैं, ब्रह्मव्रत व्याही नारी॥५४॥

अथ ब्रह्मचर्य अणु व्रत के पाँच अतीचार

पर का व्याह न करै, काम के कारण त्यागै।
बिन व्याही सब तजै, तजै व्याही-पर जागै॥
योनि-लिंग बिन आन, कामक्रीडा ना करि हैं।
अतिचार ये अब्रह्म, तिन्हैं ग्यानि परिहरि हैं॥५५॥

दोहा

बड़ी मात छोटी सुता, निज पतनी-बिन नार।
ताकी महिमा का कहूँ, सुरपति ले बलिहार॥५६॥

त्यागे तैं मरते नहीं, सेते बचते नाँहि।
तेरा क्या परनारि में, तजता नाँहीं काँहि ॥५७॥

॥ इति ब्रह्मचर्याणु व्रत ॥

अथ पाँचवाँ; परिग्रह परिमाणाणु व्रत, दोहा

परिग्रह कहिये पर ममत, सकल तजै मुनिराज।
बहुत तजै राखै अलप, गेही कुल के काज ॥५८॥

प्रश्न, दोहा

ममता अभ्यन्तर बसे, परिग्रह भाख्या ताँहि।
बाह्य परिग्रह क्यौं कह्या, या शंका मन माँहि ॥५९॥

उत्तर, दोहा

तजै ममत बाहर मिटै, करै ममता ह्वै वाज।
बाह्य लखै ममता बनै, ममता बाहिर काज ॥६०॥
अन्तर बाहिर दोय ही, परिग्रह तना समाज।
राखै-राखै जगत में, तजै होय जिनराज ॥६१॥

प्रश्न, दोहा

तुम रागादि कषाय कूँ, कहा परिग्रह माँहि।
कैसे दर्शन-ज्ञान कूँ, कह्या परिग्रह नाँहि ॥६२॥

उत्तर, दोहा

दर्शन-ज्ञान सुभाव निज, ते नहि त्यागे जाय।
कर्म उदय रागादि ह्वै, ये त्यागे घटि जाय ॥६३॥

अथ परिग्रह परिमाण अणु व्रत के पाँच अतिचार, छप्पय

क्षेत्र-नाज का खेत, वास्तु है हाटरु मन्दिर।
रूपा-हिरण्य बखान, स्वर्ण-सोना अति सुन्दर॥
गऊ आदि धन-धान, तन्दुलादि पहिचानूँ।
परकर के नर-नारि, दास-दासी वर आनूँ॥
रेशम कुपि चन्दनादि कौं, कर प्रमाण अति विस्तरै।
अतीचार तब पाँच ये, परिग्रहव्रत में अवतरै ॥६४॥

कुण्डलिया

अतीआरम्भ परिग्रहै, अतिअघ की बढ़वार।
कछू घटाये तैं घटै, ताका करौ विचार॥
ताका करो विचार, बीजवट न्यायसुँ जानूँ।
एक बीजवट एक, बीज केते वट थानूँ॥

यातैं परिग्रह हरौ, धरो "बुधजन" समता अति ।
ऐसे सन्ततिमान, घटावो तृष्णा नितप्रति ॥६५॥

दोहा

ममता तृष्णा अगम है, कीये वार न पार ।
मुनि आगम ओछी करत, जा पहुँचे भवपार ॥६६॥

छप्पय

परिग्रहवश अघकरी, दूर देशन में डोलै ।
परिग्रहवश ह्वै दीन,-हीन चुगली मुख बोलै ॥
परिग्रहवश अघ करै, डरै विपता तैं नाँहीं ।
परिग्रहवश धनदेय, लेय कीरति कुल माँहीं ॥
हीन अलीन लखै नहीं, तृष्णा दिन-दिन विस्तरै ।
या परिग्रह के मोह करि, परै जाय नरकन परै ॥६६॥

॥ इति परिग्रह परिमाणाणुव्रत ॥

अथ सप्त शीलव्रत कथन, दोहा

पाँचों अणुव्रत पुष्ट हित, सात शील यम धार ।
तीनों गुणव्रत कीजिये, फुनि शिक्षाव्रत चार ॥१॥

अथ दिग्व्रत, दोहा

पूरवआदि दिशानि प्रति, नदी नगर गिरि-आदि।
जीना तोलों जावना, नाँहीं जानों वादि ॥२॥
ताँहीं जानों भूमि जिह, तासा पेखि विचार ।
है उपचार महाव्रती, आश्रव इता निवार ॥३॥

अथ दिग्व्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

ऊँचा चढ़ै गिरादि, तलै कूवा तैखाना ।
तिरजग गुफा प्रवेश, करै संख्या अधिकाना ॥
दिशि मरयाद बढ़ाव, तथा मरयादा भूलै ।
अतीचार ये पाँच, दिशाव्रत के प्रतिकूलै ॥४॥

अथ देशव्रत, दोहा

दिशि मर्यादा करि विषै, धारै अलप प्रमान ।
मास पक्ष दिन याम जो, देशव्रती सो जान ॥५॥
रोग शोक डर लोभ वश, धरै न अधिकापाय ।
तातैं इता महाव्रती, बाहर तजा उपाय ॥६॥

सोरठा

कीता अधिका त्याग, राख्या अपने काज का।
देखो चतुर सुजान, सहज महाव्रत-सा गह्या ॥७॥
भोला जगत अपार, पाप निरर्थक ना तजैं ।
राखे सिर पर भार, गुर दयाल इम उच्चरैं ॥८॥

अथ देशव्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

बहिर मँगावै नाँहि, नाँहि भेजै कुछ देकै ।
रूप बतावै नाँहि, नाँहि काँकर कूँ फेंकै ॥
मुँह खँखार हूँकार, आन क्षेतर न सुनायै ।
राख्या भूमि सिवाय, काज ऐते न बनावै ॥९॥

अथ अनर्थदण्डव्रत, दोहा

निज-पर कै शुभकार नहि, उलटा बनत विगार ।
अनरथदण्ड सो पाँच विधि, त्यागै व्रती विचार ॥१०॥

पाँच अनर्थदण्ड के भेद नाम, दोहा

अशुभध्यान उपदेश अघ, अर परमाद चरित्त ।
हिंसा कारण दान फुनि, पापकथा तजि मित्त ॥११॥

चौपई

भला-बुरा पर-चितवै चाय, अशुभध्यान ताकै ह्वै जाय ।
हिंसा विणजी कृषी कलेश, प्रेर कराये अघ उपदेश ॥१२॥
तरु तोरै जल ढोरै नाह, प्रमद चरित वन में दो दाह ।
विष असि अगनि फावडा दण्ड, हिंसा कारण दे न प्रचण्ड ॥१३॥
राज चोर तिय असन कहानि, पापकथा ठानैं अग्यानि ।
इनमें कुछ स्वारथ है नाँहि, न्हाक फँसी मत कलमष माँहि ॥१४॥

अथ अनर्थदण्ड व्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

भण्ड-वचन ना करै, हाँसि खुशि खेलि न करि है।
धीठ प्रलाप न करै, गमन तन पीठ न हरि है ॥
खान-पान पट धान, अधिक संचय न विचारै ।
अतीचार हि अनर्थ,- दण्ड के पाँच निवारै ॥१५॥

दोहा

तीनूँ गुणव्रत कहि दिये, सुनि शिक्षाव्रत चार ।
ताके साधै सुख सुगम, सधि है व्रतअनगार ॥१६॥

अथ चार शिक्षाव्रतों के नाम, दोहा

सामायक प्रोषधकरण, भोगुपभोग प्रमान ।
गिनी अतिथिसंभाग जुत, शिक्षाव्रत अभिधान ।।१७।।

सामायक व्रत, दोहा

निज सरूप में लीनता, कै परमेष्ठी ध्यान ।
समता सब तैं धारना, सो सामायक जान ।।१८।।
सब सावदि तजि एक थल, रहना करि मरयाद ।
भई परीस्या को सहै, धरै नाँहि परमाद ।।१९।।
धारैं दुपटा-धोवती, ताहूँ सों न ममत्त ।
जनम-मरण लोहा-कनक, सुख-दुख में समचित्त ।।२०।।
जोलों सामायक विषैं, तोलों म्हाव्रतवान ।
त्यागी सावद सकल का, मानूँ मुनी समान ।।२१।।

सामायक के पाँच अतिचार, दोहा

मन-वच-तन तिहुँ जोग में, अन्य दुष्टता होय ।
पाठ-क्रिया में भूलना, करै अनादर जोय ।।२२।।

अथ प्रोषधोपवास व्रत, दोहा

परवी आठै-चौदशी, तजि कैं विषय विकार ।
संस्कार आरम्भ तजै, चार प्रकार अहार ।।२३।।
जिन मन्दिर या मुनि निकट, वा निजघर वरथान ।
वसि कैं धरम कथा सुनैं, जिन सुमरै दे ध्यान ।।२४।।
सोवै प्रासुक भूमि में, गहै वसन परमान ।
कष्ट परै जतन न करै, समता गहै सयान ।।२५।।

अथ प्रोषध व्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

पूजा के उपकर्ण, पौंछि के नाँहि उठावै ।
मल-मूतर के काज, बिना देखी भू जावै ।।
अप्राशुक भू सैन, क्रिया विसमर्ण विचारे ।
भूख-प्यास न सहै, अनादरता वर धारे ।।२६।।

दोहा

पूरी परतग्या भये, आवै अपने थान ।
दान देय भोजन करै, बनै न आरँभवान ।।२७।।
तीन दिना आरम्भ तज, राखै धर्म सुध्यान ।
ता पीछैं व्योहार घर, ठानैं योग सुजान ।।२८।।

अथ भोगोपभोग परिमाण व्रत, छप्पय

भोगे एकहि बार, ताँहि कवि भोग कहै हैं।
फुनि-फुनि भोगे वाँहि, ताँहि उपभोग गहै हैं॥
अँन आदिक परमाण, ताँहि मधि धर मरयादा।
भोगे बहुत घटाय, आदरै नाँहीं जादा॥
भोगुप-भोग प्रमाण में, एती बात विचारना।
वरणूँ पाँचूँ भेद ये, करिये ताकी धारना॥२९॥

दोहा

तरस-घात बहुबद्ध फुनि, मादिक जान अनिष्ट।
अनुपसेवि जुत पाँच ये, त्यागे भविजन सुष्ट॥३०॥

सोरठा

बींधाअन मधु मास, तिरसाघात फुनि तुच्छफल।
बहुवध अभक्ष भास, सहजन केतक केवड़ा॥३१॥
आफूँ अर भृंगादि, मादिक मनमोहन विदल।
वस्तुअनिष्ट अखादि, हीन-वस्तु जल बिन छन्या॥३२॥
अनुपसेवी मनोगि, राखी जिम करि नेम करि।
आछी अपने जोगि, ताहूँ में त्यागैं सुधी॥३३॥

भोगोपभोग के पाँच अतिचार, अडिल्ल

सचित वस्तु में जुड़ी, वस्तु फुनि वस्तु सचित जो।
मिश्र सचितजुतअचित, बहुरि अधपकी वस्तु जो॥
भोग समय फुनि पुष्ट-राग परमाद बढ़ावै।
प्रवृते राखि विचारि, नाँहि ये दोष लगावै॥३४॥

दोहा

जो नर डरप्या जगत से, हूवा ग्यान प्रकाश।
सो भोगरु उपभोग नित, भोगै अलप उदास॥३५॥

अथ अतिथि संविभाग व्रत

जाके तिथि का नेम नहि, रहना घर में नाँहि।
सो मुनि कै अइलक क्षुलक, अतिथि कहे जग माँहि॥३६॥
इनके आवन काल लौं, खड़ा रहै निज द्वार।
भोजन देवै हर्ष करि, नवधा भक्ति करार॥३७॥

नवधा भक्ति के नाम

पडिगाहै धोवै-चरण, गन्धोदक शिर-नाय।
ऊँचे-धरि पूजा करैं, शुद्ध मन-वचन-काय॥३८॥

आवत विरियाँ टर गये, जीमें दे कै दान।
संविभागव्रत अतिथि कौं, ऐसे करै सुजान ॥३९॥

अथिति संविभाग व्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

सचितपात्र ना धरै, सचित तैं ढाकैं नाँहीं।
पर का लेय न देय, अनादर ना मन माँहीं ॥
काल उलँध ना करै, हरै मात्सर्य विकारा।
संविभागव्रत अतिथि, का अतिचार उच्चारा ॥४०॥

दोहा

बड़भागी मुनि को अशन, दये भोग-भू जाँहि।
फुनि सुर-नरपति होय मुनि, मुक्ति लहै शक नाँहि ॥४१॥
सहे परीस्या तप करे, जो फल होत महान।
सो फल मुनि भोजन दिये, पावत सहज सुजान ॥४२॥
मुनिवर कूँ भोजन दिये, उनके संजम वृद्धि।
निज-पर भव ले भोग-भू, अर बरषै घर रिद्धि ॥४३॥

अथ सल्लेखनाव्रत, दोहा

मरण मिटै नहि जगत में, परगट कोल करार।
ऐसी उर में जे धरै, मरि हैं समताधार ॥१॥
करते क्षीण कषाय तन, क्षीण जान निज आय।
ग्यानी धरै सलेखना, मरत निजातम ध्याय ॥२॥
सावधान हूवा बिना, मरे अनन्तीवार।
तन धन मन तैं ममत तजि, मरे न मरण सुधार ॥३॥

छप्पय

जरा रोग तब क्षीण, हीन इन्द्री बल जानैं।
अगनि वारि गिर शस्त्र, सास रुकना पहिचानैं ॥
जोतिष सुगुनी वेद, कहै सो ही निज भासैं।
सब सौं क्षमा कराय, हरषि ममता सब नासैं ॥
पहलै त्यागे धान कौं, दूध लेत छाँछ हि सजैं।
बहुरि वारि त्याग कोरे, आतम परमेष्ठी भजैं ॥४॥

प्रश्न, दोहा

जे मरि है तन करस करि, ते अपघाती होय।
या कैसें भाषत कहो, हो है धर्म उद्योत ॥५॥

उत्तर, दोहा

जे जिय मरैं कषायवश, करि नाना उत्पात ।
अग्नि वारि गिर शस्त्र विष, ते ठानैं अपघात ॥६॥
करे जतन सो ना मिटै, जानैं विषम असाध ।
तबैं भोग तन क्षीण करि, धारैं मरण सुसाध ॥७॥
सर्व करे व्रत ह्वै सफल, करे सलेखन अन्त ।
जैसे मन्दिर कलश तैं, पूर्ण लसैं अत्यन्त ॥८॥
मरना ही वचना नहीं, यह जग रीत अनादि ।
सहज रसान सलेखना, ग्यानी खों तन वादि ॥९॥
अन्त मता सो ही गता, भाषत बाल-गुपाल ।
जाको सुधरौ अन्त सो, बोही भये निहाल ॥१०॥

सल्लेखना व्रत के पाँच अतिचार, अडिल्ल

जीवनि वाँछै नाँहि, नाँहि मरनें कूँ वाँछै ।
मित्रनि सौं ना प्रीति, नाँहि चाहै सुख आँछै ॥
भोगनि में रुचि ठाँनि, बाँधि है नाँहि निदाना ।
अतीचार इस पाँच, सलेखन के पहिचाना ॥११॥

सोरठा

जरत झूपरी गेह, जतन किया ना उपशमी ।
तब सुग्यान धन लेह, 'बुधजन' निकसै ना जरै ॥१२॥
ये मति समझ सुजान, पाँच-पाँच अतिचार है ।
इनमें इन्हें समान, यथाजोगि गर्भित घनें ॥१३॥

चारों दानों का माहात्म्य, सोरठा

मुनिश्रावक दो धर्म, सुनिये ग्रन्थ अनेक में ।
भाजै नाँहीं भर्म, निज साधैं देख्या बिना ॥१॥
बिना धनी के जोग, फोज न कुछ कारज करै ।
त्यों मुनि बिन सब लोग, मन-मत ह्वै वरतन धरै ॥२॥
अबहूँ सुगम सँजोग, जिन - पूजन अरु दान का ।
सो परमादी लोग, अरै- झरै थोरे करै ॥३॥
लेना दान मिथ्यात, व्रती होन का नाश में ।
बूड़ै आन डुबात, ऐसे भाषित दुरमती ॥४॥
लेना जान मिथ्यात, साधरमी लेवै नहीं ।
पर-पौखे उतपात, मिटी दान की विधि सबै ॥५॥
वरणत सकल पुराण, परगट श्रावक धर्म में ।
देना-लेना दान, दोनूँ कै शुभ बन्ध ह्वै ॥६॥

साजन न्योत जिमात, हरषत मन न्होरा करै ।
त्यों साधरमी भ्रात, पोखो धन तैं वसन तैं ॥७॥
औषधि विविध बनाय, शास्त्र शोध लिख दीजिये ।
अभय अशन समुदाय, गेह वसन धन दान द्यो ॥८॥
तन धन वचन लगाय, साधरमी को थाँभिये ।
लीजे पुण्य बनाय, थितीकरण सम्यक्त्व गुण ॥९॥

दोहा

अतीचार होवा न दे, पञ्च अणुव्रत आन ।
सप्तशील हूँ जो विषै, यथाशक्ति अनुमान ॥१०॥
गुणव्रत तनी विशुद्धता, आगै जा विधि होत ।
सो अनुक्रम वर्णन करूँ, प्रतिमा प्रति उद्योत ॥११॥

तीजी; सामायिक प्रतिमा, दोहा

साधै सामायक समय, नहीं उलंघे काल ।
दूषण रहित विशुद्ध चित, जगजीवन रिछपाल ॥१॥

चौथी; प्रोषधोपवास प्रतिमा, दोहा

आठैं-चौदस शुद्धथल, प्रोषधोप धरि वास ।
वसु-द्वादश-षोडश-पहर, करैं एक-भूवास ॥१॥
यो सँवारि निश्चल रहै, सहैं परीसह घोर ।
अशन न ले षोडश पहर, काज न करि है और ॥२॥
अतीचार होवा न दे, मन विशुद्ध हुलसन्त ।
किरिया बिन नाँहीं रहै, करै आयु परजन्त ॥३॥

पाँचवीं; सचित त्याग प्रतिमा, दोहा

सचित तजै प्राशुक लहै, जोगि समय में खाय ।
अतीचार टारै सुधी, सतरा नेम बनाय ॥१॥

छटीं; रात्रि भुक्ति या दिवा मैथुन त्याग प्रतिमा, दोहा

दिवस नारि निश में अशन, अह-निशि परवी माँहि ।
त्यागै तन मन वचन करि, दोष लगावै नाँहि ॥१॥
तीजी प्रतिमा में हरै, सामायक अतिचार ।
प्रोषध के अतिचार का, चौथी में परिहार ॥२॥
भोगुप-भोग अतिचार का, पाँची-छठई टार ।
ह्याँहीं लौं श्रावक जघन, होता है अधिकार ॥३॥

सातवीं; ब्रह्मचर्य प्रतिमा, दोहा

निज-पर नारी सेयवो, त्यागै नवकरि वार ।
दोष विघ्न होवा न दे, ब्रह्मचर्यव्रत धार ॥१॥

नव-वाड़ि, छप्पय

तिया कथा ना करै, करै नहि नैननि सैना ।
तिया संग नहि चलै, कहै नहि हित के वैना ॥
पुष्ट जतन ना करै, करै नहि अशन पेट भर ।
पूरव सुमिरै नाँहि, सजै नहि भूषण तन पर ॥
नारि संग सोना नहीं, ये नव-वाड़ि सुधार चित ।
जतन राखि तिय हिय निडर, शील खेत के काज नित ॥२॥

आठवीं; आरम्भत्याग प्रतिमा, दोहा

खेती सेवा विणज सबु, त्याग निरारँभ होय ।
रखै अलप-सा धान-धन, अष्टम प्रतिमा सोय ॥१॥

नववीं; परिग्रह त्याग प्रतिमा, दोहा

उचित वसन तन धारि है, ताहूँ सौं नहि राग ।
मध्यम श्रावक है यहाँ, करै धान-धन त्याग ॥१॥

दशवीं; अनुमति त्याग प्रतिमा, दोहा

सीख न दे घर काज में, बसै निराला जाय ।
जात बुलाया अशन कूँ, निज-घर पर-घर खाय ॥१॥

ग्यारहवीं; उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा, दोहा

भेद ग्यारमी में कहे, क्षुल्लक-अइलक दोय ।
वरणे तिनके रहन को, ग्रन्थ जिनागम जोय ॥१॥

छप्पय

क्षुलक जिनालय बसैं, धर्म सीखैं गुरु आगैं ।
परवी पोषा धरैं, ध्यानधरि निज में जागैं ॥
ले निदण्ड आहार, पात्र इक राखैं तामें ।
एक वसन तन धरै, दुतिय कोपीन जँघा में ॥
क्षौर करावै उचित दिन, दाड़ी मूँछ न राखई ।
विपति परै सो सब सहै, वचन दीन ना भाखई ॥२॥
अइलक महापुनीत, केसलोंचै निज कर तैं ।
ले कर-पात्र अहार, बैठि इक श्रावक घर तैं ॥
कमण्डलु-पीछि हाथ, कमर कोपीन बनाईं ।
शीत-उष्ण तन सहै, वसन कछु राखत नाँहीं ॥

एकाकी जे ना रहै, रहत जहाँ मुनिजन घनै ।
कटि कोपीन निहार निज, ते आपन पोंअधिक गिन ।।३।।

दोहा

चढ़त-चढ़त प्रतिमा जबै, पूरव त्यागै नाँहि ।
तिरजग-वृत्ती धारि है, बनै सकल नर माँहि ।।४।।
अइलक फुनि मुनि अर्जिका, तीन वर्ण में पाँहि ।
शूद्र प्रवृत्ति है क्षुलक लों, मुनि बिन शिव न लहाँहि ।।५।।
देशव्रती का आचरण, वरण्या अल्प प्रमाण ।
अब तामैं चरचा लिखौं, चतुर-बीस परमाण ।।६।।

चौपई

लखि तिर्यञ्च मनुष गति दोय, सैनी त्रस पञ्चेन्द्री होय ।
मन के चार वचन के चार, औदारिक नौ जोग निहार ।।७।।
संजितासंजित तीनुं वेद, बिन केवलदर्शन के भेद ।
प्रत्याख्यान संज्वलन कषाय, नोकषाय जुत सतरै गाय ।।८।।
भविक अहारक समकित लीन, उपशम वेदक षायक तीन ।
मतिश्रुतअवधि तीन शुभग्यान, शुभलेश्या तीनूँ पहिचान ।।९।।
पूरण आरत-रुद्र कुध्यान, जानों धर्म बिना संस्थान ।
देशव्रती पञ्चम गुण जोय, जीवसमास पञ्चेन्द्री होय ।।१०।।
षट् परजापत दशविधि प्रान, संज्ञा चार धरत बुधिवान ।
दर्शन-ज्ञान षष्ट उपयोग, सुनि कषाय सतरा नौ जोग ।।११।।
त्रस-घात बिन अविरत ग्यारा, सैंतीस गिन आश्रव धारा ।
योनि अठारा लख का जोर, साढे पचपन लख कुल कोर ।।१२।।

देश व्रत में नाँहि, दोहा

देव नरक विकल-त्रया, थावर अभवि कुग्यान ।
मनपरजै केवल शुकल, सुभ बिन गुण नहि आन ।।१३।।
द्विक-अहार द्विक-विक्रिया, बहुरि मिश्र-औदार ।
कारमाण जुत योग षट्, पञ्चम गुण न लगार ।।१४।।
अनन्तान की चौकरी, अवर अपत्याख्यान ।
कृष्ण नील कापोत फुनि, अनाहार की वान ।।१५।।
संजित असंजमी नहीं, नाँहि पञ्च मिथ्यात ।
तिरस-घात अविरत नहीं, नहीं असैनी जात ।।१६।।

कर्म बन्ध, चौपई

पञ्चम-गुण सड़सठि का बन्ध, त्रेपन परकति होय अबन्ध।
बन्ध माँहि विछति समुदाय, चारों प्रत्याख्यान कषाय ॥१७॥
विछति अन-उदै चौथे तनी, दोऊ को इकठी करि गनी।
तिन अन-उदै पञ्चमै थान, त्यों हो बन्ध विषै पहिचान ॥१८॥

उदै कथन, दोहा

उदै सत्यासी प्रकृति का, नाँहि उदै पैंतीस।
उदै माँहि विछती वसू, देशविरति गुणदीस ॥१९॥
आयुगति तिरयञ्च की, चारों प्रत्याख्यान।
नीच गोत्र उद्योत फुनि, उदै विछति वसु आन ॥२०॥

सत्ता, दोहा

सत्ता विछति पशु आयु की, नहि सत्ता नरकाय।
इक-सौ सैंतालीस की, पञ्चम सत्ता पाय ॥२१॥

॥ इति पञ्चम गुणथान कथन पूर्ण ॥

अथ छटाँ; प्रमत्त गुणस्थान, दोहा

प्रत्याख्यान क्षय उपशमा, जग सौं भये विराग।
गिन्या अथिर परिजन सदन, आतम में अनुराग ॥१॥
ताका अब कछु लिखत हूँ, जो उन चितवन कीन।
जाके पढ़तैं सुनत ही, भाषत जगत अलीन ॥२॥

कुण्डलिया

वीरज श्रोणित तन रच्या, दीखे दृष्टि स्वरूप।
मानूँ चादर तैं ढक्या, अधम मूत-मल कूप ॥
अधम मूत-मल कूप, रोग का भाजन सोहत।
निशि-दिन इन्द्री भोग, भरत पूरण नहि होवत ॥
तिथि नक्षत्र भँगुर प्रगट, आश नाँहीं का धीरज।
जामें ये ही सार, करै तप धारत वीरज ॥३॥
जननी भगिनी जनक सुत, बन्धु पथिकजन जान।
भव-वन वाट मानुष भव, भो मिलाप क्षण आन।
भो मिलाप क्षण आन, काज निज तन पर सगरे।
बहुविधि हित उपजाय, करत नित मोसौं झगरे ॥
तो पूरण लखि आयु, कहै अब ढील न करनी।
सम्पति नाती सबै, विपति में बहिन न जननी ॥४॥

मन्दिर मत्त-करिन्द बहु, हय रथ भूरि-पयाद।
मोती मणि माणिक रतन, कनक कोष में जाद ॥
कनक कोष में जाद, भरे सुख निश में सोये।
पर-दल लीने लूटि, भोर रीते ह्वै रोये ॥
घर-घर जाँचत फिरे, बड़े कुल के अति सुन्दर।
रहै चोहटा परै, झोपरी मानैं मन्दिर ॥५॥
थावर तन धारै तजै, क्षण - क्षण काल अनन्त।
निपट कठिन सौं निकसि के, तिरस राशि उपजन्त ॥
तिरस राशि उपजन्त, भ्रमैं सो चारों गति में।
जो मानुष तन धरै, करै सो वास मुक्ति में ॥
जो मिथ्यामत मगन, लहै सो दुख नाना वर।
सागर दोय हजार, भटक फुनि वदि है थावर ॥६॥

दोहा

जो त्रस ही त्रस होय तो, सागर दोय हजार।
उत्तम या अर जघनता, अन्तर्मुहूर्त वार ॥७॥
तन दीपक तिथि तेल लौं, परगट नरभव जोत।
जोंनो काज-अकाज लखि, होत अचानक मोत ॥८॥
ज्यों मुक्ता करतैं छुटा, सागर में ना पाय।
त्यौं नर-भव खोवै वृथा, कहि कैसे मिलि जाय ॥९॥
नर-भव उत्तम पाय के, उत्तम करिये काज।
या भव बिन शिव ना लहै, कीनै कोटि इलाज ॥१०॥
खावत-भोगत ना मिट्यो, तृष्णा दुख अस-राल।
त्याग किये बिन सुख नहीं, आय मिल्यो है काल ॥११॥

कुण्डलिया

भूषण तन पै धारि सब, साज सबै सिंगार।
निकस्या दीक्षा काज कौं, लारि लगे परिवार ॥
लारि लगे परिवार, हर्ष-दुख दोऊ राजत।
निरखै याकी ओर, वीरता अद्-भुत छाजत ॥
ऐसा सोहत धीर, कहूँ उपमा बिन दूषण।
मुक्ति रमण के काज, चल्या दूलह सजि भूषण ॥१२॥

दोहा

गहि साहस गुरु पै गया, लखि पद वन्दन कीन।
करी स्तुति पढ़ी हर्ष सौं, तीन प्रदछिणा दीन ॥१३॥

धर्मवृद्धि सुनि बैठियो, धर्म सुन्यो जिनभाष ।
हाथ जोर विनती करी, जिनदीक्षा अभिलाष ॥१४॥
रुचै तुमैं सोही करो, इम गुरु कही सराय ।
तब दीक्षा लेने लग्या, सबसों क्षमा कराय ॥१५॥
तजे वसन सब धाम धन, लिये न तिल-तुस मान ।
यथाजात जिन रूप धरि, लौंचे केश सुजान ॥१६॥
करि विशुद्ध तन मन वचन, धरे महाव्रत पाँच ।
समिति पाल तिन-गुपति ले, प्राश्चित कहि है साँच ॥१७॥
त्याग सदन वन में बसै, ससि में सरिता तीर ।
ग्रीषम ॠतु गिरि ऊपरै, वरषा ॠतु तरु धीर ॥१८॥
सहै धोर उपसर्ग जो, सुर नर तिरजग कीन ।
करै अचल मन मेरु-सम, बनै परीस्या लीन ॥१९॥
मित्र-शत्रु दोऊन पै, नहीं राग नहीं दोष ।
मन की ममता मेंटि के, हो गये लायक मोष ॥२०॥

प्रश्न, दोहा

नहि शरीर नहि काल वह, तासौं शक्ति न होय ।
या दुर्धर मुनि की विरति, कैसे धारै लोय ॥२१॥
यातैं तन उपगार को, जोग परिग्रह धार ।
निर्दूषण पुनि मानिये, सब को करत विचार ॥२२॥

उत्तर, गाथा अट्ठपाहुड़

जह जायरूव सरिसो तिलतुस मित्तं ण गिहदि हत्थेसु ।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥

भाषा चौपई

यथाजात धरि रूप सुजान, तजो परिग्रह तिल-तुस मान ।
अल्प-बहुत परिग्रह फुनि गहै, सो निगोद में अतिदुख सहै ॥२३॥

गाथा

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो ।
णग्गो विमोक्ख मग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥

चौपई

वस्त्र सहित सीझेगो नाँहि, जो तीर्थङ्कर जिनमत माँहि ।
क्षिण परिग्रह नागा बिन मोष, और रीति भाषौ अति दोष ॥२४॥
भरहे दुस्सम काले, धम्म ज्झाणं हवेइ साहुस्स ।
तं अप्प-सहाव ठिदो, णहु मण्णइ सो हु अण्णाणी ॥

चौपई

भरत भूमि में दुखमा काल, धर्मध्यान जुत है मुनि हाल।
निज सुभाव में मगन सुजान, नहि माने जे निपटअज्ञान ॥२५॥

गाथा

अज्ज वि तिरय सुद्धा, अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं ।
लोयंतियदेवत्तं, तच्चचुया णिव्वुदिं जंति ॥

चौपाई

अजहुँ रयण-सुधा मुनिराज, आतम ध्याय लहै सुरराज।
कै लौकान्तिक सुर ह्वै जाय, कै विदेह सो मुक्ती जाय ॥२६॥

दोहा

थिविर कल्प मुनिसंघ जुत, जिनकल्पी एकाक।
दोउ दशा प्रमाद वश, षष्टम गुण जिन वाक ॥२७॥

प्रमाद, चौपई

धर्मराग संज्वलन कषाय, विकथा वचन नींद समभाय।
तन थिति दायक निरस अहार, यहै प्रमाद पञ्च परकार ॥२८॥

छटवें गुणस्थान में चौबीस ठाना, दोहा

छट्ठा गुणठाना विषैं, चतुर-बीस ये थान।
नर-भव भवि परजाप्ता, पञ्चेन्द्री दश प्राण ॥३०॥
पीत पद्म लेश्या शुक्ल, ग्यारै योग विचार।
वचन चार मन चार फुनि, दुक-हारक अवदार ॥२७॥
तरस काय दर्शन तिहूँ, सैनी संग्या चार।
संजम छेद-उथापना, सामायक परिहार ॥२८॥
चार ग्यान दर्शन त्रिविध, यों उपयोगा सात।
द्वादश लख कुलकोड़ि ह्वै, लाख चतुर्दशजात ॥२९॥
जीवसमास पञ्चेन्द्रिय, परम कलित आहार।
आरति तीन निदान बिन, धर्मध्यान पद चार ॥३०॥

चौपई

समकित उशम वेदक क्षायक, आश्रवा चौबीसूँ लायक।
तामैं तेरा जान कषाय, बहुरि ग्यारहै योग बताय ॥३१॥

दोहा

नोकषाय संज्वलन चतु, तेरह होत कषाय।
षष्टम गुण में नाँहि सो, आगै कहो बनाय ॥३२॥

चौपई

अभवि असैनी पशु पञ्चेन्द्रि, देव नरक थावर विकलेन्द्रि।
केवलदर्शन केवलज्ञान, अनन्तान अप्रत्याख्यान ॥३३॥
प्रत्याख्यान जुत द्वादश योग, कारमाण दुक-विक्रिय योग।
बहुरि मिश्र-अवदारन काय, जथाख्यात सूक्ष्म-साम्पराय ॥३४॥
लेश्या अशुभ असंजम बार, हीन प्राण अर हीन अहार।
हीन प्रजापत अविरतधार, रुद्रध्यान मिथ्यातन सार ॥३५॥

दोहा

कहुक नाँहि परिहार यों, मिलै न इकठे चार।
काय अहारक उपशमी, मनपरजै परिहार ॥३६॥

छटवें गुणस्थान में बन्ध-उदै-सत्ता, चौपई

त्रेसठ बन्ध सतावन नाँहि, बन्ध विछति षट्-परमत माँहि।
अथिर अरति पुनि अशुभ असात, शोक अजस कीरति षट् ग्यात ॥३७॥

उदै, चौपई

विछति अन-उदै पञ्चम थान, ते चालीसों प्रकृति बखान।
तामैं निकस प्रकृति दुक-हार, आन-उदै भो षष्टम थार ॥३८॥
उदै इकयासि षष्ट गुण में, इकतालिसौ नाँहि उदै में।
विछति पञ्च परकति की जान, तिनका वर्णन अबै बखान ॥३९॥

दोहा

निद्रानिद्रा एक फुनि, प्रचलाप्रचला जान।
स्थानगृद्धि निद्रा सहित, द्विक-हारक पहिचान ॥४०॥

सत्ता

इक-सौ षट्-चालीस की, सत्ता षष्टम जान।
नारक तिरजग आयु-दुक, नहि सत्ता पहिचान ॥४१॥

उदीरणा

उदै समान उदीरणा, देशविरति लौं जान।
षष्टम तैं कछु फरक-सा, संजोगी लौं आन ॥४२॥
मनुष आयु द्वै-वेदनी, विछति उदीरण माँहि।
सो ही षष्टम थान में, उदै विछति में नाँहि ॥४३॥

॥ इति षष्टम गुणस्थान वर्णन ॥

अथ सातवाँ अप्रमत्त गुणस्थान, दोहा

त्यागे दशा प्रमाद की, धर्मध्यान में होय।
अप्रमत्त गुण सातवाँ, तास जाति है दोय ॥१॥

अधोकर्ण चारित चरण, ता सुभाव दृढ नाँहि ।
प्रथम अपरमत जानियो, परै प्रमत के माँहि ॥२॥
प्रथम चरण चारित्र का, धारै अतिदृढ होय ।
सो सातिस दूजा कहो, चढ़ि है श्रेणी सोय ॥३॥
क्षण षष्टम क्षण सातवो, डमरुवत् चलवान ।
अधोकर्ण अष्टम धरै, तब आवन की हान ॥४॥

चौपाई

अधो अपूरव अनिवृतकरना, अन्त मिथ्याति दर्शन धरना।
बहो भाँति चारित कैं चरना, सप्तम थकी नवम लौं करना ॥५॥

सातवें गुणस्थान में चौबीस ठाना निर्णय, दोहा

षष्टम तैं सप्तम विषैं, घाटि वस्तु में जोय।
संज्ञा-हार अहार-दुक, आरतध्यान न कोय ॥६॥

सातवें गुणस्थान में बन्ध, उदै, सत्ता, दोहा

नाँहि बन्ध ओ विछति जुत, त्रेसठि परमत जान।
तिनमें निकस अहार-दुक, बन्ध सातवें थान ॥७॥
या विधि सप्तम थान में, इकसठ बन्ध लहाँहि ।
बन्ध विछति देवायु की, गुनसठि बन्ध लहाँहि ॥८॥
नाँहि उदै चालीस षट्, उदै छिहन्तरि जोय ।
उदै विछति है चार की, अप्रमत्तगुण सोय ॥९॥
अर्धनराचरु कीलका, तृतीय सफाटिक आन ।
चौथी समकित मोहनी, उदै विछति पहिचान ॥१०॥
इक-सौ छीयालीस सत, द्वै सत्ता में नाँहि ।
सता विछति वसु प्रकृति की, सप्तम थानक माँहि ॥११॥
अनन्तान की चौकरी, तीनुँ जात मिथ्यात ।
देवआयु युत आठ ये, सता विछति ह्वै जात ॥१२॥

चौपई

प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान, कै क्षय कै उपशमता आन ।
प्रथम अपरमत सप्तम धार, धरि प्रमाद फुनि छठै सिधार ॥१३॥

॥ इति सातवाँ गुणस्थान वर्णन ॥

आठवाँ अपूर्वकरण गुणस्थान, दोहा

पूरवकाल अनादि में, आतमीक परिणाम ।
प्रापत कबहूँ ना भये, सो प्रापति अभिराम ॥१॥

नाम अपूरवकर्ण जिहि, है प्रमाण विधि दोय।
इक क्षायिक श्रेणी चढ़ै, दूजा उपशम होय ।।२।।

आठवाँ गुणस्थान चौबीस ठाना, दोहा

जो षष्टम गुणथान तैं, फरक आठवाँ माँहि।
चतुर-बीस थाना विषैं, ताकूँ कहूँ बनाँहि ।।३।।

चौपाई

छेदोप-थापना सामायक, नहि परिहार आठवाँ लायक।
लेश्या एक शुकल ही जानों, पीत-पद्म नाँहीं पहिचानों ।।४।।
समकित उपशम क्षायक आनों, वेदक रह्या सातवाँ थानों।
इक पृथक्त्ववितर्क वीचारा, धर्म ध्यान का त्यागन हारा ।।५।।
योग आहारक-दुक बिन नौ हि, संज्ञा तीन आहार बिनौ हि।
और सकल षष्टमवत् जानों, पूरव कथन कह्या परमानों ।।६।।

आठवें गुणस्थान में बन्ध, उदै, सत्ता, सोरठा

बन्ध अठावन माँहि, बन्ध विछति छत्तीस की।
यह अष्टम गुण ताँहि, बासठि प्रकृति अबन्ध है ।।७।।

दोहा

अष्टम गुणथाना विषैं, सातभाग मधि धाम।
बन्ध विछति छत्तीस की, तिनका वरणों नाम ।।८।।
प्रथमभाग में विछति है, निद्रा प्रचला दोय।
जाकैं छटा विभाग में, विछति तीस की होय ।।९।।
पञ्चेन्द्री परज्यापता, त्रस बादर परतेय।
जान विहायो-गतिरु शुभ, सुस्वर सुभग अदेय ।।१०।।
आहारक तन मिश्र फुनि, आहारक हूँ जान।
मिश्रवैक्रियिक वैक्रियिक, विछति बन्ध में मान ।।११।।
आनपूरवी देवगति, समचतुरक संस्थान।
कारमाण तैजस सुथिर, तीर्थङ्कर निर्माण ।।१२।।
परस गन्ध रस वरण फुनि, अगुरुलघू उपघात।
अर उसास परघात जुत, तीस प्रकृति की जात ।।१३।।
रति हास्य भय जुगुप्सा, विछति सात सम्भाग।
बन्ध विछति छत्तीस यौं, जानि आठमीं जाग ।।१४।।

सोरठा

नाँहीं उदै पचास, उदै बहत्तर तास में।
विछति प्रकृति पचास, हास्यादिक षट् जानियो ।।१५।।

दोहा

सत इक-सौ अड़तीस का, नाँहि सता दश जान।
सता बिछति की शून्यता, उपशम अष्टम थान ॥१६॥

॥ इति अष्टवाँ गुणथान ॥

अथ नववाँ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान, चौपई

कै उपशम कै क्षायक भाव, भये लीन परिणाम उपाव।
सो पुनि पिलटि अधो नहि आवै, निज सरूप में थिरता पावै ॥१॥
पूरव भाव चला-चल होत, सहज अडौल भये थिर जोत।
सो अनिव्रतकरण गुणथान, ताकै अंश पञ्च परमान ॥२॥

नववें गुणस्थान में चौबीस ठाना, चौपई

गति मानुष पञ्चेन्द्री जात, तिरस काय नव जोग विख्यात।
मन के चार वचन के चार, इक-औदारिक काय विचार ॥३॥
प्रथमभाग में तीनूँ वेद, दुतिय भाग में वेद उछेद।
आदिभाग में सात कषाय, दूजे में संज्वलन बताय ॥४॥
बिन केवल दर्शन सब ग्यान, भवि परजै षट् दश विधि प्रान।
लेश्या शुक्ल अहारक सैन, जीवसमास पञ्चेन्द्री लैन ॥५॥
पृथक-वितर्क-विचारै ध्यान, अनिव्रतकर्ण नाम गुणथान।
जान जोग नौ सात कषाय, प्रथम आश्रवा सोलै थाय ॥६॥
दर्शन तीन चार विधि ग्यान, यों उपयोगा सात बखान।
बारै लाख होत कुल कोड़, योनि जात चौदा लखि जोड़ ॥७॥
समकित क्षायक उपशम थापन, सामायक अर छेद-उथापन।
मैथुन परिग्रह भयजुत जान, संग्या तीन नवम गुणथान ॥८॥

बन्ध-उदै विछति, दोहा

नाँहीं बन्ध अठ्यानवै, अनिव्रतकरण सुजान।
बन्ध प्रकृति बाईस में, पाँच विछति पहिचान ॥९॥

चौपई

पुरुष वेद संज्वलन सुजान, क्रोध मान माया लोभान।
पाँच भाग में पाँच हि दोय, विछति नवम गुणथाना जोय ॥१०॥
छाछटि उदै छप्पन है नाँहि, उदै विछति षट् ताकै नाँहि।
पुरुष नपुंसक नारी वेद, प्रथम भाग में करै उछैद ॥११॥
दूजै तीजै चौथे क्षीण, क्रोध मान माया ये तीन।
भाग पाँच में बादर लोभ, उदै विछति जानों बिन क्षोभ ॥१२॥

सोरठा

नहि सत्ता दशदीस, है इक-सौ अडतीस सत।
तामें प्रकृति छतीस, सता विछति नौ भाग में ॥१३॥

चौपई

नारक तिरजग गिन गति दोय, ये ही आनपूरवी होय।
निद्रानिद्रा प्रचला बड़ी, त्थानगृद्धि निद्रा दुख गड़ी ॥१४॥
उद्योतन आतप इकेन्द्री, साधारण सूक्ष्म विकलेन्द्री।
थावर जुत सोलै सब आन, प्रथम भाग में विछुरत जान ॥१५॥
प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान, दूजै अंश विछति वसु मान।
वेद नपुंसक तीजा जात, नारी वेद चतुरथै भात ॥१६॥
पञ्चम हास्यादिक षट् गये, षष्ठम पुरुष वेद तजि दये।
सात-आठमें नवमें अंश, क्रोध मान माया निरवंश ॥१७॥

॥ इति नववाँ गुणस्थान ॥

अथ दशवाँ; सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थान, चौपाई

क्रोध मान माया संज्वलना, बादर-लोभ कलित बहु तजना।
सूक्षम-लोभ सिवा अभिलाषा, सो दशमा गुण जिनवर भाषा ॥१॥

दशवें गुणस्थान में चौबीस ठाना, चौपाई

सूक्षम-लोभ एक ही जामें, और कषाय रही ना-वा में।
सूक्षम-साम्पराय हि नामा, संजम तामें गुण का धामा ॥२॥
भाव अवर दशमा गुणथाना, संज्ञा परिग्रह एक बखाना।
चतुर-बीस में और रही जो, सो जानो हि माँहीं कही जो ॥३॥

दशवें गुणस्थान में बन्ध, उदै, सत्ता, दोहा

इक-सौ तीन अबन्ध है, सतरै बन्ध सुजान।
तामें षोडश की विछति, जाको सुनो विधान ॥४॥

चौपाई

पञ्च प्रकृति मति ग्यानावरणी, बिन निद्रा चहुँ दर्शनावरणी।
अन्तराय की पाँच बखानौ, ऊँच-गोत जस सोरै जानौ ॥५॥

दोहा

नाँहि उदै बासठि तनै, उदै साठ पहिचान।
विछुरत सूक्षम-लोभ इक, या दशमा गुणथान ॥६॥
सत्ता इक-सौ दोय की, नाँहीं षट्-चालीस।
सूक्षम-लोभ हि एकला, सता विछति में दीस ॥७॥

॥ इति दशवाँ गुणस्थान ॥

अथ ग्यारहवाँ; उपशान्त मोह गुणस्थान, दोहा

करि उपशान्तकषाय सब, बसै उपशमा-मोह ।
उपशम-श्रेणी अन्त जिह, कह्या ग्यारवाँ सोह ॥१॥
फरक नवम गुणथान सों, सो अब कहूँ बनाय ।
नाँहीं तीनूँ वेद जिह, नाँहीं सबै कषाय ॥२॥
यथाख्यात-संजम यहाँ, नहि संज्ञा सब जान ।
चतुर-बीस में शेष जो, सो नववाँ सामान ॥३॥

ग्यारहवें गुणस्थान में बन्ध, उदै, सत्ता, दोहा

बन्ध एक सत्ता प्रकृति, नहि इक - सौ उगनीस ।
बन्ध विछति की हीनता, भाषी है जगदीस ॥४॥
नाँहीं उदै त्रेसठि प्रकृति, विछति उदै में दोय ।
उनसठि परकति का उदै, जान ग्यारवाँ सोय ॥५॥
सत्ता कथन जहाँ-तहाँ, श्रेणी विषय अपेष ।
सो एकादश थान में, इक-सौ एक विशेष ॥६॥

॥ इति ग्यारहवाँ गुणस्थान ॥

अथ बारहवाँ; क्षीणमोह गुणस्थान, दोहा

जे क्षायक श्रेणी सहित, ते दशमा गुण माँहि ।
सत्ता मोह खिपाय कै, द्वादश गुण में जाँहि ॥१॥

बारहवें गुणस्थान में चौबीस ठाना, चौपई

वर इकत्व-वितर्क-वीचार, आन ध्यान का ना सञ्चार ।
समकित क्षायक निर्मल जान, उपशम रहा ग्यारमें थान ॥२॥
नाँहि वेद कषायरु संग्या, यथाख्यात-संयम प्रतग्या ।
बाकी और नवम परमान, या विधि भेद करी सरधान ॥३॥

दोहा

जो ग्यारें तें बारमें, मारग नाँहि विधान ।
द्वादश में क्षायककरण, न्यारै उपशम ठान ॥४॥

बारहवें गुणस्थान में बन्ध, उदै, सत्ता, दोहा

आन प्रकृति का बन्ध नहि, बन्धै साता एक ।
बन्ध विछति की शून्यता, केवल निकट विवेक ॥५॥
उदै सत्तावन का विषै, सारै वीछर जाय ।
नाँहि उदै पैंसठि प्रकृति, क्षीण-मोह में गाय ॥६॥

चतु परकति दर्शनतनी, ग्यानावरणी पाँच।
अन्तराय की पाँच जुत, विछुरत सोरै साँच ॥७॥
चक्षू अनचक्षू अवधि, केवल निद्रावान।
प्रचला जुत षट् की विछति, दर्शनावरणि जान ॥८॥

सोरठा

सैंतालीस न पाय, सत्ता इक-सौ एक का।
षोडश विछुड़ी जाय, उदै विछति में जो कही ॥९॥

॥ इति बारहवाँ गुणस्थान ॥

अथ तेरहवाँ; सयोग केवली गुणस्थान, दोहा

ह्वै नौ केवलि-लब्धि तहँ, घाती कर्म विनाश।
त्रयोदशम संजोग-गुण, लोकालोक प्रकाश ॥१॥
बिन छाया द्युति स्फटिक सम, अनिमिष दृग हुलसाय।
सात धातु के मल रहित, अन्तरीक्ष दरसाय ॥२॥
अनन्त चतुष्टय संजुगत, प्रातिहार्य वसु होय।
दोष अठारह तें रहित, वन्दनीक तब सोय ॥३॥
मन विकार परमाद तज, धरै ध्यान वन आप।
पूजैं तव इन्द्रादि पद, मेंटै भव संताप ॥४॥

नौ लब्धि, अडिल्ल

यथाख्यात-संजमी, जान क्षायिकी समकिती।
केवलदर्शन धार, धार ज्ञान केवलपती ॥
दान लाभ उपभोग, भोग और वीरज लहा।
ये केवल नौ लब्धि, तेरमें गुणथान गहा ॥५॥

तेरहवें गुणस्थान में चौबीस ठाना, चौपई

गति मानुष ऊँचे कुल माँहि, देव नरक तिरजग गति नाँहि।
इक इन्द्री विकलै-त्रिक बिना, जाकै जात पचेन्द्री गिना ॥६॥
त्रस काय है थावर नाँहीं, सात जोग पाय जा माँहीं।
अनभै साँच वचन मन चार, कारमाण तन दुक-अवदार ॥७॥
असति उभै मन वचन न कोय, हारक विक्रिय-दुक नहिं होय।
नाँहीं तीनूँ वेद सुभाय, नाँहीं संज्ञा नाँहि कषाय ॥८॥
नहि मत्यादिक चारों ग्यान, एक चराचर केवल ज्ञान।
चक्षुअचक्षु अवधि नहि काम, केवलदर्शन लहि अभिराम ॥९॥
अभवि राशि में नाँहीं कोय, भवि सम्यक्त्वी क्षायक जोय।
उपशम वेदक नाँहि पिछान, नाँहि असैनी-सैनी जान ॥१०॥

सामायक छेदोपथापन, नहि परिहार-विशुद्ध लोपन।
नाँहीं है सूक्ष्म-साम्पराय, यथाख्यात ही एक बताय ॥११॥
अनाहार-आहार सुजान, त्रयोदशम संजोगी थान।
षट् परजापत चतुधा प्राण, जीव पचेन्द्री सैनी जान ॥१२॥
सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपात बताय, शुक्लध्यान का तीजा पाय।
आरत रुद्र धर्म नहि होय, केवलि के उपयोगा दोय ॥१३॥
अविरत द्वादश पन मिथ्यात, अवर कषाय पचीसों जात।
आठ योग जुत येते नाँहि, आश्रव जोग सातता माँहि ॥१४॥
बारह लाख कोड़ि कुल तनें, चौदह लाख योनि में भनें।
लेश्या एक शुक्ल परधान, बाकी लेश्या का न विधान ॥१५॥

आगै बन्ध-उदै-सत्ता, सोरठा

प्रकृति इक्यासी ज्ञान, विछति अन-उदै बारमें।
जहाँ तीर्थंकर आन, उदै होत है तेरमें ॥१६॥

दोहा

नाँहि उदै परकति असी, उदै होय चालीस।
विछति करत है तीस की, संजोगी जगदीश ॥१७॥
वरन चतुक संस्थान षट्, अर विहायगति दोय।
सुथिर-अथिर औ शुभ-अशुभ, सुसर-दुसर दुक सोय ॥१८॥
इक उसाँस इक वेदनी, फुनि प्रत्येक निर्मान।
वज्र-रिषभनाराच को, संघन एक सुजान ॥१९॥
पारघात अपघात-दुक, कारमाण औदार।
अगुरुलघू तैजस बहुरि, आंगोपांगोदार ॥२०॥

चौपई

सत्ता प्रकृति पिच्यासी तनि, त्रेसठि परकती क्षय में गनि।
त्रयोदशम संयोगी-थान, बन्ध एक सत्ता का जान ॥२१॥

दोहा

उत्तरगुण पूरण पलै, पूरण टलै प्रमाद।
सधै शील सब भेद तैं, सो वरणौं बिन वाद ॥२२॥

पन्द्रह प्रमाद कथन, सोरठा

विकथा वचन कषाय, इन्द्री निद्रा नेह जुत।
चारि-चारि पन थाय, एक-एक पँदरै गिनौ ॥२३॥

पच्चीस कषाय, छप्पय

अनन्तान अप्रत्याख्यान जु जानिये ।
प्रत्याख्यान संज्वलन चारि में आनिये ॥
क्रोध लोभ मय मान भेद तैं सोलहा ।
हास्य अरति रति शोक गिलान में पुनि गहा ॥
पुरुष नपुंसक नारि वेद तिहुँ धारिये ।
गिनि पच्चीस कषाय हिया तैं टारिये ॥२४॥

विकथा पच्चीस, अडिल्ल

भार्या भोजन-द्रव्य, राज रिपु की विकहानी।
चोर चुगल पाखण्ड, देश गुणलोप बखानी ॥
देवी निष्ठुर मूढ, काम निन्दारु ठठोली।
निज करनी परशंस, कलह पर-पीड़ा बोली ॥
देशकाल अनुचित वचन, अति आरम्भ उपदेश कर।
परिग्रह गिलान वादित्र-सुर, ये विकथा पच्चीस नर ॥२५॥

साढे सैंतीस हजार प्रमाद, सोरठा

स्नेह मोह ये दोय, निन्द्रा पञ्च थकी गुनै ।
भेद तबै दश होय, इनैं गुनौ इन्द्री मना ॥२६॥
तबै साठ हो जाय, सो पच्चीस कषाय गुण ।
जब पन्दरै-सै थाय, सो गुनिये विकथा थकी ॥२७॥
इम हजार-सैंतीस, ऊपर अधिका पाँच-सै ।
भेद कहै जगदीश, या विधि सबै प्रमाद के ॥२८॥

अस्सी भेद प्रमाद, सोरठा

प्रथम चारों कषाय, गुण एकेन्द्री पाँच तैं ।
तबै बीस ह्वै जाय, सो विकथा गुण तैं असी ॥२९॥

शील के अठारा हजार भेद का

दो प्रकार निरूपण, दोहा

आतमधर्म अनेक हैं, तामें दो संक्षेप ।
निज तो दर्शन-ग्यान व्रत, राग-दोष परचेप ॥३०॥
वरणूँ दोय परूपणा, ऐसे शील सुभाय ।
परपेक्षा तिय का जतन, सुय-सापेक्ष विधाय ॥३१॥
आन द्रव्य संसर्ग को, वचन न काय लगाय ।
कृत कारित अनुमोदना, तब नौ भेद बनाय ॥३२॥

मैथुन परिग्रह हार भय, संज्ञा करे न चार ।
तब छतीस ह्वै ताँहि को, इन्द्री पञ्च निवार ।।३३।।
जब इक-सौ अस्सी बनें, सो गुण दश विधि जीव।
तिनकी हिंसा का जतन, ठारा-सौ लखलीव ।।३४।।

दशविधि जीव, दोहा

वह्नी वारि वयार भू, साधारण प्रत्येक ।
विकलत्रय पञ्चेन्द्रिया, गनि दशधार विवेक ।।३५।।
क्रोधादिक के त्याग ह्वै, दशलक्षण वृषसार ।
तिन तैं ठारा-सै गुनै, ठारह होत हजार ।।३६।।
स्व-सापेक्षा वरणिया, अब तिय की सापेक्ष ।
वरणों अष्टादश सहस, जिन आगम मतिदेक्ष ।।३७।।
चेतन-जड़ तिय दोय विध, जड़ का करूँ बखान।
सो है तीन प्रकार तैं, काठ चित्र पाषाण ।।३८।।
वचन रहित मन काय तैं, गुनैं होत षट् भेव ।
कृत कारित अनुमोद तैं, अष्टादश गिनि लेव ।।३९।।
इन्द्रिनि तैं ठारह गुनैं, निवैं भेद ह्वै जाय ।
इक-सौ अस्सी होत सो, दरवित भाव लगाय ।।४०।।
क्रोध कपट मद लोभ तैं, गुनैं सात-सै बीस ।
अब चेतन तिय के सुनो, भेद कहे जगदीस ।।४१।।
सुर मानुष तिरजञ्चनी, मन वच तन सौं ताय।
कृत कारित अनुमोद गुण, सात-बीस ह्वै जाय ।।४२।।
इनको पञ्चेन्द्री गुनै, ह्वै इक-सौ पैंतीस ।
दौ-सै सत्तर बनत है, दरवित भावित हीश ।।४३।।
जोरै संज्ञा चारि तैं, सहस अस्सी है जाय ।
अनन्तान की सोलहै, तासौं लेहुँ गुनाय ।।४४।।
सतरा सहसरु दोय-सै, अस्सी चेतन नार ।
बीस सात-सै जोड़ि जब, ठारह होत हजार ।।४४।।

।। इति शील अठारह हजार ।।

अथ चौरासी लाख उत्तरगुण प्ररूपण, चौपई

उत्तर गुण चौरासी लाख, सो वरणूँ जिन आगम साख ।
जिय विभाव के कारण वाज, सो सब उत्तर गुण में त्याज ।।४६।।
हिंसा आनृत मैथुन चोरि, अब्रह्म परिग्रह कपट मद जोरि ।
लोभ जुगुप्सा भै रति दोष, दुष्ट वचन तन - मन का पोष ।।४७।।

मिथ्या प्रमाद पिशुन अग्यान, इन्द्री जुत इकईस प्रमान ।
अतिक्रम व्यतिक्रम हीनाचार, अनाचार गति चार प्रकार ।।४८।।
वे इकईस चार इन गुणै, चौरासी ह्वै गुरुमुख भणै ।
इनको गुणिये दशविधि जीव, चौरासी में होत सदीव ।।४९।।
शील विराधन दश करि गुने, सहस चौरासि होते सुने ।
तिय संसर्ग पुष्ट रसपान, सुन्दर सेज गन्ध आदान ।।५०।।
भूषण गान द्रव्य संजोग, दुष्ट जनन में ह्वै उपयोग ।
नृपसेवारु रैनि-सञ्चार, ये दश शील विराधन हार ।।५१।।
इन तैं सहस चौरासि भये, सो आलोचन दशगुण लये ।
आठ-लाख चालीस हजार, ह्वै है उत्तरगुण विस्तार ।।५२।।
फुनि दश प्रायश्चित जे दोष, तिनमें गुनैं छोड़ि के रोष ।
तब हो हैं चौरासी लाख, गणधर भाषत सूतर साख ।।५३।।
इनकी भावन राखै सदा, तो प्रापति हो जावै कदा ।
गुणथाना परपाटी माँहि, जैसे ह्वै वर्णत हूँ ताँहि ।।५४।।

दोहा

मिथ्या सासादन मिसर, तीनूँ गुण में नाँहि ।
अविरत-विरती विरत गुण, शेष देश तें पाँहि ।।५५।।
अनन्तानु मिथ्यात का, हानि चतुर्थे थान ।
एकदेश धारैं वरत, देशव्रती गुणवान ।।५६।।
परमत होत महाव्रती, धरि सामायिक देश ।
अप्रमाद गुणसात में, जहाँ विशुद्धता वेश ।।५७।।
गुण अपूर्व अनिव्रतकरण, रागादिक अव्यक्त ।
यामें सामायिक-महा, पूरण वन्या चरित्त ।।५८।।
जात अव्यक्त कषाय सब, दशमा गुण के अन्त ।
यथाख्यात-चारित्र गुण, ग्यारै-बारै सन्त ।।५९।।
गुण परूणता तेरवैं, क्षीण-मोह सापेक्ष ।
घातकर्म अर योग का, नाश चौदवैं देख ।।६०।।
आर्त्त-रौद्र करना नहीं, धरना धर्म विशेष ।
तामें भेद व्योहार तजि, निश्चय एक हि पेक्ष ।।६१।।
भेद-विचार विचार तैं, होत न कर्म विनाश ।
जब अभेद सुध कौ गहै, तब पावै शिववास ।।७२।।

अथ पञ्च प्रकार चरित्र, चौपई

मुनि पद का चारित्र सुज्ञान, पञ्च भेद भाख्या भगवान ।
प्रथम सदा सामायिक सार, छेद-थापना दोष निवार ।।१।।

फुनि परिहार विशुध सुखदाय, दशमें गुण सूक्ष्म-साम्पराय।
यथाख्यात आतम अविकार, ग्यारै बारै गुण का धार ॥२॥
सामायक तो वर्णन भया, व्रत-प्रतिमा में सो लख लया।
श्रावक नित्य नियम धर करैं, मुनिवर सदा सासता धरै ॥३॥
अधिका धरै नित्य त्रिकाल, सावदि त्यागी जी रिछिपाल।
श्रावक दुपटा-धोती धरै, मुनिवर नगन ममत परिहरै ॥४॥
काल उलंधन परति न करै, समता भाव विशुद्ध अनुसरै।
दोष लगै व्रत छेदै तदा, फुनि थापै सो दूजा वदा ॥५॥

दोहा

पृथक-वर्ष लों धुनि सुनी, पढ़े निकट जिनराय।
देशकाल उतपति मरण, सब वेता ह्वै जाय ॥६॥
तीस वर्ष वय का मुनी, विशुध रहित परमाद।
गमन करै नित कोस दो, संख्या छोड़ प्रमाद ॥७॥
प्रत्याख्यान पूर्वक गहै, बल-वीरज का धार।
प्रचुर निर्जरा करत है, धरै कठिन आचार ॥८॥
जो कदाचि सुर आय के, करैं विघ्न अतिघोर।
एक चरण ठाड़े रहै, कित ह्वै घोस वठोर ॥९॥
ये परिहार-विशुद्ध है, मुनि सूक्ष्मसाम्पराय।
अबुध पूरवक है जहाँ, संज्वल लोभ कषाय ॥१०॥
कै उपशम कै होय क्षय, सब ही मोह कषाय।
एकादश कै बारवैं, यथाख्यात चित थाय ॥११॥
थिर न रहै उपशम गिरै, अखै क्षायकी भाव।
यथाख्यात सम्पूर्णव्रत, अनन्तचतुष्टय दाय ॥१२॥
सामायिक चारित्र तैं, अनँत अधिक विस्तार।
होवै भाव विशुद्धता, यथाख्यात लौं सार ॥१३॥

॥ इति पाँच प्रकार चारित्र कथन ॥

अथ पञ्च व्रत भावना

अहिंसा व्रत का स्वरूप, दोहा

करै क्रिया आश्रव धरम, सो त्यागै अनगार।
जो म्हाव्रत में आदरै, ताका लिखूँ प्रकार ॥१॥
तिरस-घात संकल्प करि, त्यागै श्रावक धर्म।
त्रस-थावर जिय जात का, घात तजै मुनि पर्म ॥२॥
कृत कारित अनमोदना, मन वच तन में लाय।
तजैं विरागी महाव्रती, जोलों तन में आय ॥३॥

अहिंसा व्रत की पाँच भावना, अडिल्ल

वचन गुप्ति मन गुप्ति, ईरज्या समिति बनावै ।
आदनक्षेपण समिति, देख कैं धरै उठावै ।।
खान-पान दिन देखि, करै निर्दोष एक घर ।
प्रथम महाव्रत पञ्च, भावना भावै मुनिवर ।।४।।

अथ सत्य व्रत का स्वरूप, दोहा

धर्म रहै अर जिय बचैं, कहै असी सागार ।
तजै झूठ मुनि सर्वथा, भाखै हित-मित सार ।।५।।
देश काल वय भाव लखि, जिन-आगम अनुसार ।
उपदेशे कै श्रुत पढ़ै, निज-पर का उपकार ।।६।।

सत्य व्रत की पाँच भावना, अडिल्ल

क्रोध करै परित्याग, लोभ परित्याग लगावै ।
करै हास्य परित्याग, कौन हूँ भय ना ल्यावै ।।
अधम-आन अनुसार, वचन मुख नाँहि उचारै ।
दुतिय महाव्रत पञ्च,- भावना साध विचारै ।।७।।

अथ अचौर्य व्रत का स्वरूप, दोहा

बिना दिया जल मृत्तिका, श्रावक तो गहि लेत ।
मुनिवर ले नहि बिन दिया, भई परीस्या लेत ।।८।।

अचौर्य व्रत की पाँच भावना, अडिल्ल

कोटर गुफा निवास, बसै सूँना घर पाया ।
वरजै जहाँ न जाय, आय वरजै नहि आया ।।
विसंवाद ना करै, करै भोजन जिनभाष्या ।
तृतीय महाव्रत पञ्च-भावना इम अभिलाष्या ।।९।।

अथ ब्रह्मचर्य व्रत स्वरूप, दोहा

श्रावक पर-नारी तजै, राखी व्याही-नार ।
निज-पर चेतन जड़ सरव, तिय त्यागै अनगार ।।१०।।

ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावना, अडिल्ल

प्रेम वचन ना कहै, लखै नहि राग राखि मन ।
पुष्टअशन ना करै, करै संस्कार नाँहि तन ।।
पहलै सुमरै नाँहि, जानिये पञ्च भावना ।
ब्रह्मचर्यव्रत तनी, मुनीश्वर धारि चावना ।।११।।

अथ परिग्रह त्याग व्रत का स्वरूप, दोहा

परिग्रह को परिमाण तैं, राखै गेही नेह।
तिल-तुष सम राखै न कुछ, मूरछा तजै अछेह ॥१२॥

अपरिग्रह व्रत की पाँच भावना, दोहा

पाँचों इन्द्री के विषैं, हो है पञ्च प्रकार।
ये मनोज्ञ-अमनोज्ञ यह, भाव न करै लगार ॥१३॥
यहै महाव्रत-भावना, लिखी जिनागम वाँचि।
ताँहि चितारत मुनि सदा, निज आतम में राँचि ॥१४॥

अथ षट् आवश्यक, दोहा

समता वँदना थुति करण, प्रतिक्रमण स्वाध्याय।
षडावश्यक मुनि नित करै, मन व्यत्सर्ग बनाय ॥१५॥
अजौं लिखूँ मुनि-चरित कूँ, सूत्रनि के अनुसार।
ताकौं सुनते समझते, दूर जात अघ-भार ॥१६॥

अथ मुनि चरित्र, गीता छन्द (अठाईस मात्रायें)

तन नगन बनि के गहै दीक्षा, तेरे चरित ध्यावना।
तप तपै बारै धर्म धारै, दशरु द्वादश भावना ॥
भोगैं परीसह बीस-दो को, धर्म-शुक्ला आदरै।
सब मोह मारै कर्म टारै, राज शिव काजा करै ॥१॥

अथ तेरह प्रकार का चारित्र, गीता छन्द

थावर तरस की तजै हिंसा, झूठ वच परति न कहै।
बिन दिया ले नहि त्रिया त्यागैं, त्यागैं परिगह न गहै ॥
तन मन वचन के जोग रोकै, गुप्ति तिहुँ साधैं सही।
परिभ्रम करै तब समिति पालै, पञ्च जिनवर जे कही ॥२॥

अथ पञ्च समिति, गीता छन्द

जुआँ प्रमाण नीहारि चालै, वचन जिन-भाषित कहै।
निर्दोष पर-घर एक वेरा, निरस भोजन को गहै ॥
मेलै-उठावै पुस्तकादिक, अचित भूमि करी तहाँ।
मल-मूत्र क्षेपै भूमि प्राशुक, समिति इम पाँचूँ महाँ ॥३॥

अथ द्वादश तप, गीता छन्द

अशन ऊनोदर रसनि त्यागै, वरत-परिसंख्या लहै।
वीविक्तशय्यासन कलेशा,-काय बाहिर तप यहै ॥
प्राचित्त विनई वैयावृत्य, शास्त्र मन में ध्यावना।
व्युत्सर्ग ध्यान सुजानऽभ्यन्तर, भेद षट् तप पावना ॥४॥

अथ अनशन तप, गीता छन्द

त्यागै अहारा भेद चारों, परिग्रह आरम्भ हरैं।
विषय इन्द्री पाँचों हि त्यागें, उचित थल आसन करैं ।।
तजि राग-दोष होई चौखा, भाव तैं जिनवर जपैं ।
आगम विचारैं ध्यान धारैं, भव्य अनशन इम थपैं ।।५।।

अथ उनोदर तप, गीता छन्द

श्रावक घरावै जबै मुनि कौं, विविध भोजन देत है ।
वे स्वल्प भोजन ले अपूरण, उदर भर ना लेत है ।।
लालच मिटावै रुज हटावै, गहै प्रभु के शरण कौ ।
इम करै आमोदरजि व्रत कौ, दुष्ट आरस हरण कौ ।।६।।

अथ व्रत-परिसंख्यान तप, गीता छन्द

थापै जु श्रावक सदन संख्या, तथा रस संख्या धरै ।
कै थपैं दानी काय चेष्टा, सो मिलै भोजन करै ।।
जो ना मिलै विधि लहै नाँहीं, अधिक समता कौ गहै ।
दुख जन्म बाधा हरण साधू, वरत-परसंख्या लहै ।।७।।

अथ रस-परित्याग तप, गीता छन्द

रस दूध दधि घृत खाण्ड खारा, मध्य इन में राखि ले ।
राख्या मिलै तो करै भोजन, प्रथम आँख्याँ देख ले ।।
सब विषय भोगनि नाग जान्या, राग तब ही तज दयो ।
वर अशकि होकै करैं भोजन, डरैं जो विपता भयो ।।८।।

अथ विविक्त-शय्यासन तप, गीता छन्द

बीतो अनन्तो काल अब लौं, नाँहि पूरणता भई ।
कीना मरण अरु जन्म लीना, भरम बुधि विपता भई ।।
घर दार सम्पति निमित कारण, जान दुख दायक बुरा ।
निर्जन सघन वन भूमि प्राशुक, सदन आसन जा करा ।।९।।

अथ काय-क्लेश तप, गीता छन्द

धन-धान दारा सकल न्यारा, तिने तजना सुगम है ।
तन एक-मेक अनादि का जिस, तैं जुदाई विषम है ।।
सो हरत तन तैं ममत मन तैं, धारि समता जिनमती ।
जब धरत तन परमाद कौ तब, कायक्लेश करैं जती ।।१०।।
आहारादि बहि वस्तु तजना, तथा आँन प्रतक्ष है ।
मिथ्यातमती हुँ करत तिन कूँ, बाह्य तप या पक्ष है ।।

आँन मत में कभुँ बनत नाँहीं, बहुरि मन आधार ह्वै।
षट् तप अभ्यन्तर अबै भाखुँ, ताँहि कर तैं सार ह्वै ॥११॥

अथ प्रायश्चित तप, गीता छन्द

प्रायश्चित जानुँ दोष हरणों, भेद ताकै नौ भना।
आलोचना प्रतिक्रमण तदुभय, फुनि विवेक सु थाभना ॥
व्यत्सर्ग तप व्रत-छेद छानों, परिहरण फुनि थापना।
नौ विधि यथोचित दोष मानैं, शुद्ध है चित आषना ॥१२॥

अथ आलोचना, गीता छन्द

दश दोष हरि कैं गुरुनि कहना, दोष सो आलोचना।
अल्प-प्रायश्चित्त भेद कीये, देयगें या सोचना ॥
मुझ अशकी कौं गुरु थोरा दें, सो धारि दूषण कहै।
छानैं न भाषै प्रगट भाषै, दोष तीजा सो गहै ॥१३॥
अल्प लाग्या तो गिनै नाँहीं, गहै मोटा कुचित है।
यों दोष-मोटा दण्ड-मोटा, जान छोटा रचित है ॥
पहलें बतावै तो सुनाऊँ, मानि सेवा में पगा।
जब घनै बोलैं तबै खोलैं, आपकूँ दूषण लगा ॥१४॥
गुरु वचन में सन्देह लाकै, आन को पूँछत फिरैं।
सामान से कौं पूँछि लें के, आपही दूषण हरैं ॥
जैसा इसे तैसा हि मोमैं, मान बिन पूँछे करैं।
दोष ये कह आलोचना के, टारि तैं आनँद भरैं ॥१५॥

अथ प्रायश्चित लेने की विधि एवं उसके नौ भेद

मुनि तो कहें एकान्त गुरु कौं, आर्यिका दो मिलि कहैं।
जो मान भय तैं कहै नाँहीं, सो वरत कूँ हनत हैं ॥
मो दोष मिथ्या होय कहना, प्रतिक्रमण सो जानिये।
आलोचना-प्रतिक्रमण दोऊ, करैं तदुभय मानिये ॥१६॥
दोषीन का संसर्ग हरना, सो विवेक बखानिये।
व्यत्सर्ग तन तैं ममत तजना, अचल रहना जानिये ॥
अनशनादिक करन तप है, छेद हुँ-री लगावना।
दीक्षा लये दिन गये तिन में, मास पक्ष घटावना ॥१७॥
परिहारि सो सँग बाह्य रहना, करि अवादा आपना।
छेदी गई फुनि धरैं दिक्षा, जान सो उपथापना ॥
ये कौन धारैं सो कहत हौं, वचन जिन अवधारिकै।
सो करो "बुधजन" हरो कलमष, शुद्ध भाव सँवारिकै ॥१८॥

पढ़नारु पर-उपकरण गहना, आँन सँघ में जावना ।
पूँछै बिना इत्यादि करना, तहाँ ले आलोचना ॥
विसमर्ण आवशि होत कहते, धर्म प्रतिकरमन करैं ।
अतिचार लागे गुप्ति में जो, तबै तदुभै आदरैं ॥१९॥
अचित मिश्रित सचित ले-ले, वचन अनुचित उच्चरैं ।
व्यत्सर्ग लौं तो करैं जो तजि, बिनैं अरनी का तिरैं ॥
पग लगै पुस्तक हरित खूँदैं, अनशनादिक तप धरैं ।
मिथ्यात पोखै भूलि कैं तो, छेद दिक्षा आदरैं ॥२०॥
मूलगुणों में दोष लागैं, संग बाहर को फिरैं ।
मरजाद बीतैं अरज करते, सुगुरु ताकों आदरैं ॥
उनमत्त डोल्या संग तजि कैं, आन अति पायन परैं ।
बहुरि दीक्षा फिर होत ताकूँ, दोष इम निर्मल करैं ॥२१॥

॥ इति प्रायश्चित वर्णन ॥

अथ विनय तप, गीता छन्द

मोह संशय अरु भरम तजकर, विनय ज्ञान सुधारना।
विनय-दर्शन अरु तत्त्व रुचि में, दोष शंक निवारना॥
ज्ञान-दर्शन सहित ही चारित, विनयभाव विरागता।
उपचार प्रतक्षि परोक्षगुरु कौ, नमन धरि अनुरागता ॥२२॥

अथ वैय्यावृत्य तप, गीता छन्द

आचार्य विद्या-दाय तपसी, शिक्ष रोगी गणन का ।
कुल संघ साधु मनोज्ञ दश का, खेद बाधा हरण का ॥
आन द्रव्य ले काय करी कैं, वयाव्रत साधन करै ।
निरविचिकित्सा वातसल्य गुण, पैलै हि कल्मष हरै ॥२३॥
रिषि-रिद्धिधारी दसों इन्द्री, जीत ताँहि बखानिये ।
अवधि मनपर्यय सहित जो, ताँहि मुनिवर जानिये ॥
अनगार यों सब सदन त्यागी, संघ जिनमत मुनितना।
मुनि अर्यिका श्रावक त्रिधा को, संघ भाषै मुनिजना ॥२४॥

अथ स्वाध्याय तप, गीता छन्द

वाचना हूँ तो पाठ पढ़ना, प्रश्न करना पूँछना।
अनुप्रेक्ष चितवन आमनाया, शुद्धपद का घोकना ॥
उपदेश देना साँच कहना, भेद तप स्वाध्याय के ।
संशय निवारक दोष टारक, अति विशुद्धता दाय के ॥२५॥

अथ व्युत्सर्ग तदप, गीता छन्द

व्युत्सर्ग कहना ममत तजना, बाह्यऽभ्यन्तर परिग्रहा।
सो कहा आगे महाव्रत में, धर्म-दश में फुनि कहा॥
अर कहा प्रायश्चित भेद माँहीं, बहुरि तप में अब कहा।
सो दोष ना उत्साह करना, उत्तरोत्तर है महा॥२६॥

अथ ध्यान तप, गीता छन्द

तप-ध्यान जानूँ रोक चित कूँ, एक ठोरा राखिवो।
संहनन उत्तम ही तीन में, अँतर-महुरत थामिवो॥
दो ध्यान आरति-रुद्र खोटा, कुगति दा मिथ्यामती।
दूसरे धर्मरु शुक्ल धरि कै, स्वर्ग-शिव ले समकिती॥२७॥

॥ इति द्वादश तप ॥

अथ दशलक्षण धर्म,

(१) उत्तम क्षमा, गीता छन्द

पृथ्वी हिलावै तो खिजावै, असी ऋद्धि मुनि कुँ बनीं।
तिह दुष्टजन उपसर्ग ठानैं, धोर विपदा अति घनीं॥
सो सहै साधू क्षमाधारी, क्रोध मन में ना धरैं।
जिय जात भ्रात समान मानै, दुष्टता कैंसे करैं॥२८॥

(२) उत्तम मार्दव धर्म, गीता छन्द

ऋषि-रिद्धिधारी अवधिधारी, बड़ा कुल अति तप करैं।
मो-सा न कोऊ और दूजा, इस्या मद मन ना धरैं॥
करते षडावश धार पावस, कै रहो निज ध्यान में।
सब ममत त्यागी मुनि विरागी, रचे अपने ज्ञान में॥२९॥

(३) उत्तम आर्जव धर्म, गीता छन्द

मुनि मन वचन तन सरल राखै, कपटता नाँहीं करैं।
ह्वै दोष-गुण जो कहै गुरु सो, देय प्रायश्चित धरैं॥
सो करत वर उत्साह सेती, आपना हित कारणैं।
यों आर्जवा गुण धरो भविजन, धर्म विघ्न निवारणैं॥३०॥

(४) उत्तम सत्य धर्म, गीता छन्द

पूजा रचावें थुति बनावें, शीश नावें कहन को।
को खड्ग वावें कुछ कहावें, आपने चित चेन को॥
वे नाँहि बोलें मौन आनै, जानते सब ज्ञान में।
सब झूठ-त्यागी सत्य-पागी, प्रगट सकल जहान में॥३१॥

(५) उत्तर शौच धर्म, गीता छन्द

अँतराय होते गये बहु दिन, एक दिन विध मिल गई।
तब लेत ग्रास विरागता सूँ, लब्धता कूँ तजि दई ॥
फुनि जो कदै अँतराय आवै, ग्रास तब तत्क्षिण तजैं।
मन में विषाद न करै मुनिवर, शौचता गुण को सजैं ॥३२॥

(६) उत्तम संयम धर्म, गीता छन्द

मासोपवासी गैल जातै, सुर परीक्षा कारने।
चहुँ ओर सबजी रचैं भूपरि, वाट गमन निवारनैं ॥
संवर न टारैं योग धारैं, अचल बनिके धरणि में।
उपसर्ग टारैं अमर हारैं, शीश धारैं चरण में ॥३३॥

(७) उत्तम तप धर्म, गीता छन्द

तरु-हेट पावस करैं का-बस, डाँस माँछर दुख सहैं।
नद्दी किनारे ध्यान धारे, शीतकारैं-सी-दहैं ॥
ग्रीषम दुपहरी सिला-हेर, योग प्रतिमा व्रत धरैं।
तप तपैं सोऽहं जपैं हर्षित, दुष्ट कर्मन निर्झरैं ॥३४॥

(८) उत्तम त्याग धर्म, गीता छन्द

धन-धान सम्पति केलि दम्पति, तजी ज्यों जीरण तना।
मन हरी ममता धरी समता, करी करुणा अंग ना ॥
नित दान निर्भय देत सबको, ज्ञान देवे भविजना।
मुनि है विरागी तऊ त्यागी, रंग रागै निज मना ॥३५॥

(९) उत्तम आकिञ्चन धर्म, गीता छन्द

मेरा न कोई मैं न किसका, भिन्न-भिन्न प्रदेश हैं।
ना हुये कबहूँ होंयगे नहि, अबै न्यारे भेष हैं ॥
इमि सब अनादी अन्त वर्जित, अपुन-अपुन स्वभाव में।
ममता मिटावैं मोक्ष पावैं, लगैं आप- उपाव में ॥३६॥

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म, गीता छन्द

सब कामना अर रमणि रमना, यह अब्रह्मै जग मता।
नारी नपुंसक पुरुष नाँहीं, ब्रह्म चेतन रंगता ॥
ब्रह्मचर्य ध्याया जिनुँ पाया, मोक्ष के सुख सासता।
दशधर्म पालै साधु निश्चय, धरैं श्रावक आसता ॥३७॥

॥ इति दशधर्म ॥

अथ द्वादश भावना

(१) अनित्य भावना, गीता छन्द

जेती जगत में वस्तु तेती, अथिर परजै तैं सदा।
परिनमन राखन नाँहि समरथ, इन्द्र चक्री मुनि कदा ॥
तन धन जुवन सुत नारि परिकर, जानि दामनि दमक-सा।
ममता न कीजै धारि समता, मानि जल में नमक-सा ॥३८॥

(२) अशरण भावना, गीता छन्द

चेतन-अचेतन परिग्रहै सब, हुवा अपनी तिथि लहै।
सो रहे नाँहि करार माफिक, अधिक राख्या ना रहै ॥
अब सरन का-का इन्द्रलों का, इन्द्र नाँहीं रहत हैं।
है शर्ण तो इक धर्म-आतम, ताँहि मुनि-जन गहत हैं ॥३९॥

(३) संसार भावना, गीता छन्द

सुर नर नरक पशु सकल हेरै, कर्म चेरे बनि रहै।
सुख शासता नहि भासता सब, विपति में अनशन रहै ॥
दुख मानसी तो देव गति में, नारकी दुख हो भरै।
तिर्यञ्च मनुष वियोग रोगी, शोक संकट में जरै ॥४०॥

(४) एकत्व भावना, गीता छन्द

क्यों भूलता है फूलता क्यों, देख परकर थोक कूँ।
क्या लेय आया जायगा ले, फौज भूषण रोक कूँ ॥
जीवत-मरत तुझ एकलें कूँ, काल केता हो गया।
सँग और नाँहीं लगै तेरी, सीख मेरी गहि भया ॥४१॥

(५) अन्यत्व भावना, गीता छन्द

इन्द्रीनि तैं जान्या न जावे, तू चिदानँद अलख है।
स्वसंवेदन करत ही अनुभव, होत तब प्रत्यक्ष है ॥
तन आन जड़ जानूँ सरूपी, तू अरूपी सत्य है।
करि भेद ज्ञान सुध्यान धर निज, और बात अनित्य है ॥४२॥

(६) अशुचि भावना, गीता छन्द

क्या देखि राच्या फिरै नाच्या, रूप सुन्दर तन लया।
मल-मूत्र भाण्डा भर्‍या गाढ़ा, तू न जाने भ्रम गया ॥
क्यों सूँघना ही ल्यात आतुर, क्यों न चतुरता को धरै।
काल गटकै नाँहि अटकै, छोड़ तुझ को गिर परै ॥४३॥

(७) आश्रव भावना, गीता छन्द

को खरा अरु को बुरा नाँहीं, वस्तु विविध स्वभाव है।
तू वृथा विकलप ठान उर में, करत राग उपाव है ॥

यों भाव आश्रव बनत तू ही, द्रव्य आश्रव सुनि कथा।
तुझ ममत तैं पुद्गल करम बनि, निमित ह्वै देते व्यथा ॥४४॥

(८) संवर भावना, गीता छन्द

तन भोग जगत सरूप लखि डरि, भविक सुर शरणा लया।
मुनि धर्म धार्‍या भरम गार्‍या, हर्ष रुचि सन्मुख भया॥
इन्द्री-अनिन्द्री दाव लीनी, तिरस-थावर वध तज्या।
तब कर्म आश्रव आन रोकै, ध्यान निज सेना सज्या ॥४५॥

(९) निर्जरा भावना, गीता छन्द

तजि शल्य तीनूँ वरत लीनूँ, बाह्यऽभ्यन्तर तप तप्या।
उपसर्ग सुर-नर जहाँ पशु कृत, सह्या निज आतम जप्या॥
तब कर्म रस बिन होन लागी, द्रव्य-भावा निर्जरा।
सब कर्म हर कै मोक्षवर कै, रहित चेतन ऊजरा ॥४६॥

(१०) लोक भावना, गीता छन्द

बिचि लोकऽनन्ते लोक माँहीं, लोक में द्रव्य सब भरा।
भिन-भिन सरूप अनादि रचना, निमित कारण की करा॥
जिनदेव भाष्या तिन प्रकास्या, भर्म नास्या सुनि गिरा।
सुर मनुष तिरजग नारकी है, उरध-मध्य-अधो धरा ॥४७॥

(११) बोधिदुर्लभ भावना, गीता छन्द

आनन्तकाल निगोद अटक्या, निकसि थावर तन धर्‍या।
भू वारि तेज वयारि होकै, विइन्द्री पशु अवतर्‍या॥
ह्वै के ते इन्द्री ह्वै चौ इन्द्री, पञ्चेन्द्रि मन बिन बना।
मन जुत मनुष्य होना दुर्लभ, ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥४८॥

(१२) धर्म भावना, गीता छन्द

न्होना धोना तीर्थ हि जाना, धर्म नाँहीं जप जप्या।
है नगन रहना धर्म नाँहीं, धर्म नाँहीं तप तप्या॥
वह धर्म निज-आतम सुभावा, ताँहि बिन सब निर्फला।
''बुधजन'' धरम निज धारि लीना, तिनूँ कीना सब भला ॥४९॥

॥ इति द्वादश अनुप्रेक्षा ॥

अथ बाईस परीषह नाम, गीता छन्द

अति क्षुधा तिरषा शीत गरमी, डाँस-मच्छर अति घना।
तिय गमन आसन शयन बन्धन, क्रोध अन-जाचक मना॥
फुनि गिनि अलाभरु रोग कण्टक, मलिन-तन सनमानना।
प्रज्ञा अज्ञानादर्शन बाइस, सहैं बाधा मुनिजना ॥५०॥

(१) क्षुधा परीषह जय

वन का निवासी मासवासी, करण ऊठे पारनै।
सब सदन डोलै कौ न बोलै, शुद्ध भोजन कारनै ॥
तब उलट आये अचल ठाये, ध्यान निज में अति पगे।
वर क्षुधा बाधा सहत भारी, हारि कै नाँहीं भगे ॥५१॥

(२) तृषा परीषह जय

कहुँ मिला प्रकृति विरोध भोजन, उठी तिस सूकै गरा।
ग्रीषम दुपारी तपै भारी, ध्यान गिरि शिर पर धरा ॥
मुनी पीत अमृत भये तिरपत, आपना अनभै चखै।
वे साधु मेरी बाध मेंटो, अरज या सेवक अखै ॥५२॥

(३) शीत परीषह जय

निश-माह सारी शीत भारी, सहैं चौहटा में खरै।
जब जमै सरवर जरै तरुवर, कपिनि के मद को हरै ॥
को अगिनि जारै शाल धारै, करे जतन अनेकधा।
मुनि नगन तन ना वसन राखै, धरै ध्यानसु एकधा ॥५३॥

(४) उष्ण परीषह जय

लू-लपट बाजैं अंग-दाजैं, तपै रवि शिर पै अथा।
गिर शिखर ठाहैं चरण-दाहैं, शिला ताती के मथा ॥
वर दहत भूखे हलक सूखे, नैन ना धीरज लहै।
ज्यों लीन निर्झर मीन मुनिवर, परम आनँद मुनि गहै ॥५४॥

(५) दंश-मशक परीषह जय

घनघोर गाजैं बूँद बाजैं, रोष दल टपकैं परैं।
मुख ना विगारैं पिक पुकारैं, शिखर तैं झरनै झरैं ॥
तन डाँस चूँटैं भूमि फूटैं, वंश अंकूरे फँसैं।
तब ध्यान धारैं नाँहि हारैं, साधु आनँद में बसैं ॥५५॥

(६) नग्न परीषह जय

शिर चमर ढ़रते राज करते, सोहते पुर में महा।
जग अथिर जान्या धर्म आन्या, भर्म भान्या तप गहा ॥
डोलै दिगम्बर बिना भूषण, गहैं संवर जिन कहा।
तन नगन सोहें जगत मोहें, पाप खोवें दुख दहा ॥५६॥

(७) अरति परीषह जय

अति कठिन दुद्धर नगन रहना, कठिन विरति जती-तनी।
कहुँ गरम बाधा मेघ बरसै, शीत बाधा कहुँ थनी ॥

कहुँ मिलत भोजन कहूँ नाँहीं, कहूँ ह्वा ही दुखघना ।
तब अरति नाँहीं करत मुनिवर, धरत समता अतिभना ।।५७।।

(८) स्त्री परीषह जय

शिव अर्धनारी विधि विकारी, पञ्च वक्त्र तबै करा ।
रावण मराया रघु भ्रमाया, नाम नागिन विष भरा ।।
मुनि जानि त्यागी ह्वै विरागी, लगन लाई ब्रह्म में ।
तियसंग सोते खुशी होते, सो न चितवै सुपन में ।।५८।।

(९) चर्या परीषह जय

गजरथ तुरंगा चपल चंगा, बैठि कै चलते सदा ।
हयरथ फिराते आँगना,-प्यादेन कहुँ फिरते कदा ।।
अब गड़त कंकर चुभत कंटक, चलत चित करुणा लिया ।
अति जलद अति धीरै न डोलै, सकल विकलप तजि दिया ।।५९।।

(१०) निषद्या परीषह जय

लखि भूमि प्राशुक धारि आसन, पगे यतिवर ध्यान में ।
तब असुर कीनी घोर वरषा, शोर उठत जहान में ।।
तब नाँहि डरपैं अचल थरपैं, तन वचन मन निर्मला ।
सब असुर करणी गई निरफल, लब्धि पाई केवला ।।६०।।

(११) शय्या परीषह जय

सजि सेज फूलन चपल झूलन, हलन पंखा पौन में ।
गन्ध अगर सुवास सँग-तिय गर, पोढ़ते रँग-भौन में ।।
वन सघन निर्जन सिंह श्यालन, शब्द भयकारी कहै ।
जहाँ रैन पिछलि भूमि कंकर, अलप निद्रा को गहै ।।६१।।

(१२) आक्रोश परीषह जय

मुनि भये नरपति सेठि धनपति, त्यागि सदन विभौ घना ।
लखि चोर चुगल लवार लम्पट, कहै मिथ्याती जना ।।
सों सुनै काना नाँहि आना, क्रोध ईर्षा निज मना ।
सुर परै-चरणा मान शरणा, धन्य-धन्य तपोधना ।।६२।।

(१३) वध परीषह जय

अपराध बिन लखि साधु दुर्जन, पकरि बाँधैं मारनैं ।
तब मौन राखैं नाँहि भाषैं, गहै समता भारनैं ।।
जिय जात सारै मित्र मारै, राग-दोष करै नहीं ।
वे साध मेरी बाध मेंटो, नमों शिर लगि कै मही ।।६३।।

(१४) याचना परीषह जय

सब सहैं बाधा भूख तिरषा, शीत वर्षा घाम की।
निज रंग राँचैं नाँहि जाँचैं, काहुँ सौं निज काम की॥
सुख लिये पहिले किये जेते, माँहि तिन याद न करैं।
निर्भय निशंक कलंक वर्जित, शुद्ध जिन-मुद्रा धरैं॥६४॥

(१५) अलाभ परीषह जय

चिरकाल पालत धर्म तप तैं, सूखि तन दुर्बल थया।
दिन चार बीते फिरे रीते, लाभ भोजन ना भया॥
अति बढ़ति भाव विशुद्ध नित-नित, ज्ञान मनपरजै लया।
हूँ नमूँ नितिप्रति दमूँ दुर्गति, साधु वे जग में जया॥६५॥

(१६) रोग परीषह जय

तन शूल चाले कौन ढाले, सघन वन निर्जन तहाँ।
मैं सही भारी नर्क सारी, तुच्छ बाधा या कहाँ॥
यों वर विचारैं ना चितारैं, जतन करना नेह तैं।
जरजाय कै रह जाय मेरा, नता नाँहीं देह तैं॥६६॥

(१७) तृणस्पर्श परीषह जय

धरि योग प्रतिमा ध्यान उत्तम, धारि बैठे शिल परै।
उड़ि आय कण्टक पऱ्या नेत्रन, अटकता खटकत अरै॥
तिहि नाँहि काढ़ै विपति बाढ़ै, सहै सो समता धरे।
उपसर्ग जोलों रहै तोलों, ध्यान तैं मन ना टरे॥६७॥

(१८) मल परीषह जय

अति करत जोरा म्हे मरोरा, गरम अति व्याकुल तपै।
चालै पसीना पौन झीना, उठी रज वपु तैं चपै॥
लखि मलिन तन-मन कौ न मोरे, ग्लान वर आनैं नहीं।
जिन न्हान त्यागा धर्म पागा, मोह को जीत्या सहीं॥६८॥

(१९) सत्कार-पुरस्कार परीषह जय

जे भूप-पद तजि गह्या मुनि-पद, गमन करते जात हैं।
को देखि शठ अपमान ठानैं, तबै ना अकुलात हैं॥
को पाँय पूजैं धर्म बूझे, जबै ना हरषात हैं।
अपमान-मान समान जाकैं, सो मुकति को पात हैं॥६९॥

(२०) प्रज्ञा परीषह जय

हम पढ़ैं आगम अर अध्यातम, कथन साँचा करत हैं।
ऐसा न जान्या जगत मान्या, आन विद्या धरत हैं॥

यों करत नाँहीं मान मन में, रचत ज्ञान बढ़ावना ।
हूँ नमूँ तिन कूँ चरण रज कूँ, करो मुनि की पावना ।।७०।।

(२१) अज्ञान परीषह जय

फुनि धरि मरोरा करैं जोरा, कर्म शंकादिक करैं ।
जिनवानि कूँ करि यादि उर में, उठी शंका परिहरैं ।।
अज्ञान पै मन माँही ल्यावै, आप ध्यावै आप में ।
कोटी भवों का पाप नाशें, करत जिनके जाप तें ।।७१।।

(२२) अदर्शन परीषह जय

चिर वृत्त पाल्या दोष टाल्या, सबै गाल्या कोह कूँ ।
जो सुनी अतिशय रिद्धि होनी, सो न तुम जी मोह कूँ ।।
परचैं अनादि अतत्त्व का है, सहजैं जग में बनि रहा ।
बढ़भागि ''बुधजन'' ताँहि के जिन-तत्त्व का सरधा गहा ।।७२।।

।। इति बाईस परीषह ।।

अथ पञ्च प्रकार मुनि कथन, गीता छन्द

पुलाक वकुश कुशील निरग्रन्थ, शुद्ध निपट सनातका ।
निर्ग्रन्थ नगन सबै मुनीश्वर, होत पाँचूँ जात का ।।
हीन अरु अधिक कषाय चारित, भेद यातैं बनत हैं ।
सब ही दिगम्बर पर्म जैनी, नमत अघ कूँ हरत हैं ।।७३।।
को काल वशि तैं मूलगुण में, होत जात विराधना ।
अतिचार जुत ह्वै बहुरि नाँहीं, मूलगुण की भावना ।।
ज्यों शालि तुष जुत बालि माँहीं, त्यों वरत दूषण मिला ।
निर्ग्रन्थ नगन पुलाक मुनि का, होत है ऐसा जिला ।।७४।।
ते मूलगुण कूँ शुद्ध राखै, उतर पूरव ना बनैं ।
उपकर्ण शास्त्ररु शिष्य गुरु तैं, राग मन तैं ना हनैं ।।
जिन-धर्म का उत्साह चाहैं, रखैं ऐसी मानना ।
जो बालि निकसी शालि तुष जुत, त्यों वकुश मुनि जानना ।।७५।।
कुशील मुनी तो है कछुक ज्यों, दबी निपट कषायता ।
संज्वलन होत अबुद्ध पूर्वक, सो कुशील कषायता ।।
बिन मोह आन उदै कर्म तैं, निज प्रदेश चलाय है ।
प्रतिसेवना सुकुशील मुनिजन, भेद दूजा गाय है ।।७६।।
मोहा खिपाया मुहूर्त माँहि, रहा केवल आवना ।
परिग्रह मिटाया बाह्य-अन्तर, सबै विषम अपावना ।।
दो वेर कूटे भये चावर, जुँ निर्ग्रन्थ सुचित्त हैं ।
मैं नमूँ तिनके चर्ण कमलनि, जगत जिन के मित्त हैं ।।७७।।

जिन ज्ञान-दर्शनवर्न नासा, दुष्ट मोह खिपाय कै।
केवल प्रकास्या सकल भाष्या, अन्तराय मिटाय कै ॥
अतिकूट चोखे भये चावर, त्यों सनातक ईश हैं।
मुनि इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र नमि, नमि कर पवित्र शीश हैं ॥७८॥
संयम सुरति प्रतिसेवना फुनि, तीर्थ चिन्ह निकेत तैं।
उत्पाद लेश्या भाव थाना, साधि ले वसु होत तैं ॥
पुलकादि मुनिवर पञ्च पै अनु,-जोग खूब विचारना।
तब हरै शंसा जग प्रशंसा, होय समकित आवना ॥७९॥
पुलाक वकुश कुशील ह्वै जुत, प्रतिसिवन इन तीन में।
संयम सामायक छेदपना, दोय चारित लीन में ॥
ह्वै चार संयम यथाख्याती, शुद्धभाव सुशील में।
निरग्रन्थ स्नात यथात-ख्याती, बिन कषाय कुसील में ॥८०॥
दशपूर्व-धारी पुलाक वकुश, कुशिल जुत प्रतिसेवना।
निर्ग्रन्थ कषाय कुशील दोउ, चौदै पूरव लेवना ॥
जघन्य वकुश कुशील निरग्रन्थ, आठ-प्रवचन मात्रिका।
आचार-वस्तु पुलाक जघन्य, केवली बिन सूत्रि का ॥८१॥
त्याग लेने कर्ण वसि हो कर, समझि फुनि त्यागज करैं।
प्रतिसेवना या ताँहि कर के, निर्ग्रन्थ स्नातक तरैं ॥
व्रत दोष लगत पुलाक मुनि कै, कृत करित अनुमोदना।
उपकर्ण तन की सूक्ष्मता का, वकुश में मन सोधना ॥८२॥
सब तीर्थंकर के समय माँहीं, होत पाँचूँ समकिती।
द्रवि-लिंगि माँहीं भाव-लिंगी, भविक तारक सब जती ॥
कोई पढ़ावे को पढ़त हैं, को खड़े को गमन में।
चिन्ह नाना जानि याँहीं विध, विविध आसन ध्यान में ॥८३॥
चारूँ जघन सौधर्म में फुनि, स्नातका शिव ही लहैं।
पुलाक वकुश अर सोरवैं लौं, वसु प्रतिसेवना गहैं ॥
निर्ग्रन्थ कषाय कुशील दोउ, अनुतरण लौं अवतरैं।
उत्पाद उत्तम जघन दो विध, श्री जिनेश्वर उच्चरैं ॥८४॥
शुभ तीन लीन पुलाक जानूँ, षट् वकुश प्रतिसेवना।
मुनि कुशील कषाय कैं जुत,-कापोत शुभ लेवना ॥
लेश्या शुकल निर्ग्रन्थ स्नातक, जोग ही तैं जिन कही।
संख्या अतीत सुथान लेश्या, कथन आगम में सही ॥८५॥
ह्वै हीन-अधिक कषाय थानक, सुनो जैसे होत है।
थोरे पुलाकी धरै तातैं, वकुश मुनि के भोत है ॥

यातैं अधिक प्रतिसेवना तैं, अति कषाय कुशील है ।
निर्ग्रन्थ अधिक विशुद्धता तैं, स्नातका की शील है ॥८६॥

दोहा

पुलाक वकुश कुशील दो, मुनी निर्ग्रन्थ स्नात ।
वन्दूँ राजत ते सदा, ढाइ-द्वीप विख्यात ॥८७॥
सब मुनि पाँचूँ भाँति के, तीन घाटि नौ कोर ।
उत्कृष्टे वन्दूँ सदा, द्वीप-अढाई ठोर ॥८८॥

॥ इति पुलाकादिक मुनि वर्णन ॥

प्रश्न, चौपई

उदै असाता होत तहाँ हि, क्षुधा परीषह सहित जहाँ हि ।
यातैं त्रयोदशम गुण सो हि, अनाहार-आहारहि दो हि ॥८९॥
वहाँ क्षुधा आदि नहीं कोय, दोष सहित प्रभू कैसे होय ?।
तापैं तैं सन्देह बनाय, सुनि उत्तर ज्यों आगम गाय ॥९०॥

उत्तर, चौपई

गया मोह नहि राग विराग, रहा नाँहि तन तैं अनुराग ।
विषय भोग है इन्द्री कारण, इन्द्री रहित इहाँ सुख धारण ॥९१॥
नाँहि प्रयोजन इन्द्री ज्ञान, प्रगट्या आतम केवल भान ।
भया घातिया कर्म विनाश, रह्या अघातन का आभास ॥९२॥
तरु निर्मूल निरर्थक यथा, वली-जेवडी भासै तथा ।
अनँत चतुष्टय महिमा धार, तहाँ परीषह कौन विचार ॥९३॥
यों उपचार परीषह कहीं, कारज कारी है कुछ नहीं ।
अर अहार का यामैं होय, सो अब वर्णन सुनिये लोय ॥९४॥
कर्म वर्गणा ग्रहण अहार, नाँहि गहै तब है न अहार ।
ये उथापि जे कवला मान, ते अकाश के फूल बखान ॥९५॥

गाथा

णो कम्मह तित्थयरे, कम्म णारेयि मानसो अमरो ।
णर-पसु कवलाहारो, पक्षी उड्डीनि ओजेऊ ॥९६॥

भाषा-चौपई

नर पशु केवल इकेन्द्रि लेव, कर्म-नारकी मनसा-देव ।
संजोगी नोकर्म-अहार, पक्षी औजाहार विचार ॥९७॥
अशन ग्रास को कवला जान, धातु बिन्दु कौ ओज बखान ।
जलसींचन विधि लेव अहार, कर्म वर्गना है नो-हार ॥९८॥

प्रश्न, दोहा

अनाहार-आहार विधि, कही करी सरधान।
धुनि विहार आसन क्रिया, कैसे होत सुजान? ॥९९॥

उत्तर, दोहा

काय वचन मन की क्रिया, ताको कहिये जोग।
सो श्रेणी दोऊन में, बिन इच्छा तैं थोग ॥१००॥

सोरठा

जोग क्रिया सद्भाव, होत औदयिक भाव तैं।
गलित मोह परभाव, बिना जगत ह्वै मेघ ज्यों ॥१०१॥
ज्यों दिवि-ध्वनि त्यों गाज, ज्यों उठना त्यों बरषना।
आसन सुथिर समाज, ज्यों विहार त्यों धावना ॥१०२॥
उदय काल जब होय, क्षेत्र परिस भवि बोध का।
तबै जतन बिन होय, विहारादि दिवि ध्वनि क्रिया ॥१०३॥
मन किरिया उपचार, काय वचन किरिया प्रगट।
जैसे मायाचार, बिना जतन है तियन में ॥१०४॥

चौपई

आयुकर्म तैं तिथि अधिकाय, गोत्र नाम वेदनीय पाय।
सब तिनकी तिथि क्षय के काज, समुद्घात ह्वै सुनो इलाज ॥१०५॥

दोहा

अन्त तेरवाँ थान में, आतम के परदेश।
निकसि पैसि कैं थिर बनैं, समुद्घात को भेष ॥१०६॥

गाथा

दंड दुगो उरालं कवाड, जुयेले इतरस्स मिस्सन्तु।
पदरेय लोय पूरे, कम्मे वय होदि णायव्वो ॥१०७॥

दोहा

द्वै समया दण्डक तनैं, है औदारिक काय।
अनाहार आपर्ज नहि, परजै हार बताय ॥१०८॥
समया दोय कपाट के, मिश्रौदारिक जोग।
परज्यापत पूरण सहित, मिश्रवर्गणा भोग ॥१०९॥
परतर पूरण दोय के, समयाचार प्रमान।
अनाहार आपर्ज है, कारमाण पहिचान ॥११०॥
अनाहार-आहारता, या विधि तैं पहिचान।
और भाँति मानैं तिन्है, मिथ्यातम में जान ॥१११॥

॥ इति तेरहवाँ गुणस्थान ॥

अथ चतुर्दश गुणस्थान, दोहा

मन वच तन अस्तित्त्व में, किरिया करि है नाँहि ।
छबि पषाण की लौं अचल, गुण अजोगि के माँहि ॥१॥
चलना उठना बैठना, दिवि ध्वनि तैं उपदेश ।
संजोगी जिन करत त्यों, नहि अजोग में लेश ॥२॥
त्रयोदशम गुणथान में, गुण अजोग में कीन ।
चतुर-बीस थानक विषैं, भाषत हूँ जे हीन ॥३॥
नाँहि जोग लेश्या नहीं, ना अहार-अनहार ।
व्युपरत-क्रिया-निर्वृत्ती, शुक्ल ध्यान उपचार ॥४॥
षट्-परजे दश-प्राण नहि, नाँहि आश्रवा कोय ।
नाम न जुत मन बिन नहीं, गुण अजोग ही होय ॥५॥
शेष सजोगी सम सबै, जानि चौदवाँ माँहि ।
कर्म प्रकृति का कथन में, बन्ध उदीरण नाँहि ॥६॥

उदै, दोहा

आयु-गती मानुष तनी, पञ्चेन्द्री त्रस काय ।
परज्यापत बादर शुभग, तीर्थंकर परजाय ॥७॥
ऊँच गोत्र इक वेदनी, यश-कीरति आदेय ।
ये द्वादश प्रकृती उदै, अन्ति नाश करि देय ॥८॥

चौपई

सत्ता प्रकृति पिचासी होय, दोय वेदनी गोतर दोय ।
मानुष आयु नाम की असी, तिनका कथन कहत मति लसी ॥९॥
वर्ण शरीर सुरस संघात, पाँच-पाँच जानों विख्यात ।
षट् संघन षट् ही संस्थान, थिर अरु अथिर अशुभ-शुभ आन ॥१०॥
आनुपूर्वी गती सुर दोय, दोय विहायोगति संयोग ।
सुस्वर-दुस्वर दुर्भग निर्मान, आठ-परस दुक-गन्ध सुजान ॥११॥
अनादेय अपयश अपघात, अगुरुलुघू फुनि है परघात ।
अनपर्यय उश्वास प्रत्येक, नीचा गोत्र वेदनी एक ॥१२॥
ये सब प्रकृति बहत्तरि जान, अन्ति समै पहलै में हान ।
रही तेरहें दूजै समैं, ते विनाशि शिव रमणी रमैं ॥१३॥
उदय सम्बन्धि बारह वही, मनुष आयु जुत तेरह सही ।
समये चर्म चौदहें थान, करिये नाश शिवालय जान ॥१४॥

दोहा

चौदे राजू अन्त में, लोक शिखर थिर वास।
कृत्यकृत्य ह्वै सिध भये, नमूँ निरन्तर तास ।।१५।।

सोरठा

नित्य निरञ्जन नाथ, शुद्ध सिद्ध सर्वज्ञ शिव।
परमातम बिन साथ, अक्षय अतुल अनन्त सुख ।।१६।।

।। इति चौदहवाँ गुणस्थान ।।

सोरठा

नाना जिय सापेक्ष, गुणस्थान वर्णन किया।
पर्ज-अपर्ज विशेष, नहि कह्या जे कहत हूँ ।।१।।

चौपई

क्षीण-कषाय मिश्र संयोग, अर क्षायक श्रेणी का थोग।
येते में जिय प्राण न हरै, पूरण आयु आन में करै ।।२।।
मिथ्याती गति चारूँ लहै, सासादन जुत नर्क न गहै।
समकित सहित देव शुभथाय, गुण अयोग तैं मुक्ति हि जाय ।।३।।
प्रथम दुतिय चौथे जिय जान, जन्म अपेक्षि अपर्येवान।
षष्टम माँहि अहारक होय, तहाँ अपर्जे जानूँ सोय ।।४।।
समुद्घात तेरवाँ अन्त, होत अपर्ज शिव न का कन्त।
और माँहि परज्यापत सही, पर्ज-अपर्ज चौदवाँ नही ।।५।।

प्रश्न, दोहा

नवमाँ दशमाँ थान यों, किम श्रेणी में पाय।
संयम छेद-उथापना, लेश्या खेद कषाय ।।६।।

उत्तर, दोहा

नाँहि विवख्यति ना प्रगट, ऐसे रहत सुभाय।
अपने जानै जोग नहि, केवल में दर्शाय ।।७।।

गुणस्थान का अनुक्रम, दोहा

धारै अनिवृतकर्ण तब, त्यागै आदि मिथ्यात।
करि विशुद्धता भाव की, चतुरथ गुण को पात ।।८।।
द्रव्यलिंग जुत मुनि गृही, अनिव्रत-कर्ण जु धार।
सप्तम पञ्चम गुण गहै, मिथ्या भाव निवार ।।९।।

प्रश्न, दोहा

पहला तैं दूजा गहै, दूजा तीजा आत।
तीजा तैं चौथा लहै, क्यों न अनुक्रम पात ॥१०॥

उत्तर, दोहा

दूजा तीजा अति शिथिल, नहि ठहरै गिर जाय।
तातैं प्रथम मिथ्यात तजि, चौथे में चढ़ि जाय ॥११॥

प्रश्न, दोहा

कैसे अनादि मिथ्यात में, ऐसी शक्ति गहान।
दूजा तीजा लंघि के, चौथा पहले आन ॥१२॥

उत्तर, दोहा

मोह विपर्यय भ्रम दुरै, शुद्ध भक्ति हिय आन।
करि आलम्वन जिन वचन, पहुँचे अविरत थान ॥१३॥
जहाँ विशुद्धता भाव थिर, ते ऊँचे चढ़ि जाय।
उपशम मिट मिथ्या उदै, जैती चौ गुण पाय ॥१४॥
बन्ध अनागत आयु बिन, धारै समकित कोय।
सो भुवन-त्रिक देव बिन, देव स्वर्ग का होय ॥१५॥
चार आयु में बन्ध को, फुनि समकित ले सोय।
हीन भूमि षट् नर्क सुर, भुवन-त्रिक बिन होय ॥१६॥
महाव्रती फुनि अणुव्रती, मरे स्वर्ग ही जाय।
नर नारक तिर्यञ्च की, गति तीनूँ नहि पाय ॥१७॥
आयु बन्ध जिन कर लियो, नर नारक तिर्यञ्च।
ते अणुव्रत म्हाव्रत विषै, करे भाव नहि रञ्च ॥१८॥
पञ्चेन्द्री परयापता, पहले उपशम पाय।
सप्तम लौं चौथा थकी, महुरत एक बताय ॥१९॥
फुनि दूजे उपशम धरैं, कै मिथ्या गुण पाय।
कै क्षय उपशम आदरैं, कै क्षायक ह्वै जाय ॥२०॥
दूजा उपशम आ तबै, धरि ग्यारह जो लाय।
जहाँ मरण हो जाय तब, गहै चतुर्थे आय ॥२१॥
तीजा उपशम ना धरै, लै मिथ्यात उपाय।
कै खिपाय क्षायक गहै, कै वेदकता पाय ॥२२॥
उपशम श्रेणी के विषैं, जो जी मरण न पाय।
सो अनुक्रम एकैक तज, परै प्रमत में आय ॥२३॥
उपजत स्वर्गा के विषैं, उपशम सहित सुजीव।
तहाँ अपर्जे औसता, पण्डितजन लख लीव ॥२४॥

वेदक निज थिति भोगि कै, धारैं ऐसे भाव ।
कै उपशम कै क्षायकी, कै मिथ्यात उपाव ॥२५॥
निश्चय क्षायक भाव की, महिमा कही महान ।
जानैं इन्द्र-नरिन्द्र की, पदवी तुच्छ समान ॥२६॥

चौपई

मिथ्याती दूजा नहि धरै, सादि मिथ्यात मिश्र को करै ।
मिश्र थकी सासादन नाँहि, सासादन तैं मिश्र न पाँहि ॥२७॥
सासादनि मिथ्यात हि गहै, और गुणनि को नाँहीं लहै ।
या विधि चरचा कछु यक कही, गोमटसार माँहि अति सही ॥२८॥

॥ इति सत् प्ररूपणा वर्णन ॥

अथ संख्या प्ररूपणा वर्णन, सोरठा

कहि चौदा गुणथान, सत् विधान पूरण किया ।
अब संख्या परमान, भाषत गोमटसार सुनि ॥१॥

चौपई

सर्व हि जीवराशि के माँहि, सिद्ध राशि परमाण घटाँहि ।
शेष रहे संसारी जान, ताका नन्तानन्त प्रमान ॥२॥

सोरठा

अभवि अनन्त प्रमान, तातैं भविक अनन्तगुण ।
जे भवि अभवि समान, अनँत गुणैं भवि निकट में ॥३॥

चौपई

असंख्यात लोका सम गाय, जथा जोगि अधिके अधिकाय ।
तेज भूमि जल पवन मँझार, वनस्पती का सुनों विचार ॥४॥
असंख्यात लोका सम जोय, अप्रतिष्ठ प्रत्येका सोय ।
लोक असंख्याता तिह गुनै, तबै प्रतिष्ठ प्रत्येका बनै ॥५॥
साधारण जिय नन्तानन्त, तीन काल कबहूँ नहि अन्त ।
असंख्यातवाँ भाग हि जान, अपने-अपने बादर मान ॥६॥
बहु भागन सम सूक्षम जीव, या विधि थावर पाँच सदीव ।
अलप अपर्जे सूक्षम माँहि, परियापत सूक्ष्म बहु माँहि ॥७॥
बादर जीव अपरजे घनै, परजापत थोरे से भनै ।
तरस राश की संख्या सुनो, श्री जिन-भाषी सो ही भनो ॥८॥

सोरठा

असंख्यात का भाग, प्रतरांगुल को दीजिये ।
जा प्रमाण का भाग, जगत प्रतर को कीजिये ॥९॥

सो त्रस राशि प्रमाण, तामैं भी विकलत्रया ।
हीन अधिक पहिचान, असंख्यात श्रेणी समा ॥१०॥
राजू सात प्रदेश, मुक्ता-फल की माल ज्यों ।
गिनिये तिनको भेव, तब श्रेणी संख्या बनै ॥११॥

चौपाई छन्द (१६-१६ मात्रायें)

त्रस राशी की संख्या माँहीं, असंख्यातवाँ भाग बिना हीं ।
रहे शेष बढ़ चार करीजै, वे ते चौ पँचेन्द्रि को दीजै ॥१२॥
बाकी बाढ़ा एक बचाया, असंख्यात बढ़ ताँहि बनाया ।
तामैं बाढ़ा एक गहीजै, बहुरि भाग वे इन्द्रिय दीजै ॥१३॥
गह्या एक बाढ़ा जो कोए, असंख्यात बढ़ ताकी होए ।
एक भाग माँहीं रख लीजै, रहै सबै ते इन्द्री कीजै ॥१४॥
संख्या बाढ़ा एक जवा हीं, असंख्यात बढ़ कीजो ताँहीं ।
यामैं एक पञ्चेन्द्री तना, बढ़ चौ इन्द्री के बहुघना ॥१५॥
वेन्द्री तें पञ्चेन्द्री ताई, हीन-अधिक यों संख्या गाई ।
तामैं पञ्चेन्द्री औधारों, संख्या वर्ण तहुँ गती चारों ॥१६॥

अथ नरक गति संख्या, चौपई

दुतिय वर्ग घन-अङ्गुल मूर, तामैं गुण तैं श्रेणी पूर ।
ताँहि प्रमाण नारकी जीव, सात नर्क में रहत सदीव ॥१८॥
वर्गमूल श्रेणी का लेय, सो श्रेणी को भागा देय ।
वर्गमूल का अनुक्रम जेह, नर्क-नर्क प्रति भाषूँ तेह ॥१९॥
द्वादश वर्ग भाग हि दूजै, दशम वर्ग भाव तैं तीजै ।
चौथा वर्ग आठवाँ भाग, षष्टम वर्ग पाँचुई जाग ॥२०॥
तृतीय वर्ग छठीं भू जान, दूजा वर्ग सातवें थान ।
दूजा तैं सप्तम लौं ताई, नारकीन की संख्या गाई ॥२१॥
सो हि संख्या माँहि घटावै, बाकि रहे प्रथम में पावै ।
वर्ग-वर्ग का काढ़ै मूल, दूजा वर्ग भाषि अनुकूल ॥२२॥
फुनि-फुनि वर्ग निकारि जेते, पाय संख्या बढ़ती तेते ।
ताका भाग दिये जो रही, जा प्रमाण संख्या सो कही ॥२३॥
जो जन कोष घनँगुल सेती, इन आदि भाषै जहँ गिनती ।
तहाँ-तहाँ समझो मतिवान, परदेशन की संख्या जान ॥२४॥

अथ पञ्चेन्द्री तिर्यञ्च संख्या, दोहा

जलचर थलचर नभचरा, पञ्चेन्द्री तिर्यञ्च ।
असंख्यात श्रेणी सहित, जानूँ बिन परपञ्च ॥२५॥

अथ मानुष गति संख्या, दोहा

मनुज अढ़ाई-द्वीप में, उत्कृष्टे उपजाय।
होत अंक उनतीस लौं, परज्यापत समुदाय ॥२६॥

चौपई

मनुष अढाई-द्वीप प्रमान, वरणूँ संख्या वरण विधान।
कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़, प्रथम अंक साता कौं जोड़ ॥२७॥

सोरठा

लाख वाणवै आन, अष्टा-बीस हजार फुनि।
इक-सौ वासठि जान, कोड़ाकोड़ी कोड़ है ॥२८॥
लाख इक्यावन शीश, बियालीस हजार धरि।
षट्-सौ ते-चालीस, कोड़ाकोड़ी अंक ये ॥२९॥
बहुरि लाख सैंतीस, उनसठ सहस धरीजिये।
त्रिन-सौ चौवन शीश, संज्ञा कोड़ि सु दीजिये ॥३०॥
गिन लख उनतालीस, सहस पचास मिलाय पुनि।
अर त्रिन-सौ छत्तीस, मनुष अढाई-द्वीप में ॥३१॥

दोहा

सात अरु नौ दो-दो वसु, इकषट् दो अरु पाँच।
एक चार दो षट् हि चतु, त्रिक-त्रिक सातरु पाँच ॥३२॥
नौ त्रिक पाँच जु चारि त्रिक, नौ पाँच जु अरु शुन्य।
त्रिक -त्रिक षट् जु मिलाय कै, मनु संख्या परिपुन्य ॥३३॥

चौपई

जो मानुष संख्या परमान, नारि तीन बढ़ तामैं आन।
एक भाग के पुरुष सुजान, भाषे ढाई-द्वीप प्रमान ॥३४॥

अथ देव गति संख्या, दोहा

गिन पचास लख कोड़ जुत, द्वादश कोड़ाकोड़ि।
येती-पल के रोम सब, अमरा संख्या जोड़ि ॥३५॥

चौपई

वर्ग तीन-सै योजन तना, ले परदेशा संख्या गिना।
जगत प्रतर को ताका भाग, सो व्यन्तर संख्या की जाग ॥३६॥
अँगुल दो-सै छप्पन ताका, वर्ग प्रदेश लिजिये जाका।
जगत प्रतर को भागा देय, ता प्रमाण ज्योतिष गिन लेय ॥३७॥
वर्ग मूल प्रथम घन-अंगुर, जग श्रेणि तैं गिनैं जु मुनिवर।
ता प्रमाण संख्या गिन लेव, भवनवासि के येते देव ॥३८॥

तृतीय वर्ग घन-अँगुल मूल, तासैं गुनि जग-श्रेणी तूल।
ता प्रमाण संख्या भनि लेव, सौधर्मरु-ईशानी देव ।।३९।।
सनतकुमार-माहेन्द्र दोय, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर द्वै सुर लोय।
स्वर्ग लान्तवै-कापिष्ठार, बहुरि शुक्र-म्हा शुक्र विचार ।।४०।।
अर शतार-सहसार सुजान, सुनि इन पाँचूँ युगल प्रमान।
एकादश नव साता आन, पाँच चार अनुक्रम तैं जान ।।४१।।
वर्गमूल श्रेणी ये लेय, भाग हि अनुक्रम श्रेणी देय।
अपना-अपना होय प्रमान, जिनवर भाषित करि सरधान ।।४२।।
आनत-प्राणत कल्प निवास, आरण-अच्युत स्वर्ग निवास।
अधो-मध्य-ऊपर की सार, तीन-तीन ग्रीवक विस्तार ।।४३।।
नवम नवोत्तर नौ परकार, सवारथ बिन अनुत्तर चार।
एक-एक प्रति येती जाग, असंख्यातवाँ पल्य विभाग ।।४४।।
द्रव्य स्त्री का जो हि परमान, तातैं सात गुणा पहिचान।
दुतिय आचार्य तिगुना कहै, सर्वारथ सुर येते रहै ।।४५।।

सोरठा

यहै समुच्चय जान, जिय प्रमाण वर्णन किया।
पृथक-पृथक गुणथान, संख्या अब वर्णन करूँ ।।४६।।

चौपई

गुण मिथ्यात चार गति जन्त, जिनवर भाषैं नन्तानन्त।
दूजा तीजा चौथा तना, तीनूँ गति में मानुष बिना ।।४७।।
असंख्यातवाँ पल्य विभाग, अब वरणों मानुष की जाग।
बावन कोड़ि दुतिय गुणधार, मिश्रा करो एक-सौ चार ।।४८।।
सत-सै कोड़ अविरती थान, तेरह कोड़ देशव्रत मान।
पाँच कोड़ तिरानवै लाख, सहस छ्यानवै दो-सै भाख ।।४९।।
फुनि षट् परमत गुण के धार, मुनिवर मानुष भव अवतार।
षष्टम तैं आधै मुनिराय, जानि अपरमत सप्तम ध्याय ।।५०।।
अष्टम अपूर्वकर्ण सुजान, नवमाँ अनिव्रत-कर्ण प्रमान।
दशमाँ है सूक्ष्म-साम्पराय, एकादश उपशान्त कषाय ।।५१।।
पृथक-पृथक उपशम गुणदाय, एक घाटि तिन में मुनिराय।
एकादश बिन चारों थान, अष्टम तैं द्वादश लौं जान ।।५२।।
क्षायक श्रेणी सहित सुभाय, उपशम तैं दूनै मुनिराय।
उपशम श्रेणी चारों थान, ग्यारै-सै छिनवे जिय जान ।।५३।।

प्रज्ञाश्रमण मुनि

दोहा

आठ लाख अठ्यानवैं, सहस पाँच-सै दोय ।
वन्दूँ केवल सहित जिन, संजोगी गुण जोय ।।५४।।
जिन अजोग गुणथान में, छह-सै में द्वै घाट ।
सो जग जाल जगाय के, करै मुक्ति में ठाट ।।५५।।
षष्टम तैं चौदा तलक, तीन घाटि नौ कोड़ ।
मुनि संख्या जिनवर कही, मैं वन्दूँ कर जोड़ ।।५६।।

।। इति संख्या प्ररूपणा ।।

अथ क्षेत्र प्ररूपणा, दोहा

जिय की क्षेत्र परूपना, वरणूँ आगम देख ।
नाना जीव अपेक्ष फुनि, एक जीव सापेक्ष ।।१।।
पहले नाना जीव प्रति, वरणूँ क्षेत्र निवास ।
थावर पाँचूँ काय कौ, सर्व लोक में वास ।।२।।
त्रस-नाड़ी में तरस जो, चौड़ी राजू मान ।
दीरघ राजू चौदवैं, ता बाहिर नहि जान ।।३।।
ता माँहीं विकलत्रया, मध्य लोक के माँहि ।
द्वीप-अढाई के विषैं, भोग-भूमि बिन पाँहि ।।४।।
अर्द्ध स्वयम्भू-द्वीप पर, समद-स्वयम्भू थान ।
लवणो-कालोदधि विषैं, विकलेन्द्री की खान ।।५।।
और द्वीप-सागर सबै, बहुरि नर्क सुरधाम ।
विकलत्रिक नहि पाइये, पञ्चेन्द्री विश्राम ।।६।।
पञ्चेन्द्री तिरजग सहित, असंख्यात है द्वीप ।
और द्वीप दधि मनुष नहि, मनुष अढाई-द्वीप ।।७।।
अधो ऊर्ध्व बिन मध्य में, तिरजग का विश्राम ।
तातैं तिरजग लोक का, सारथीक है नाम ।।८।।
द्वीप-अढाई के विषैं, मानुषोत्र की वार ।
ता माँहीं मानुष रहैं, बाहर ना सञ्चार ।।९।।

चौपई

पंक भाग लौं योजन लाख, मध्य लोक में नीचे भाख ।
ऊपरि सात राजु में हीन, एक-बीस योजन परवीन ।।१०।।
सबै देव का येता थान, ता माँहीं जो भिन्न प्रमान ।
ताका वर्णत हूँ विस्तार, ग्रन्थ पुरातन माँहि निकार ।।११।।
तरै मेरु के योजन लाख, ऊपर मध्य लोक सम भाख ।
भवनवासि सुर व्यन्तर देव, दोय जात का क्षेत्तर येव ।।१२।।

योजन सत-सौ नवै प्रमान, मध्य भूमि तैं ऊँचा जान।
ताहुँ पै इक-सौ दश योजन, देव ज्योतिषि वास प्रयोजन ॥१३॥
मेरु ऊपरै राजू सात, षट् योजन इक-बिस विख्यात।
ऊपर-ऊपर देव विमान, कल्पवासि अहमिन्द्र स्थान ॥१४॥

दोहा

सर्वार्थसिद्धि के परै, द्वादश योजन माँहि।
ईषत् परमा भूमि है, दल वसु योजन जाँहि ॥१५॥
तापै वसु योजन तनी, शिला छत्र आकार।
चार कोस कछु हीन गति, तापै बहै वयारि ॥१६॥

॥ तिर्यक्-ऊर्ध्वलोक क्षेत्र प्ररूपणा ॥

अथ अधोलोक क्षेत्र प्ररूपणा, दोहा

एक भाग पर भाग दल, लख योजन विस्तार।
बहुरि नीचला वातवल, योजन साठ हजार ॥१७॥
इन बिन राजू सात शिर, इतरोत्तर भू सात।
तिनि हूँ में सातों नरक, अनुक्रम तैं विख्यात ॥१८॥

एक-एक जीव प्रति जेता क्षेत्र रुके,

ताका वर्णन, दोहा

जातैं जेता तन थकी, जेता रुके अकाश।
तेता इक-इक जीव प्रति, क्षेत्र करूँ परकाश ॥१९॥

चौपई

लब्ध-अपर्यें जीव सुजान, सूक्षम एक निगोद्या जान।
अंश घनांगुल का पहिचान, असंख्यातवाँ भाग प्रमान ॥२०॥

कुण्डलिया

अन्त स्वयम्भू द्वीप में, गिरि नागेन्द्र सुजान।
ताको परला भाग में, कर्म-भूमि का थान ॥
कर्म-भूमि का थान, कमल देवन मन मोहैं।
चौड़े योजन सहस एक, दीरघ अति सोहैं ॥
एकेन्द्री की राशि में, या समान नहि जन्त।
भाख्या श्री जिनदेव ने, जिन कीनो भव अन्त ॥२१॥

दोहा

शंख स्वयम्भू-दधि विषैं, आनन योजन चार।
लम्बा योजन चार है, पाँच कोस विस्तार ॥२२॥

चौपई

चौड़ा धनुष सात-सै साठ, पवन चार-सौ धनुष निवाठ।
कोस तीन लम्बाई जान, अन्तद्वीप बीछू परमान ॥२३॥
अलि योजन दीरघ इक जान, कोस तीन ऊँचा परमान।
दोय कोस चौड़ाई जोय, अन्त स्वयम्भू थानक होय ॥२४॥
लम्बा योजन एक हजार, सहस्त्रार्द्ध चौड़ा विस्तार।
ढाई-सौ योजन पुष्कार, अन्त समुद में मत्स्याकार ॥२५॥

मानुष शरीर क्षेत्र, दोहा

प्रथम काल में आदि तन, तीन कोस लम्बाय।
दुतिय काल में कोस दो, तृतीय कोस इक गाय ॥२६॥
आदि चतुर्था काल में, धनुष पाँच-सै पाय।
प्रथम पाँच में सात कर, छटें एक कर बाय ॥२७॥

दोहा

चार वार संख्या तनैं, देय घनांगुल भाग।
ता समान घन अनुधरी, अल्प वे इन्द्रि जाय ॥२८॥
जानें असुर कुमार तन, धनुष पचिस लम्बाय।
ऊँची व्यन्तर सबन की, धनुष काय दश हाय ॥२९॥

अल्प अवगाहना, चौपई

वेन्द्री अल्प अनुधरी जोय, जन्तु कुन्थ वा तेन्द्री होय।
कान-माक्षि चौ इन्द्री जान, तन्दुल मत्स पञ्चेन्द्रि आन ॥३०॥

दोहा

घन-अँगुल को तीन वर, दे संख्या का भाग।
सो प्रमाण घन कुन्थवा, भाषा मुनि वैराग ॥३१॥

सोरठा

असंख्यात द्वै वार, घन-अँगुल को भाग दे।
ता प्रमाण घनधार, तन्दुल-मत्सरु मक्षिका ॥३२॥

नारकी काय, दोहा

सात धनुष अरु तीन कर, अंगुर षष्ट उचाय।
प्रथम नरक में नारकी, पावै ऐती काय ॥३३॥
आदि नर्क तैं काय की, दुगुन-दुगुन ले बाय।
ये ही अनुक्रम सात में, धनुष पाँच-सै थाय ॥३४॥

देवनि का शरीर क्षेत्र, दोहा

बिना असुर नौ भवन सुर, होत धनुष दश काय।
जानूँ असुरकुमार तनु, धनुष पचिस लम्बाय ।।३५।।
ऊँची व्यन्तर सबनि की, काय धनुष दश होय।
सात धनुष लम्बाय तन, देव ज्योतिषी जोय ।।३६।।
सौधर्मरु ईशान में, सात हाथ की काय।
सनत्कुमार-महेन्द्र सुर, षट् कर तन लम्बाय ।।३७।।
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग फुनि, लान्तव-कापिष्ठार।
युगल दोय का देव तन, पञ्च हाथ विस्तार ।।३८।।

चौपई

आन थकी अच्युत लौं जान, हाथ तीन ऊँचा तन मान।
आदि ग्रीव तन हाथ अढ़ाय, अन्तग्रीव कर डेढ़ उचाय ।।३९।।
नौ अनुदिश अनुतर पञ्चान, एक हाथ तन ऊँच प्रमान।
सहज अवस्था येती धरै, हीन-अधिक कारण तैं करै ।।४०।।

दोहा

प्रथम चार गति जीव का, कह्या क्षेत्र सामान।
बहुरि कहूँ गुणथान प्रति, सो भवि सुनूँ सयान ।।४१।।
क्षेत्र मिथ्याति जीव का, सर्व लोक पहिचान।
अविरत सासादन मिसर, त्रसनाली में थान ।।४२।।
पञ्चम थकी अजोग लौं, सुनी क्षेत्र आधार।
असंख्यात दधि-द्वीप में, ढाई-द्वीप मँझार ।।४३।।
ताहूँ में बिन भोग-भू, कर्म-भूमि ही जान।
तामैं खण्ड-मलेच्छ बिन, आरज-खण्ड सुथान ।।४४।।
बहुरि होय भव शुक्ल में, फुनि भेंटे गुरु पाँय।
ये तो वानक बनत जब, जिनमत व्रत उपजाय ।।४५।।
पूरव पच्छिम मेरु के, षोडश-षोडश देश।
रहे काल चौथा सदा, जहँ-तहँ मुनि उपदेश ।।४६।।
दक्षिण-उत्तर मेरु के, भरतैरावत दोय।
अवसर्पिणि उत्सर्पिणी, काल फिरन जिह जोय ।।४७।।

सोरठा

एक मेरु प्रति जान, चार-तीस इकठी करैं।
इक-सौ सत्तर थान, द्वीप-अढाई कर्म-भू ।।४८।।

जानि कर्म-भू एक, होत खण्ड-षट् भूमि में।
तिन में आरज एक, और मलेछी धर्म बिनु ।।४९।।

चौपई

अर्द्ध-स्वयम्भू बाहर ठान, गिरि नागेन्द्र परै है थान।
चार कूट के कोनें चार, बहुरि स्वयम्भू-समुद्रि वार ।।५०।।
इन हूँ विषैं कर्म-भू जोय, त्रस-थावर तिरजग ही होय।
बाकी रहै द्वीप सब माँहि, जघन भोग-भू रचना पाँहि ।।५१।।

।। इति क्षेत्र प्ररूपणा ।।

अथ सपरस प्ररूपणा, सोरठा

सपरस चार प्रकार, मारणान्त उत्पाद अर।
क्षेत्र स्व-पर-वीहार, जाका अब वर्णन सुनों ।।१।।

लक्षण, दोहा

स्व-विहार सपरस जहाँ, तहाँ अटक पर नाँहि।
जा क्षेत्रनि में उपजवौ, ताकी सीमा माँहि ।।२।।
पर-विहार पर-भूमि में, सुर विक्रिय तैं जाँहि।
कै विद्याधर कै अमर, मित्र-शत्रु ले जाँहि ।।३।।
मूल देह त्यागे बिना, निज उपदेश चलाय।
मारणान्त सपरस करे, जा थल बाँधी आय ।।४।।
पूरव तन कूँ त्यागि कैं, नूतन गहै शरीर।
सो सपरस उत्पाद का, भाषै पण्डित धीर ।।५।।

नरक गति का सपरस, दोहा

सपरस स्व-पर विहार का, नारकीन कै जान।
अपने-अपने बिलनि तैं, ना बाहर पहिचान ।।६।।
मारणान्त उत्पाद करि, सबै नरक के जीव।
मध्य लोक की कर्म-भू, सपरस करै सदीव ।।७।।

तिरजग गति का सपरस, चौपई

सर्व भोग-भू तिरजग जान, स्व-पर विहार आपने थान।
मारणान्त उत्पाद बताय, उतम देव गति स्वर्गनि थाय ।।८।।
थावर तरस कर्म-भू जीव, मारणान्त उत्पाद सदीव।
तीन लोक सपरस विस्तार, स्व-पर आपने योग विहार ।।९।।

मानुष गति का सपरस, दोहा

आन अढाई-द्वीप में, मानुष स्व-पर विहार।
मारणान्त उत्पाद में, सब ही लोक मँझार ।।१०।।

देव गति का सपरस, दोहा

स्वर्ग सबै भवनत्रिकै, स्व-विहार इम जान ।
ऊपर अपने क्षेत्र को, तरैं नर्क त्रय थान ॥११॥
कल्पवासि भवनत्रिया, पर-विहारनैं जाय ।
ऊपर सौले स्वर्ग लौं, तरैं नर्क त्रय ठाय ॥१२॥
अनुदिशि बहुरि पञ्चोत्तरि, नवग्रीवक लौं जान ।
पर-विहार सपरस नहीं, स्व-विहार निज थान ॥१३॥
ज्योतिष व्यन्तर भवन सुर, सऊधर्म ईशान ।
मारणान्त उत्पाद तैं, सर्व लोक पहिचान ॥१४॥
शेष कल्प अहमिन्द्र रत, मारणान्त उत्पाद ।
मध्य लोक के थान तैं, अधो-ऊर्द्ध नहि जाद ॥१५॥

भूधरदास जी का, छप्पय

परस चार-सै चाप, जीव चौंसठि-सै नासा ।
द्रग योजन उन्तीस, शतक चौवन क्रम भासा ॥
दुगुन असैनी लौं श्रवण, वसु सहस धनुष गनी ।
सैनि सपरस विषैं कह्यो, नौ योजन श्री मुनी ॥
नौ रसना नौ घ्राण द्रग, सैंतालीस हजार फुनि ।
दो-सौ त्रेसठ श्रवण, विषैं क्षेत्र परमान भनि ॥१६॥

प्रज्ञाश्रमण मुनि

अथ गुणस्थान प्रकार, दोहा

सपरस को सामानपन, वरन्या गत अनुसार ।
सो ही फुनि वर्णन करूँ, गुणस्थान परकार ॥१७॥
सपरस सबै प्रकार का, मिथ्याती गुणथान ।
भाष्या सगरे लोक में, जथा जोग परमान ॥१८॥

चौपई

मध्य-लोक तैं ऊपरि जाय, सात रजू अष्टम भू ताय ।
अधोभाग हूँ राजू सात, मरणान्त उत्पात विख्यात ॥१९॥
ना उपजै सासादन जाय, सूक्षम बादर वन्ही-वाय ।
वनस्पती पृथ्वी अप माँहि, कै बादर सूक्षम कै नाँहि ॥२०॥
तृतीय नर्क लौं नीचे जान, ऊपर अच्युत स्वर्ग पहिचान ।
पर-विहार सासादन यतो, स्व-विहार अनि क्षेत्रनि तितो ॥२१॥
जान मिश्र अविरत गुणथान, स्व-विहार परस निज ठान ।
पर-विहार अच्युत लौं होय, नीचा नर्क तीसरा जोय ॥२२॥

बिना मिश्र चौथे में जान, मारणान्त उत्पाद विधान ।
ऊपर अच्युत स्वर्ग लौं जान, तलैं नर्क पहले लौं ठान ॥२३॥

दोहा

पञ्चम तैं द्वादशम लौं, भाख्या स्व-पर विहार ।
अपने ढाई-द्वीप तैं, बाहर ताँहि निकार ॥२४॥
अणुव्रत सौले स्वर्ग लौं, मारणान्त उत्पाद ।
मुनि ग्यारैं गुणथान लौं, सर्वारथना जाद ॥२५॥
द्वादश क्षीण कषाय अरु, संजोगी गुणथान ।
मारणान्त उत्पाद नहि, स्व-विहार रही जान ॥२६॥
समुद्घात करते रहो, परसैं लोकाकाश ।
गहि अजोग विहार तजी, करैं शिवालय वास ॥२७॥

॥ इति स्पर्श प्ररूपणा ॥

अथ काल प्ररूपणा, दोहा

काल कथन है दोय विधि, सो सामान्य विशेष ।
प्रथम कथन सामान्य का, वरणों आगम देख ॥१॥

चौपाई

एकेन्द्री पञ्चेन्द्री ताई, नाना जीव चतुर्गति माँई ।
सदा निरन्तर काल पिछानें, जिन भाख्या मिथ्याती थानें ॥२॥

दोहा

काल वनस्पति जीव का, नन्तानन्त बनाय ।
लोक असंख्याता तनी, भू अप वन्ही वाय ॥३॥
सब थावर विकलेन्द्रिया, एक जीव प्रतिकाल ।
जघन क्षुद्र भव गहन हैं, उत्तम कहूँ विशाल ॥४॥
पूरव छिनवै-कोड़ जुत, सागर दोय-हजार ।
जो उत्कृष्टा त्रस बनैं, तो येता निरधार ॥५॥
जो त्यागै त्रस राशि को, फँसै निगोद कुजाल ।
असंख्यात पुद्गल तनैं, परावर्त लौं काल ॥६॥
सूत्र दशों की वचनिका, कनक-कीर्ति की आन ।
थिति व्यौहारी तिरस की, लिखी तहाँ तैं जान ॥७॥
फुनि-फुनि जो विकलेन्द्रिया, उपजै बारम्बार ।
तो सागर एक-सहस लौं, बहुरि तजैं संसार ॥८॥

चौपई

एक कोटि पूरव धरि आय, एक जन्म पञ्चेन्द्री पाय ।
पुरुष नपुंसक नारी वेद, वसु-वसु गहै असैनी भेद ।।९।।
यही अनुक्रम तीनूँ वेद, सैनी जन्म धरो बिन खेद ।
मन जुत मन बिन का कर जोर, पूरव अड़तालीसा कोर ।।१०।।
अन्त-मुहूर्त मध्य के माँहि, आठ जन्म भव-क्षुद्र लहाँहि ।
बहुरि वही भव वेदन माँहि, बहै अनुक्रम जन्म लहाँहि ।।११।।
दूजी वेरहुँ का यह जोर, पूरव अड़तालीस हि कोर ।
फुनि-फुनि जन्म पञ्चेन्द्रि थान, तो या विधि येता परमान ।।१२।।

सोरठा

पूरव छिनवै कोर, सागर एक-हजार जो ।
देव नरक गति होय, फुनि थावर विकलेन्द्रिया ।।१३।।
शरण गहै शिव होय, अन्त माँहि जिनवर चरन ।
ते थावर चिर होय, जे अज्ञान विषया मगन ।।१४।।

चौपई

एक वेद ही धारे कोय, किते काल लौं पावै सोय ।
ताकी मर्यादा सुनि मन्त, वेद नपुंसक नन्तानन्त ।।१५।।

सोरठा

गिन पैंतालिस लाख, साठ सहस अरु आठ-सैं ।
ऐती पल-तिय भाष, येते ही सागर पुरुष ।।१६।।
एक जीव प्रतिमन्त, जघन काल गति चार में ।
अन्तर-मुहुरत अन्त, कहूँ मिथ्यात तन तजैं ।।१७।।

चौपई

मानुष गति में बारम्बार, गहै जन्म ताकी सुनि सार ।
पूरव सैंतालीस जु कोर, तीन पल्य ताऊँ में जोर ।।१८।।
पुरुष नपुंसक नारी तनैं, पँदरै सौले-सौले भनैं ।
कोड़ पूर्व सैंतालिस जात, येते जन्म चालिस हि जात ।।१९।।
उत्तम आठ-आठ भव गये, मध्य क्षुद्र भव वसु-वसु लये ।
फुनि वे ही उत्तम-भव धरै, पुरुष नपुंसक नारी धरै ।।२०।।
पल्य तीन उत्तम भू आय, अन्ति हि अन्ति ऊपजै जाय ।
तब पावै देवालय वास, गति अतिक्रम का तबै विनास ।।२१।।
दोऊ गति में विधि सामान, मानुष औं तिरजग गति जान ।
सुर नारक गति उत्तम पाय, तीन-तीस सागर की आय ।।२२।।

कषाय का उत्कृष्ट काल, चौपई

असंख्यात संख्यात अनन्त, अनन्तानुबन्धी बिलसन्त।
समकित की अवरोकनवान, जननी नरक निगोद बखान ॥१॥
है षट् मास अप्रत्याख्यान, देशविरत कूँ हाँनि महान।
प्रत्याख्यान दिन पँदरै जोय, याके मिटत महाव्रत होय ॥२॥
मुहुरत लौं संज्वलन कषाय, यथाख्यात चारित दुखदाय।
जब लौं ये उपशमन कषाय, तब लौं भ्रम भव-भव भटकाय ॥३॥

गुणस्थान प्रतिकाल, दोहा

वरणों अब विशेष विधी, जो गुणथान नसीव।
मिथ्यादृष्टी चार गति, नाना जीव सदीव ॥४॥
काल जघन मिथ्यात का, अन्तर मुहुरत मान।
बहुरि त्याग समकित गहै, चारों गति जिय जान ॥५॥

एक जीव प्रति जघन काल, चौपई

नन्तानन्त अभवि का काल, आदि अन्त तैं रहित विशाल।
अन्त सहित बिन आदि प्रमान, अनँत सात भवि पेक्षा जान ॥६॥
उपशम में ढिग है मिथ्यात, ताका उत्तम काल विख्यात।
पुद्गलअर्द्ध परावृत जान, अन्तर मुहुरत जघन प्रमान ॥७॥

सोरठा

बीस हि कोड़ाकोड़ि, सागर कल्प प्रमाण को।
समयानन्त गुनोरि, पुद्गलार्द्ध परिवर्त सो ॥८॥

चौपई

भनि दूजे तीजे गुणथान, नाना जिय प्रति उत्तम जान।
पल का असंख्यातवाँ भाग, जघन समै सासादन जाय ॥९॥

दोहा

सासादन इक जीव प्रति, जघन समै लौं काल।
उत्तम थिति षट् आवली, वरण्या बुद्धि विशाल ॥१०॥
समया लौं गुणथान का, क्यों वरणा कहि सोय।
अन्त समय के समै में, धारि मरैं त्यों होय ॥११॥
मिश्र रहित है जीव कैं, उपशम मुहुरत एक।
जघन मुहूरत जघनि लौं, वरन्या जिन हि विवेक ॥१२॥
अविरत अणू-महाव्रती, नामा जिय प्रति जान।
जघनोत्तम विधि दोय तैं, सबै काल पहिचान ॥१३॥

चौपई

दोय कोड़ पूरव कछु हीन, तीन-तीन सागर सुन लीन।
येता क्षायक चौथा थान, अन्तर-महुरत जघनि प्रमान ॥१४॥
वेदक छाछटि सागर जान, अर कनिष्ठ मुहुरत परमान।
जघनोत्तम उपशम थिति भान, अन्तर-मुहुरत अविरत थान ॥१५॥
पूरव कोट वर्ष कछु हीन, देशव्रती उत्तम थिति लीन।
जघनि काल जो धारै कोय, अन्तर-महुरत पावै सोय ॥१६॥
प्रमत्त अप्रमत्त दोउ जान, अर उपशम चारों गुणथान।
अन्तर-महुरत उत्तम काल, जघनि समै लौं अन्तर काल ॥१७॥
एक जीव फुनि नाना जान, जघनोत्तम दोऊ विध आन।
व्यापक श्रेणी चारों थान, अन्तर-महुरत काल प्रमान ॥१८॥
नाना जीव संजोग थान, सबै काल वन्दूँ धर ध्यान।
अन्तर-महुरत में भी कोय, त्याग संयोग अजोगी होय ॥१९॥
पञ्च मुष्टि शिर लौंचे केश, तत्क्षण उपजै केवल वेश।
भरत भये सब के परधान, ऐसे भाषे महा-पुरान ॥२०॥

सोरठा

कोटि पूर्व गहि आय, आठ वर्ष को तप गहै।
तब ही केवल पाय, इता काल वरतें रमै ॥२१॥

दोहा

नाना जिय अर एक का, जघनोत्तम परकार।
काल अजोगी थान का, पञ्च वर्ण उच्चार ॥२२॥

॥ इति काल प्ररूपणा ॥

अथ अन्तर प्ररूपणा, दोहा

जो इक थानक त्याग की, फिरि आवै वा थान।
बीतै विरिया बाहि-रत, सो अन्तर पहिचान ॥१॥
ताँहीं का वर्णन करूँ, गति गुणथान मँझार।
प्रथम हि वरणों गति विषैं, ले सामान्य प्रकार ॥२॥

चौपई

नरक माँहि को नारक मरै, वाका थानक कब लूँ भरै।
ताका वर्णन करूँ विचार, नाना जीवन के अनुसार ॥३॥
प्रथम नर्क महुर्त-चौबीस, सात द्योस दूजै में दीस।
तीजै माँहि पक्ष परमान, आगै दुगुन-दुगुन पहिचान ॥४॥

रात-द्योस सौधर्मैशान, तीजै चौथा पक्ष प्रमान ।
अष्टम लौं अन्तर इक मास, द्वादश तक द्वै मास हि जास ॥५॥
जान अच्युत लुँ महिमा चार, कल्पातित छह मास विचार ।
कछु इक-मुहुरत का परमान, भुवनत्रिक में अन्तर जान ॥६॥
देव चवै तब वाके थान, अन्तर एता होत सुजान ।
ता पीछे निज पुण्य प्रमान, और जीव उपजत हैं आन ॥७॥
नाना जीव चतुर्गति थान, अन्तर एता होत सुजान ।
एक जीव प्रति अन्तर मान, ताका आगे करूँ बखान ॥८॥
एकेन्द्री वे इन्द्री थान, जघनि क्षुद्रभव अन्तर जान ।
उत्तम अन्तर बहु परमान, वरणों ताका अबै निदान ॥९॥
भू अप तेज वयारि मँझार, अन्तर नन्तानन्त विचार ।
लोक असंख्याता सामान, वनस्पती का अन्तर जान ॥१०॥

दोहा

पूरव छिनवैं कोड़ जुत, सागर दोय हजार ।
उत्तम थावर काय सैं, अन्तर अता विचार ॥११॥

चौपई

नन्तानन्त वनस्पति काल, त्रस में अन्तर जान विशाल ।
त्रस तैं तरस जरूर हि भया, अन्तर-मुहुरत अन्तर गया ॥१२॥

दोहा

चारों जिय गति पाय कैं, रुलै अनँत संसार ।
यों अन्तर गति चारि में, अन्तर काल मँझार ॥१३॥

चौपई

अब वरणों गुणथान विचार, अन्तर काल विशेष प्रकार ।
चार्‍यों गती प्रथम गुणथान, अन्तर-मुहुरत अन्तर मान ॥१४॥
उत्तम जो मिथ्याती थान, है अन्तर सो सुनो बखान ।
वेदक छाछटि सागर भोग, परै मिश्र में भावा योग ॥१५॥
फुनि उपशम में रहै सभाग, असंख्यातवाँ पल्य विभाग ।
बहुरि भाग वेदक के गहै, छाछटि सागर दूजै रहै ॥१६॥
वेदक एता उत्तम रहै, फुनि मिथ्या के क्षायक गहै ।
यों सागर इक-सौ बत्तीस, मिथ्यागुण में अन्तर दीस ॥१७॥

नरक गति विषैं अन्तर, चौपई

एक तीन सात दस सतरा, दोय बीस तैंतिसौं अँतरा ।
सागर अन्तर वर मिथ्यात, सात नर्क में अन्तर पात ॥१८॥

उपजै अन्तर मुहुरत होय, तब चतुर्थगुण धारै कोय ।
अन्त समै फुनि गहि मिथ्यात, नर्क स्वर्ग या अन्तर जात ॥१९॥

मानुष-तिर्यञ्च गति विषैं अन्तर, दोहा

हूवा दिन उनचास का, भोगभूमि वर थान ।
अशुभ मिथ्यात नीवार, रहै हि चतुर्थे थान ॥२०॥
ऊपर शुभ में खोय के, अन्त धरै मिथ्यात ।
नर तिरजग गति दो विषैं, एता अन्तर पात ॥२१॥

देव गति विषैं अन्तर, दोहा

देव नवम-ग्रीवेक लौं, भवि मिथ्याती होय ।
तहँ सागर इकतीस थिति, ते तो अन्तर जोय ॥४४॥

दूजै गुणस्थान अन्तर, चौपई

नाना जिय सासादन थान, अन्तर समया जघनि प्रमान ।
पलि के असंख्यातवाँ भाग, उत्कृष्टा अन्तर की जाग ॥२३॥
एक जीव सासादन जाग, पलि के असंख्यातवें भाग ।
जान जघनि अब कहूँ विशाल, पुद्गल-अर्द्ध परावृत काल ॥२४॥

दोहा

मिश्रथान तीजा विषैं, नाना जीव सपेक्ष ।
जघनोत्तर अन्तर दुहूँ, सासादन तब देख ॥२५॥
नाना जिय उपशम बिना, जो कदाचि रहि जाय ।
ताकी विधि कूँ भाषिये, किते काल लौं ताय ॥२६॥

चौपई

सात रात-दिन अविरत थान, चौदे अहि-निश अणुव्रत मान ।
प्रमत अप्रमत पक्ष लौं नाँहि, वर अन्तर उपशम के माँहि ॥२७॥
उपशम कैं सब ही गुणथानि, नाना जीव अपेक्षा लानि ।
वरणत जघन तना परमान, एक समय का अन्तर जान ॥२८॥

दोहा

उपशम में उत्तम जघन, एक जीव सापेक्ष ।
अन्तर सब गुणथान का, अन्तर मुहुरत देख ॥२९॥
तीन ऊपरै नव तरैं, वर्ष-पृथक वीधान ।
अन्तर उपशम श्रेणि का, नाना जिय में आन ॥३०॥
मिश्ररु अविरत देशव्रत, प्रमत अप्रमत्त थान ।
अर उपशम श्रेणी विषैं, एक जीव प्रति जान ॥३१॥

परावर्त पुद्गल-अरध, अन्तर काल विशाल।
वरतै अन्तर जघन तो, अन्तर-मुहुरत काल ॥३२॥

चौपई

क्षायक वेदक समकित माँहि, नाना जिय प्रति अन्तर नाँहि।
एक जीव प्रति अन्तर होय, गुणथाना प्रावृत तैं जोय ॥३३॥
दोऊ समकित में गुणथान, अन्तर-मुहुरत अन्तर जान।
उत्तम अन्तर दोऊ माँहि, अब भाषत हो जा विधि पाँहि ॥३४॥
अविरत सुर चय अणुव्रत लीन, अन्तर कोड़ पूर्व कछु हीन।
वेदक धारक कै ह्वै इतो, अब सुनि वेदक छायक जितो ॥३५॥
देशव्रती सागर बाईस, सुर ह्वै जाय सौरवैं शीश।
म्हाव्रत प्रमत अप्रमत भिन्तर, तीन-तीस सागर का अँतर ॥३६॥
देव अव्रती ऐता रहै, चय मानुष ह्वै तब व्रत गहै।
अब क्षायक श्रेणी की बात, भाषत हूँ आनँद अवदात ॥३७॥

दोहा

क्षायक श्रेणी चारि गुण, अर अजोग गुणजास।
अन्तर नाना जीव प्रति, उत्कृष्टा षट् मास ॥३८॥

मोक्ष होवा में अन्तर, दोहा

जाय हीन द्वै ड्योडसौ, चौबीसी का काल।
ताको आगम में कह्या, हुण्डक नामा काल ॥३९॥
तेता ही हुण्डक गये, जब षट् महिने माँहि।
श्रेणी क्षपक अजोग जिन, पावै कोई नाँहि ॥४०॥
ताँहि निकट वसु-समय में, जीवा षट्-सौ आठ।
मोक्ष माँहि पहुँचे सही, यो आगम में पाठ ॥४१॥

चौपई

निकसै नित्य निगोद मँझार, आठ-समय षट्-मास लगार।
छह-सै आठ जीव परमाण, तेता ही पावै निर्वाण ॥४२॥

प्रश्न, सोरठा

ना गुरु का उपदेश, नाँहि धर्म धारन सकति।
नित्य निगोद तजि भेस, क्यों उपजै व्यौहार में ॥४३॥

उत्तर, चौपई

करै मन्द जिय जोग कषाय, बहुत काल लौं सहज सुभाय।
सो उपजै व्यौहारी राश, निति निगोद छिति करै निकाश ॥४४॥

सोरठा

ज्यों सरिता मधि लोढ़, सुतै गसै आकृत धरै ।
कबहूँ जल के जोर, उछलि जाय तीराँ-परै ॥४५॥
चनै भूँदनैं भार, बिना जतन ऊछल परै ।
त्यों हि निगोद मँझार, निकस आत व्यौहार में ॥४६॥

आठ समय में कौन विधि निसरैं, सोरठा

प्रथम समै बत्तीस, अठ-चालिस दूजै समै ।
साठ तीसरे शीश, बहतर चौथे समय में ॥४७॥
पञ्चम-चतुर अतीत, छठै समै छिनवै गये ।
सप्तम-अष्टम रीत, अष्ठोत्तर अष्टोत्तरा ॥४८॥

दोहा

विरै काल षट्-मास लौं, मोक्ष न जावै कोय ।
ते ही ऐसे जात हैं, आठ-समय शिव लोय ॥४९॥

चौपई

क्षायक श्रेणी चारों थान, पुनि संजोग अजोग विधान ।
तद्भव गामी धारै सोय, ताके अन्तर कैसे होय ॥५०॥

॥ इति अन्तर प्ररूपणा ॥

भाव प्ररूपणा, चौपई

क्षय-उपशम उपशम क्षय दाय, पारिणाम औदारिक भाय ।
दर्शन-मोह कर्म सापेक्ष, वरणत चार गुणन प्रति देख ॥१॥

दोहा

परावर्त्त मिथ्यात जुत, कर्म उदै अनुसार ।
निज स्वभाव भूले फिरैं, भाव औदयिक धार ॥२॥
नाँहि विवक्षति भाग गति, सासादन के माँहि ।
पारिणाम ही जाँनि जिह, और भाव को नाँहि ॥३॥
कछु वेदक कछु उपशमै, मिश्र-क्षयोपश भाव ।
तीन जान के भाव का, अविरत में दरसाव ॥४॥

चौपई

दरस-मोह उदै समुदाय, जहँ उपशम तहँ उपशम गाय ।
वेदक से उपशम विधि जोय, सता नाश तैं क्षायक होय ॥५॥
चारित-मोह अपेक्षा जान, भाव कथन अगले गुणथान ।
पञ्चम षष्टम सप्तम ताय, एक क्षयोपशम भाव बताय ॥६॥

उपशम श्रेणी चारों थान, उपशम भाव धरत गुणवान ।
क्षायक श्रेणी जोग-अजोग, क्षायक भाव शुद्ध उपयोग ॥७॥

दोहा

उपशम क्षय-उपशम क्षपक, औदायिकि परिणाम ।
संसारी जीवानि के, पञ्च भाव निजधाम ॥८॥
उपशम तैं उपशम बनैं, क्षय तैं क्षायक होय ।
क्षयोपशम तैं वेदकी, उदै औदयिक जोय ॥९॥
पारिणाम स्वाभाव है, रहित कर्म सापेक्ष।
भाषूँ इनके भेद कूँ, ग्रन्थ सनातन देख ॥१०॥

तिरेपन भाव एवं उनके क्रम से नाम, चौपई

दो नौ अष्टादश इकबीस, तीन यथाक्रम त्रेपन हीस ।
समकित चारित उपशम दोय, क्षायक के नौ भाषूँ तोय ॥११॥
केवल-दर्शन केवल-ज्ञान, दान लाभ बल भोग बखान ।
है उपभोग क्षाय सम्यक्त, चारित क्षायक नौ विध युक्त ॥१२॥

क्षयोपशम के अठारा नाम, चौपई

बिन केवल चारों शुभ ज्ञान, मति श्रुत अवधि तीन कुज्ञान ।
दर्शन तीन भेद पहिचान, चक्षु अचक्षू अवधि विधान ॥१३॥
दान लाभ भोगरु उपभोग, वीरज लब्धि जु पञ्च मनोग ।
अणुव्रत चारित उपशम दोय, फुनि क्षयोपशम समकित जोय ॥१४॥

औदयिक के इकईस नाम, चौपई

चारों गति अरु चार कषाय, वेद तीन मिथ्यात गिनाय ।
असिद अज्ञान असँयम भाव, षट् लेश्या औदयिक बताय ॥१५॥
पारनाम के तीन हि नाम, भव्य-अभव्य-जीव परिणाम ।
तीनों तो संसारी माँहि, भव्य-अभव्य सिद्ध में नाँहि ॥१६॥

दोहा

उपशम क्षायक भाव दो, सम्यक् बिना न होय ।
पारिणाम जिय जाय के, क्षायक शिव लौं जोय ॥१७॥
क्षयोपशमि पुनि उदय की, पारिणाम युत तीन ।
समकित और मिथ्यात में, यथा जोग है लीन ॥१८॥
संसारी समकित सहित, पाँच भाव गहि लेत ।
पारिणाम अरु क्षायकी, सिद्धी दोय समेत ॥१९॥
मिथ्या तैं सप्तम तलक, बुध पूर्वक दरसाव ।
अबुध पूर्व आगे अलप, जान औदयिक भाव ॥२०॥

मोहकर्म कै क्षय भये, थिर आतम उपयोग।
कर्म उदै रस बिन दिये, झरै अलाधे जोग ।।२१।।
रचना पाँचू भाव की, लिखी अलप-सी देख।
आगे वर्णन करत हूँ, थोरा-बहुरि विशेष ।।२२।।

।। इति भाव प्ररूपणा ।।

अथ अल्प-बहुत्व प्ररूपणा, दोहा

अधिक-अधिक अनुक्रम लये, असंख्यात गुणमान।
मानुष तैं सब नारकी, नारक तैं सुरथान ।।१।।
सुर तैं पशु पञ्चेन्द्रिया, तातैं वेन्द्री होय।
वेन्द्री तैं तेन्द्री अधिक, त्यों चौ इन्द्री जोय ।।२।।
चौ इन्द्री तैं तेज के, तेज थकी भू काय।
भू तैं अधिके जीव अप, अप तैं अधिके वाय ।।३।।
अनँत गुने हैं सबनि तैं, शिव में सिद्ध सदीव।
सिद्ध शशि तैं अनन्तगुण, वनस्पती में जीव ।।४।।
अलप-बहुत इम वरनिया, जिय के तेरैं थान।
अब विशेष विधि जानियो, वरणत हूँ गुणथान ।।५।।
अल्प सबन तैं होत हैं, उपशमश्रेणी माँहि।
जिय दो-सौ निन्याणवै, चार गुणन प्रति पाँहि ।।६।।
जीव पाँच-सौ ठ्यानवै, क्षायक श्रेणी थान।
येते ही केवल सहित, योग रहित भगवान ।।७।।
जो लौं अधिक अजोग तैं, योग सहित जिन होय।
वसु लख सहस अठ्यानवै, बहुरि पाँच-सै दोय ।।८।।

चौपई

दोय कोट छिनवै लखि लीन, सहस निनाण्वै इक-सौ तीन।
अन्त अपरमत गुण के धार, यातैं दुगुने प्रमत मँझार ।।९।।
अधिक प्रमत से पञ्चम घना, तेरह कोटि मनुष में गिना।
चार गुनै पञ्चम गुणथान, बावन कोटि दुतिय गुणथान ।।१०।।
सासादन तैं दुगुण प्रमान, कोटि एक-सौ चार सुजान।
येते तीजे थानक जोड़, अविरत माँहि सात-सै कोड़ ।।११।।
अनँत गुना अविरत तैं जीव, गुण मिथ्या में रहत सदीव।
ग्रन्थ चिरातन के अनुसार, पूरण वसु अनुयोग विचार ।।१२।।

।। इति आठ अनुयोग ।।

दोहा

पूरव वरण्या कथन जो, याद करण के काज।
सूचनिका कूँ लिखत हूँ, भविजन बोध इलाज ॥१॥

सम्यग्दर्शन स्वरूप कथन, चौपई

जो तत्त्वारथ का सरधान, सो समकित का लक्षण जान।
बहुरि निसर्गज अधिगज दोय, ये उपजावन कारण जोय ॥२॥
कहे तत्त्व जीवादिक सात, चारि न खेपै लख विख्यात।
नय-प्रमाण तैं निश्चय होय, निर्देशादिक विधि अवलोय ॥३॥
फुनि विशेष जानने काज, सत् संख्यादिक आठ समाज।
सम्यक् दर्शन धारै जिया, या हित या विधि वर्णन किया ॥४॥

॥ इति सम्यक् दर्शन स्वरूप कथन ॥

अथ सम्यग्ज्ञान कथन, दोहा

सैनी पञ्चेन्द्रीय कै, होत क्षयोपशम जान।
फुनि धारै सम्यक्त्व कूँ, तब है सम्यक् ज्ञान ॥५॥
जात रहैं संशय-भरम, अनिधव-साई जान।
तिनका वर्णन करत हैं, करि दृष्टान्त विधान ॥६॥
कै रूपा कै सीप है, ये संशय के वैन।
भरम माँनि लखि सीप कूँ, रूपा जानै ऐन ॥७॥
का जानै ये कौन है, हमें खबर कछु नाँहि।
अनिधव-साई इम कहै, वे-खबरा मन माँहि ॥८॥
सत्यारथ साँचे कहै, जिय सम्यक्त्वी वैन।
और भाँति कछु ना कहै, कहै सीप है ऐन ॥९॥
पहले भाषै स्वल्प से, पाँच ज्ञान परमान।
भेद लिखूँ तिनका अबै, जो भाषी भगवान ॥१०॥
ज्ञानावरणी पाँच में, चार क्षयोपशम होय।
क्षय ही है केवल प्रगट, निरखै लोक-अलोय ॥११॥
मति श्रुत ज्ञानावर्ण का, सदा क्षयोपशम जान।
घाटि-बाढ़ि रहिवो करै, मति श्रुत दोऊ ज्ञान ॥१२॥
घटत-घटत इक वर्ण के, रहे अनन्ते भाग।
बढ़त होत श्रुत केवली, मति के सर्व विभाग ॥१३॥
कारण इन्द्री-मन थकी, उपजत है मति ज्ञान।
मति पूर्वक श्रुतज्ञान में, अर्थ-अथान्तर जान ॥१४॥
मती स्मृती संग्या बहुरि, चिन्ता अभिनीबोध।
ये प्रजाय मतिज्ञान की, इन्द्री मन को शोध ॥१५॥

छप्पय

मति बुधि तैं है मनन, अवग्रहादिक द्रवानि का।
संमृति मेघा यादि, लखी पहली वस्तुन का ॥
संज्ञा प्रज्ञा ज्ञान, पूर्व वर्तमानि लावै ।
चिन्ता प्रतिभा तर्क, व्याप-व्यापति उपजावै ॥
अभिनिबोध अरथापती, स्वार्थनुमान प्रमान है।
आन भेद हैं नाँहि ये, पाँच नाम मतिज्ञान है ॥१६॥

चौपई

मति बुधि संमृति मेधा जान, संज्ञा प्राज्ञा प्रतिभीज्ञान।
चिन्ता प्रतिभा तर्क पिछान, अभिनिबोध सम्भव अनुमान ॥१७॥

अडिल्ल

संमृति प्रतिभिज्ञान, तर्क अनुमानरु आगम ।
ये परोक्ष परमाण, कहे जिन कूँ सब मालुम ॥
अवग्रहादिक भेद, प्रगट इन्द्रि निमित हो है ।
सांविवहार प्रत्यक्ष, कहै जिन आगम जोवै ॥१८॥

दोहा

इन्द्र पुरनधर शक्र जो, नाम सुरपती जान।
संमृतादिक पाँचों त्यों, नाम जान मतिज्ञान ॥१९॥
जो मैं देख्या था प्रथम, सो अब लिया पिछान ।
अथवा सादृश और है, मानों प्रतिभीज्ञान ॥२०॥
व्यापति सधि साथन विषैं, अविनाभाव पिछान ।
धूम जहाँ ही अगन है, आनैं तर्क प्रमान ॥२१॥
कारिज लक्षण जाँनीं कै, जाने सो अनुमान।
काज जान लखि लखिण सों, ह्वै आतम श्रद्धान ॥२२॥
जान परत इन ही लखै, भीतर है परधान।
कै अवाज सुनि जानिवौ, के सुवास अनुमान ॥२३॥

सोरठा

अवग्रहा ईहासु, फुनि अवाय अर धारना ।
मूल भेद ये चार, होत छत्तिसरु तीन-सै ॥२४॥
अवलोकन सामान, निराकार दर्शन प्रथम।
बहुरि स्वैत द्वै मान, सो अवग्रह तैं होत है ॥२५॥
बुगला किधो न होय, इच्छा निश्चय करन की।
ऐसी ईहा जोय, संसारी दुविधा प्रबल ॥२६॥

हालै बाजू पाँख, अवयव है बगुला ततैं ।
जाय और अभिलाष, मति अवाय निश्चय लहैं ।।२७।।
सो बगुला को जान, कालान्तर बिसरै नहीं ।
सो धारण मतिज्ञान, ज्यों द्रग तैं त्यौं सबनि तैं ।।२८।।
जात अवग्रह दोय, अर्था दूजी व्यञ्जना।
अर्था व्यक्त हि जोय, व्यञ्जन होत अव्यक्त है ।।२९।।
अति परचै तैं होय, अर्थ अवग्रह व्यक्ता ।
व्यञ्जन वक्त न कोय, कोरे घट पर बूँद जल ।।३०।।
ईहादिक नहि होय, होत अवग्रह व्यञ्जना ।
सो द्रग मन बिन जोय, श्रोत्र परस रस घ्राण के ।।३१।।
भये भेद ये चार, बह्वादि बारै गुनै ।
अठ-चालीस प्रकार, भेद अवग्रह व्यञ्जना ।।३२।।
अवग्रहादिक चार, इन्द्री-मन तैं जोरिये ।
ह्वै चौईस प्रकार, फुनि गुनि ये बह्वादि तैं ।।३३।।
कर एकत्र रचाय, अठ्यासी अर दोय है ।
अड़तालीस मिलाय, तब छत्तीस ह्वै तीन-सै ।।३४।।

पदार्थों के द्वादश भेद नाम, दोहा

बहु बहुविध आक्षिप्रता, निसृत ध्रुव अनुक्त ।
अबहू अबहूविध चपल, गोपित अध्रुव उक्त ।।३५।।

उदाहरण, छप्पय

अबहू मानुष एक, बहू योनी संख्याता ।
अबहूविधी द्विजवर, बहुतविधी द्विज बहु भाता ।।
क्षिप्र दोरता पुरुष, अक्षिप्र मन्द चारि में ।
निःसृत जल के बाहि, अनिःसृत मगन वारि में ।
अध्रुव दामिनि चमक है, ध्रुव तरु गिरवर निश्चला ।
बिना कही अनुक्त सो, उक्त कही जानों भला ।।३६।।

।। इति मतिज्ञान भेद निरूपना ।।

अथ श्रुतज्ञान कथन, दोहा

जात जीव जावन्त के, मति पूरक श्रुतज्ञान ।
सदा अर्थ अर्थान्तर सुँ, तामैं सुनूँ विधान ।।१।।
वर्णातम श्रुतज्ञान है, सैनी जीवन माँहि ।
मोक्षमार्ग उपदेश विधि, या बिन होता नाँहि ।।२।।
ता श्रुत का दो भेद है, बाह्य-प्रविष्ट सुअंग ।
और अनेक प्रकार का, दूजा द्वादश भंग ।।३।।

अंग बाह्य के चौदह प्रकीरण, सोरठा

सामायिक है आदि, चतुर-बीस सतवन बहुरि ।
तृतिय वन्दना पाँहि, प्रतिक्रमण चवथा मनौ ॥४॥
फुनि वैनयिक पिछान, कृत्यकर्म षष्ठम महा ।
दश-वैकालिक जान, उतराधेन जु आठवाँ ॥५॥
बहुरि कल्प-विवहार, दशवाँ कल्पाकल्प है ।
महाकल्प उच्चार, पुण्डरीक है बारमौं ॥६॥
महापुण्डरीक तैर, चतुर-दशम निषेधीका ।
ये परकीरनका सु, अंगबाह्य तैं भेद हैं ॥७॥

अंग प्रविष्ट में द्वादश अंग हैं,

तिनके नाम, दोहा

प्रथम हि आचारांग गिनि, द्वितिय हि सूत्र कृतांग ।
स्थानअंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥८॥
व्याख्या प्रज्ञप्ति पञ्चमो, ज्ञातृकथा षट् आन ।
फुनि उपासका-ध्ययन है, अन्तह-कृतदश ठान ॥९॥
अन-उत्तर-उत्पाददश, सूत्रविपाक पिछान ।
बहुरि प्रश्नव्याकरण है, दृष्टिवाद फुनि जान ॥१०॥

चौपई

दृष्टिवाद विधि पञ्च सुजान, परिक्रम अर सूत्र पहिचान ।
तीजा है प्रथमानु हि जोग, पूरवगता चूलका योग ॥११॥
चन्द्र सूर्य जम्बू परज्ञप्ति, उदधि-द्वीप व्याख्या परज्ञप्ति ।
ये पाँचूँ परज्ञप्ति विधान, पञ्च चूलका कहूँ सुजान ॥१२॥
जलगत थलगत मायागता, रूपगता आकाश सुगता ।
ऐसे पाँच चूलका कही, पूरव चौदा भाखूँ सही ॥१३॥

चौदह पूर्व के नाम, दोहा

उत्पादरु अग्रायणी, तीजौ वीरज-वाद ।
अस्ति-नास्ति परवाद फुनि, पञ्चम ज्ञान प्रवाद ॥१४॥
षष्टम कर्म प्रवाद है, सत प्रवाद पहिचान ।
वसु आतम परवाद फुनि, नौवाँ प्रत्याख्यान ॥१५॥
विद्यानुवाद पुरव दश, अरु कल्याण महन्त ।
प्रानवाद किरिया बहुरि, लोक बिन्दु है अन्त ॥१६॥
ऐसे बारह अंग ये, बीस-अंक परमान ।
अपुनरुक्त तिनके वरन, तिनका सुनो बखान ॥१७॥

इक-सौ द्वादश कोड़ि पुनि, लाख तिरासी मान।
बावन सहसरु पाँच है, पद ऐते परमान ॥१८॥

चौपई

एक हि पद का अक्षर जोर, सौला-सै चौंतीस करोर।
लाख तिरासी सात हजार, आठ शतक अठ्यासी धार ॥१९॥

प्रकीरणक के अक्षर, चौपई

आठ कोड़ इक लाख सुजान, आठ सहस इक-सौ सामान।
बहुरि पञ्चेन्द्रि वरण निधान, चौदह प्रकीर्ण का परमान ॥२०॥

दोहा

पाँच घाट अरु दोय-सै, सब पूरव में वस्तु।
बीस-बीस प्राभृत बनैं, एक-एक ही वस्तु ॥२१॥
प्राभृत गुनतालीस-सौ, सब एकत्र विचार।
जो विशेष की चाह तो, गोमटसार निहार ॥२२॥
या श्रुत की परमानता, कैसे कहों बखान।
वीतराग सर्वज्ञ धुनि, निर्दूषण परमान ॥२३॥

चौपई

रिधिधारी मनपरजैवान, गणधर गूँथे अंग विधान।
तीर्थङ्कर के रहे हजूर, यों परमाण भई भरपूर ॥२४॥
ताकी परम्परा जति कही, अल्प मती सिख हित कूँ सही।
उदधि बूँद जल चाखै कोय, उदधि सवाद जानि ले सोय ॥२५॥

सोरठा

जो चेतन के भाव, ताकूँ ज्ञान बखानिये।
पुस्तक जड़ परभाव, सो द्रवि श्रुत है ज्ञान क्यों? ॥२६॥

उत्तर, दोहा

भाव श्रुत के होन को, द्रवि सुत निमत प्रधान।
तातैं पुस्तक वरण द्रवि, रूढि कहै श्रुतज्ञान ॥२७॥
द्रवि श्रुत जानूँ दोय विध, द्रव्य बहुरि परजाय।
द्रवि तो भाषा वर्गणा, श्रोतृ सुने परजाय ॥२८॥
भावा श्रुत हूँ दोय विधि, द्रवि परजै समुदाय।
कर्म क्षयोपशम लब्धि द्रवि, उपयोगी परजाय ॥२९॥
जो भाख्या म्हावीर-जिन, सो वरण्या वृषभेश।
सो कहि-सी म्हापद्म जी, यों अनादि उपदेश ॥३०॥

बीच-बीच में टूटगो, फैला अनँत मिथात ।
पुनि जिनवर वे ही कह्यो, और न दूजी बात ॥३१॥
शिव-मारग कथनी सुनो, जिन प्रतीत श्रुत जान।
भविजन परिक्षा कर गहौ, त्यागो कुश्रुत ज्ञान ॥३२॥
कहुँ-बाँधैं साँधैं-कहूँ, पौषे हिंसा भोग ।
सो कुश्रुत मिथ्यात है, मोहे भोले लोग ॥३३॥
हुए होत हैं होंयगें, जन्म-मरण हरि सिद्ध ।
ते सुलझे श्रुतज्ञान ले, तजि कै बुद्धि निषिद्ध ॥३४॥
ना करनी करनी सुखद, हित-अनहित पहिचान।
जिन-भाषित श्रुतज्ञान बिन, कबहुँ न होत सुजान ॥३५॥

चौपई

सूक्षम सरसों हलका तूल, ऊँचा शिखरी नीचा मूल ।
पतलो पानी मोटा लाठ, हरी वनस्पति सूखा काठ ॥३६॥
रवि-शशि दूरि निकट आवास, जान गोत-कुल स्वामी-दास।
पाचक-रैचक पुष्ट-कवन्द, दल फल कुसुम डाल ही कन्द ॥३७॥
सिद्ध-संसारी दोय अनादि, कर्म बन्ध जो सादि-अनादि।
मति-श्रुत जी के ज्ञान अनादि, छहूँ द्रव्य गुण पर्ज अनादि ॥३८॥
सादि मिथ्या में हि सब जीव, अनादि मिथ्या अभवि सदीव।
श्रुत बिन ऐसी कथनी नाँहि, आपति बिन श्रुत प्रगटै नाँहि ॥३९॥

दोहा

अनँत जन्म बीते सुनत, खोटे श्रुत उपदेश ।
एक बार श्रुत के सुनै, मेंटै अखिल कलेश ॥४०॥
कोलौं ''बुधजन'' वरणि है, मुह माया में भोत।
केवल मनपरजै अवधि, सुश्रुत पढ़ तैं होत ॥४१॥

॥ इति श्रुत ज्ञान निरूपण ॥

अथ अवधि ज्ञान निरूपण, चौपाई

भव परतेय अर गुण परतेय, दो हैं अवधीज्ञान के भेय।
भव परतेय ह्वै नरकन-सुरा, कर्म क्षयोपशम गुण पशु-नरा ॥१॥

अडिल्ल

भव पावत हो जाय, क्षयोपशम तैं कछु नाँहि।
सुर नारक भव निमित्त, क्षयोपशम सहज गहाँ हि ॥
जैसे नभ जलचरा, ऊड़ै जल बूड़ै नाँहि।
तैसे भव के निमित, क्षयोपशम अवधि तहाँ हि ॥२॥

चौपई

कम अधिक क्षयोपशम जैसा, थोरि धनी अवधि है तैसा ।
सम्यक्त्वी के सम्यक् ज्ञान, कुबुधि मिथ्याति के पहिचान ।।३।।
नर पशु तपव्रत साधन करै, ताँहि कर्म क्षयोपशम धरै ।
गुण परत्यो तब अवधि लहाय, ताँहि भेद षट् हैं समुदाय ।।४।।
अनुगामि परभव संग जाय, अननुगामनी या परजाय ।
अवस्थिती तो थिरता रहै, अनवस्थिति नहि थिरता गहै ।।५।।
हीयमान जों घटती जाय, असंख्यात अंगुल भंगाय ।
वर्द्धमान सो बढ़ती पाय, असंख्यात लोकहि लौं थाय ।।६।।
गुण बढ़तें के भेद बखान, देशा-परमा-सर्वा जान ।
सर्वा-परमा बढ़ती जाय, घटै बढ़ै ना परभव पाय ।।७।।

अडिल्ल

रूपी की पहिचान, अरूपी कौं ना जानै ।
काल क्षेत्र भव भाव, लिये मरजादा जानै ।।
भाल वर-स्थल आदि, आत्म परदेशन में ह्वै ।
चिंतवन किये लखे, बिना चिंतवन नाँहि ह्वै ।।८।।

।। इति अवधि ज्ञान ।।

अथ मनःपर्यय ज्ञान, चौपई

अन्तराय मनपरजावर्ण, दोऊ होत क्षयोपशम कर्ण ।
उदै नाम का अंग-उपंग, मनपरजै उपजै तब संग ।।१।।
सरल वचन मन काया थकी, पर-मन की जानैं रिजुमती ।
वक्र वचन मन कायावान, विपुलमती पर-मन का जान ।।२।।

दोहा

परमाणूँ अविभाग कूँ, परमावधि ले जान ।
ताका भाग अनन्तवाँ, रिजूमती पहिचान ।।३।।
रिजूमती के गेय लघु, जाके भाग अनन्त ।
विपुलमती को जानिवो, तद्भव गामी सन्त ।।४।।

चौपई

अविभागी में भाग अनन्त, कैसे बनैं सु कहो महन्त ।
परमाणु के रस का भेद, होत अनन्त भाग प्रतिछेद ।।५।।
अनँत भाग भाषे इक वेर, दूजै बहुरि बनें क्यों फेर ।
भाग-भाग के भाग अनन्त, जिन-आगम भाषत बहु भन्त ।।६।।

अडिल्ल

दोय तीन भव जघनि, सात वसु उत्कट निज-पर ।
अगले-पिछले लखत, रिजूमति ज्ञानी तत्पर ।।
चार कोस तैं लेख, जघनि वसु क्षेत्र हि जानैं ।
उत्कट योजन चार, आठ-सौ रिजुमति जानैं ।।७।।
अगला-पिछला काल, विपुलमति निज-पर जानैं ।
असंख्यात उत्कृष्ट, जघनि वसु भव परमानैं ।।
जघनि चार तैं लेय, आठ योजन लौं देखै ।
मानुषोत्र गिर परै, विपुलमति नाँहीं पैखै ।।८।।
रिजुमति चारित तजै, विपुलमति नाँहीं खोवै ।
द्रव्य क्षेत्र अर काल, विपुलमति अधिका जोवै ।।
मनपरजै अरु अवधि, दोय में जो अधिकाई ।
ताका वर्णन करूँ, सूत्र में जैसे गाई ।।९।।

दोहा

अधिक शुद्धता अवधि तैं, मनपरजै में जान ।
मनपरजै क्षेतर अलप, अवधि लोक को ठान ।।१०।।
मनपरजै परमत थकी, क्षीण कषायी ताय ।
रिद्धि कलित चारित बढ़त, कोई-सा मुनि पाय ।।११।।
अवधि ज्ञान चहुँगति विषैं, सम्यक्त्वी के होय ।
मति श्रुत षट् द्रव्यनि विषैं, कितेक-परजै जोय ।।१२।।

प्रश्न, दोहा

रूप रहित धर्मादि सौं, इन्द्री गोचर नाँहि ।
तिनका विषैं न सम्भवै, मति ज्ञानी के माँहि ।।२।।

उत्तर, दोहा

अन्य द्रव्य मन निश्चतैं, जानत है मतिज्ञान ।
स्व-योगिक परजै गहै, ना सब परजै जान ।।१४।।
मति ज्ञानी का ज्ञेय सो, यो ही श्रुत का मान ।
मति पूर्वक श्रुतज्ञान है, कितेक परजै जान ।।१५।।

।। इति मनःपर्यय ज्ञान ।।

अथ केवल-ज्ञान निरूपण, दोहा

कर्म घातिया क्षय किया, शुक्ल ध्यान बलवान ।
व्यक्त भई तब शक्ति निज, प्रगट्या केवल-ज्ञान ।।१।।

सर्व द्रव्य परजाय सब, सर्व काल के माँहि।
एक काल केवल विषैं, झलके संशय नाँहि ॥२॥
हीन-अधिक अब देखिये, जग जीवन के ज्ञान ।
तातैं निश्चय होत है, केवल का सरधान ॥३॥
ज्ञानमईरु जुदे-जुदे, जीवानन्तानन्त ।
तातैं नन्तानन्त गुण, पुद्गल अणूँ वसन्त ॥४॥
धर्म-अधर्म आकाश जुत, तीन द्रव्य हैं एक ।
असंख्यात कालाणु हैं, भिन्न-भिन्न प्रत्येक ॥५॥
इनकी गुण परजै अनँत, भूत भविष्यत हाल ।
राग रहित जिन-केवली, जानत एकै काल ॥६॥
केवल महिमा अनँत सब, "बुधजन" भाषै काँहि ।
सुख बल दर्शन जानिवो, लसैं अनँत जा माँहि ॥७॥

॥ इति पञ्च सम्यक्ज्ञान निरूपण ॥

अथ ध्यान रचना निरूपण, दोहा

चित्त एकाग्र रोकना, विकल्प आन निवार।
ध्यान कहत हैं तास का, भेद चार परकार ॥१॥
आरति-रुद्र कुध्यान दो, अशुभ कुगति दातार ।
धर्म-शुक्ल शुभ ध्यान दो, सुर शिव सुख विस्तार ॥२॥

चारों आर्त्त ध्यान के नाम, चौपई

इष्ट-वियोग अनिष्ट-सँयोग, पीड़ा-चितवन तीजा थोग।
बहुरि निदान-बाँधिवो जोय, आरति ध्यान चार विधि होय ॥३॥

(१) इष्ट वियोग, कवित्त पैंतीसा

रहे थिर देश चले परदेश, बसै पर भौन या कौन सो कहिवो ।
लघु सुत भ्रात बड़े पितु मातरु, सुन्दरी साथ में राति को रहिवो ॥
मिलैवे साथ कहो किन हाथ, बनै वह बात सुप्यारनी वहिवो ।
सोवत जागत पीवत पान न, रात-दिना एक जाँहीं को गहिवो ॥४॥

(२) अनिष्ट संयोग, सवैया बत्तीसा

देखत चैन न बोलत चैन न, बैठत चैन न सोवत चैना ।
क्रूर ही क्रूर रहे अकराल, निरन्तर इकहि लायक दैना ॥
चूह माजार जिसा यह बात, कथानक एक में सासत रैना ।
कौन प्रकार हि तजै यह साथ, चितै वरघात होय असैना ॥५॥

(३) पीड़ा चिन्तवन, सवैया छत्तीसा

पीर गम्भीर गहूँ किस धीर, नहीं को वीर जो दौर मिटावै ।
भई दो रात थक्या पुकरात, सुनें को बात मो आन खिजावै ।।
लोक हि अनीत नहीं को मीत, प्रीत सौं रीत तैं दोष मिटावै ।
कोन-अपराध किया जु अगाध, तो ताँहीं तैं बाँध्या गात जरावै ।।६।।

(४) निदान बन्ध, सवैया छत्तीसा

नहीं पुर ग्राम नहीं बहुवाम, सुधाम में काम के आनन्द लीजै ।
इसे कुल जन्म नहि बनै धर्म, सुकर्म को ठाँनी के शर्म गहीजै ।।
शीत न जात न भूख मिटात न, तीसरे जाम में मुँह ग्रास हि जीजे ।
अहो कर्त्तार भलो भर्तार, भर्यो घरवार में जन्म कूँ दीजे ।।७।।

मूल आर्त ध्यान के काम, सवैया चौंतीसा

जु आरतिध्यान सदा दुखयान, सुदुःख सरूप है चार प्रकारा।
जु इष्टवियोग बनै अपशोग, अनिष्ट संजोग मिलै दुख भारा।।
जु पीर अनन्त बनै किम अन्त, करै इमी चिन्त्य सुनित्य अपारा।
जु आवति साल मिलैं वर बाल, तबै बड़ भाल लेहूँ सुख भारा ।।८।।

।। इति आर्त ध्यान ।।

अथ चारों रौद्र ध्यान के नाम, सवैया चौंतीसा

रौद्र करूर कुध्यान अज्ञान कुँ, ये चार नर्क के दायक भारा।
प्रान को हान हँसै रचिवान, मृषा दुखदान सु होत हत्यारा ।।
हरै धन-धान सुखी मतिमन्द, सुअन्ध बैठानत चिन्त अपारा ।
डिंभव घात-अघात ना स्यात, बड़े हरषात है देखि वधारा ।।९।।

(१) हिंसानन्द, सवैया बत्तीसा

भूख गहै तन शीत सहै वन, माँहि रहै वर घात विचारै ।
बालक बाल दया नहि हालनि, हाल आन के अंग विदारै ।।
साँझरु भोर क्यों ठीक न ओर, घोर पराक्रम अंग हि में धारै ।
नाहर है किधौ राक्षस हि नर, रूप धरै जग जन्त विदारै ।।१०।।

(२) मृषानन्द, सवैया छत्तीसा

देव के द्वार में राज दरबार में, सरे बाजार में हरषि कै जाऊँ ।
बुद्धी सभानि में तुरत मुख ठाँनि मो, सुख विश्वास कीकै सुनाऊँ ।।
समय पहिचान कै देश कूँ जान कै, चित आनि कै वानि कै गाऊँ ।
ऊँचपद पाय हूँ लोक कुँ रिझाय हूँ, दीनता लाय नाँह कै राऊँ ।।११।।

(३) स्तेयानन्द, सवैया तैंतालीसा

कौन कर जोरे हम कौन कुँ निहोरे-सर्व धाम ठौरे द्रव्य ही हमारा है।
सब विनज के करैया औ खेती के-हासिल के भरैया राजनि सुँ चुराया है॥
हम काहु के न दास दूरि रहे वास-बिना विश्वास भोग भोगे भोतेरा है।
नित मीत तन ठानै एक द्योसयता-वर्ष भूख भानै ऐसा व्योंत हेरा है ॥१२॥

(४) परिग्रहानन्द, सवैया बाईसा

भैंस गाय बैल छेरी मेष छैल रहै।
सदा गैल हल अति लोकनि का घेरा है॥
सुता सुत पोती भोत गोत केर नाती हित।
प्रीत के संगाती सगा भोतेरा है॥
नाड हुँ हलाऊँ पड-पोते कूँ खिलाऊँ।
पोती परनाउँ धाय धाऊँ चेरा है॥
इन देखि-देखि फूलुँ एक पल नाँहि भूलुँ।
आनन्द में झूलूँ बड़-भाग मेरा है ॥१३॥

॥ इति रौद्र ध्यान ॥

आर्त्त-रौद्र ध्यान के स्वामी, दोहा

मिथ्या सासादन मिसर, अविरत अनुव्रत थान।
सब आरति या प्रमत्त में, तीन हि रहित निदान ॥१४॥
अविरत च्यारूँ गुणन अरु, अनुव्रत पञ्चम थान।
होत रौद्र के भेद सब, नहीं और गुणथान ॥१५॥

चारों धर्म-ध्यान के नाम, सवैया तेईसा

भेद-ज्ञान धार होत धर्म-ध्यान धार बहि,
सर्व पाप टार लहै स्वर्ग सुख भारा है।
जिनराज जो बखानि सो हिये-मार्ग आनी,
दुष्ट कर्म हरिवै की मति का विचारा है॥
अधो-मध-ऊर्धलोक रचना का सर्वथोक,
हिय माँहि जानि नाँहि होत राग धारा है।
कर्म के विपाक सेति सुख-दुख अचिन्त्य होत,
मानत अनित्य ताँहीं जानत विकारा है ॥१६॥

(१) आज्ञा विचय, कवित्त चौंतीसा

द्रव्य अनित्य ही सूक्ष्म है, छदमस्त के ज्ञान में आवत नाँहीं।
भयै अरिहन्त सु हैं अब होंयगें, या जग ढाइ-द्वीप के माँहीं॥

पुण्यरु पाप का आश्रवा बन्धर, संवर मोक्ष कि रीति लखो हीं।
जो जिनदेव कहे जते भेव तैं, ये वर तैं अब गाढ़त हों हीं ॥१७॥

(२) अपाय विचय, कवित्त चौंतीसा

जीव अनन्ते बसै जग में, तिन कर्म नचावत नाच रहे हैं।
लघु-दीरघ देह अछेद धरैं, नर नारक तिरजग अरु देव हुये हैं॥
पूरन होत ना नाच कदा, समता बिन साँचे तू जान हिये हैं।
सिद्ध भये अर होत जिते तितैं, ते समता चित माँहीं गहे हैं ॥१८॥

(३) विपाक विचय, सवैया इक्कीसा

और सब बात वृथा कर्म विपाक जिथा, रोग दुख शोक भोग जोग मिल जात है।
इन्द्र और नरिन्द्र फणपती मिल फेरै, फँद तो हुँ मिटत बन्ध भावि न हटात है ॥
विकलप न कीजे सत्य चित मान लीजै, हर्षित है जी जैं कोऊ थिर ना रहात है।
आस त्याग कीजै अपराध नाँहि दीजै, संतोष धर लिजै आनँद उमगात है ॥१९॥

(४) संस्थान विचय, सवैया बाईसा

धर्म औ अधर्म काल पुद्गल आकाश जीव,
लोक में सदीव रहै बाहर अलोक है।
घनकर तीन-सै तियालीस लोक जामें,
त्रसनाड़ी जहाँ तीरस ही का थोक है।
तरैं-तरैं नर्क सत तहाँ महा उत्पात,
रोग-दोष त्रस-घात होत सदा शोक है।
मध्य में तिर्यञ्च-नर ऊपर है देव भर,
ताकें पर सिध-लोक तिनके पग धोक है ॥२०॥

चारों धर्म-ध्यान के स्वामी, कवित्त-चौंतीसा

कोउ मिथ्यात में ले समता सौं, सुख ले फिर ले दुख का भारा।
यों न सुध्यानी गिन्या मत माँहि, ध्यानी गिन्या सम्यक्त्व का धारा॥
आज्ञापायविपाकविचय संस्थानविचय, ये हि चारों प्रकारा।
चौथे पाँचे होत है सुलभ-सा छटवें सातवें थान सारा ॥२१॥
रोग-सा भोग सयोग वियोग-सा, मात-सी भामनि मिष्ट प्यारा।
यम-सा धाम नाम है नाग-सा, काल-सा काम संसार सारा॥
आनि कै ज्ञान कूँ मोह कुँ भाँनि, दूर थल बैठि कैं गाँठ धारा।
लीन सुद्धात्मा धरम का ध्यात्मा, भक्त परमात्मा होत सारा ॥२२॥

दोहा

नाँहीं विषम न भीर जनुँ, नहीं गरम नहि शीत।
उदासीन थल धीर चित, ध्यान धरत या रीत ॥२३॥

॥ इति धर्म ध्यान ॥

(१) अथ शुक्ल ध्यान, कवित्त

अनन्तानबन्धी अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान,
भाँनि कै आँनि श्रुतज्ञान लाया।
रहा संज्वलन नाँहि बुद्धि में प्रकाश मान,
तहाँ शुक्ल ध्यान आदि पाया।
अधो आन-अपूर्व अनिव्रत-करण,
सूक्ष्म-साम्यराय लौं वेद में गाया।
मेंटि कै मल कषाय भया भाव स्वच्छ ताँहि,
भेंटि कै विशुद्ध ताय शुद्ध थाया ॥२४॥

(१) पृथक्त्व-वितर्क वीचार, सवैया बाईसा

रहा संज्वलन नाँहि बुधि में प्रकाश मान,
तहाँ श्रुतज्ञान उदै अंग-पूर्व अंग कहै हैं।
अर्थ पलट होत वचन की पलट होत,
काय योग की पलटनि पृथक्त्व-वितर्क है।
अपूर्व-अनिव्रत-कर्न सूक्ष्म कषाय तो लौं,
होय कै विशुद्ध पार मोह में फर्क है।
उपशम श्रेणी में उपशम ही कर्म होत,
क्षायक श्रेणी बीच क्षायक कर कहै हैं ॥२५॥

(२) एकत्व-वितर्क वीचार, कवित्त

एकत्व-वितर्क में द्रव्यरु योग आवै ना फिरै,
नहीं होत ज्यों निश्चल लौं माँहि पाँनी।
आगम उपयोग हूँ वा एक ठौर ध्यान,
ज्ञानावर्ण दर्शना अन्तराय भाँनी ॥
कोई एक जोग धारै होत केवल प्रगट,
जोति द्रव्य परजाय तिहूँ-काल ज्ञानी।
अन्तर्मुहूरत शेष रहै जो लौं आप तो लौं,
शुक्ल ध्यान भेद दुतिय बखानी ॥२६॥

(३) सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति, सवैया बाईसा

ध्यानाधिप एक जात तीजा शुक्ल ध्यान,
योग निरोधकर जान ध्यान उपचार है।
नामादि आयु तैं अधिक थिति जाके होय,
सो तो वै समुद्घात क्रिया का धार है॥
ता क्रिया होत नाँहि काय जोग इक माँहि,
सासोसास सूक्ष्म-क्रिया का आधार है।
अन्तर्मुहूर्त मान ऐता है उनमान,
आगैं अघाति कर्म नाश को तैयार है ॥२७॥

(४) व्युपरित क्रिया-निवृत्ति, सवैया बाईसा

काय मन वचन योग रहते चलायमान,
आतम प्रदेश तिनैं रोक थिर कीना है।
दूरि करि है तहाँ सासोसास क्रिया सब,
समूर्छन क्रिय निवृत इसा नाम भीना है ॥
आश्रव-बँध मेंटि के अघाति च्यारि झारि के,
उत्तर-गुण पुरि करि मैल मेंट दीना है।
जस तपै अगनि डार सरव कीट-परजार,
उज्ज्वल कनक होत स्वच्छता नवीना है ॥२८॥

दोहा

द्रव्य तथा परजाय कूँ, अर्थ कहत विद्वान।
वचन शब्द जिन श्रुतन के, विंजन-सो पहिचान ॥२९॥
काय वचन मन जोग है, प्रथम भिन्न पलटान।
अर्थ योग व्यञ्जन तना, सो विचार तू जान ॥३०॥

सवैया बाईसा

मोक्ष पद के अभिलाषि जिनमत श्रुत भाषी,
जिन रस चाखि भोग तृष्णा सब नाषी है।
सुना-घर कोटर निर्जन-मसान वन नदी,
पुलिन शैल भूमी आसन दृढ भाषी है ॥
सुखासन पलिकासन अनमिष चखु नाक धरे,
मन्द-मन्द सास गये निज रस चाखी है।
उदै मोह जोर इच्छा चित्त व्यक्त होत,
ताँहि तोर-मोर मुनि धर्म दृढ राखी है ॥३१॥

जो लौं व्यक्त राग तो लौं है धर्म-ध्यान,
माँहि करि विशुद भाव मोह कुँ दबावै है ।
अपूर्व-कर्ण होत तब होत अव्यक्त राग,
तातैं अर्थ भोग श्रुत वच पलटावै है ॥
वच योग अर्थ फिरै गेय शुदि ताँहि टरै,
ताको जोर हनि अव्यक्त राग जावै है ।
नहि अव्यक्त राग भाषै ग्यान सर्व जाग,
सब कर्म नाश शिव मन्दिर मुनि जावै है ॥३२॥

॥ इति शुक्लध्यान ॥

निर्जरा अनुक्रम भेद ग्यारा, कवित्त (२०-२०)

प्रथम मिथ्याती अनिवृतकर्ण करता,
यातैं अधिक उपशम-दरसी करत है ।
अग्र-अग्र संख्यातासंख्यात गुणी,
कहुँ ऐसे जैसे निर्जरा बनत है ॥
श्रावक विरतमान वियोजन अनँतान,
क्षायक-दर्शन श्रेणि-उपशम रचत है ।
उपशम कषाय क्षय श्रेणि मिल क्षिण मोह,
केवलि-जिनेश घात कर्मनि हरत है ॥३३॥
असंजित सम्यक्त्वि श्रावक देशवरति,
परमत अपरमत्त महाव्रत थान में ।
कौन हुँ थान इन दर्शमोह सत भाँति,
तीन फुनि हनि चढ़ श्रेणि पै विधान में ॥
नौमें छतिस दुर दश में करि लोभ चुर,
द्वादश में सौर हर द्विज शुक्लान में ।
तेर गुण तेर जरि बहतर अजोग टरि,
ऋधि-सिध होय जाय राज शिवथान में ॥३४॥

अष्ट कर्म के नाश से
सिद्धों के आठ गुण प्रगटे हैं,

ताका कथन, सवैया बाईसा

मोह के गये तैं होत प्रगट अनन्त सुख,
ज्ञानवर्ण गये ज्ञान अनन्त प्रकाश है ।
दर्शवर्ण जात दर्श अनँत करि अँतराय,
मिटे सकति अनन्ती वीर्य विलाश है ॥

वेदनि विनाशवे तैं अव्यबाध होत गुण,
आयु के गये तैं अवगाहन विकास है।
गोत्र के गये तैं होत अगुरुलघुत्व गुण,
नाम कर्म गये तैं सूक्षम गुण जास है ॥३५॥

सिद्धों में; क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र,
प्रत्येक बुद्ध-बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर,
संख्या, अल्पबहुत्व, साधनों का कथन, सवैया बाईसा

आय प्रदेश में आकाश के प्रदेश में,
तथा जन्म कर्म-भूमि पंदरै धरत है।
देव उपसर्ग करै ढाइ-द्वीप सब फिरै,
ये ताई क्षेत्र जा सिद्धालय भरत है॥
भरत-इरावत उपजे चतुर्थकाल जान,
तथा पञ्चम काल हूँ में जीव तरत है।
और क्षेत्र मोक्ष नाँहि होत सदीव जीव,
विदेह तैं सदीव होय देह कुँ हरत है ॥३६॥

और तीन गति में न काहुँ विध सिद्ध होत,
सिद्ध गति होती है मनुष्य गति पाय कैं।
द्रव्य तैं पुरुष लिंग होत सिद्ध-सिध होत,
भावन में होत वेद तीन कुँ खिपाय कैं॥
अँतरंग-बाह्य निवार निर्ग्रन्थ होय सिध,
यथाजात रूपधरि दीक्षा जिन लाय कैं।
तीर्थङ्कर केवली तैं होत सिद्ध होत,
आन मुनि सामान्य हि केवल उपजाय कैं ॥३७॥

पाँचूँ ही चारित तैं होत सिद्ध-सिध गति,
भये फुनि सिद्ध-सिध चारित्र अभाव है।
स्वयं सिद्ध बोध पाय होत प्रतेक सिद्ध,
सिध होत केते उपदेश कै उपाय है॥
पञ्च चार तीन ज्ञान पाय करि होत सिध,
सिद्ध भये तैं एक केवली सुभाव है॥
पाँच-सै पच्चिस जघन साढ़े तीन हाथ।
ऊन अवगाहना काय का फैलाव है ॥३८॥
अठोत्तर-सौ एक समै हि उत्कृष्ट जघन,
एक समै एक मुनी सिद्ध गति पात हैं।

उत्कृष्ट षट् मास समै एक जिय सिध गति,
एक जीव जान माँहि अन्तर लहात हैं।
सब हि तैं अल्प समुद्रन में तैं सिध भये,
तातैं संख्यात गुणी द्विपनि तैं जात हैं।
पशु गति आय स्तोक तातैं जघन मनु थोक,
तातैं संख्यात घन नर्क स्वर्ग आत हैं ॥३९॥

प्रश्न, सोरठा

जिनकी आदि न कोय, तिनका अन्त न चाहिये।
मुक्ति गये सिध होय, कर्म नाश तिन किम किया ॥४०॥

उत्तर, सोरठा

यो एकान्त न कोय, आदि नाँहि तिस अन्त नहि।
जरे अंकुर न होय, सन्तति मिट जा बीज की ॥४१॥
ध्यान अगनि की झार, कर्म बीज जिनका जरै।
तब सन्तति संसार, मिटैं बहुरि जन्म न घरै ॥४२॥
द्रव्य कर्म परजाय, हो है पुद्गल कर्म की।
सो ही तो मिट जाय, ज्यों का त्यों पुद्गल रहै ॥४३॥

प्रश्न, सोरठा

द्रव्य कर्म मिट जाय, होवै चेतन मोक्ष तब।
भाव कर्म उठि जाय, अंक ज्यों का त्यों हि रहैं ॥४४॥

उत्तर, दोहा

क्षय-उपशम अर औदयिक, फुनि उपशम परभाव।
भव परिणामी जुत मिटै, होत मोक्ष दरसाव ॥४५॥

प्रश्न, दोहा

शिव में सिद्ध अमूरतो, निराकार है सार।
बिनाकार हि अभाव-सा, ताका कौन प्रकार ॥४६॥

उत्तर, दोहा

जो शरीर हरि शिव भये, ता शरीर आकार।
अमूरतीक प्रदेश है, नित्य निरंजन सार ॥४७॥

प्रश्न, दोहा

देह प्रमाण वशि कर्म थे, जीव लोक आकार।
कर्म गये क्यों न भये, लोक मान विस्तार ॥४८॥

उत्तर, दोहा

नामकर्म संयोग तैं, था सकोच विस्तार ।
ताके छूटत रह गया, के जाँहीं परकार ॥४९॥

प्रश्न, दोहा

ज्यों का त्यों आकार थिर, बिन निमित्त रह जाय।
ऊर्द्ध गमन कैसे भया, और दिशा ना जाय॥५०॥

उत्तर, दोहा

ऊर्ध्व गमन स्वा-भाव निज, कर्म बन्ध दवि जाय ।
खुले बन्ध करि ऊर्ध्व गति, लोक अन्त लौं जाय ॥५१॥

सोरठा

प्रथम पूर्व उपयोग, दूजे होत असंग तैं ।
तीजै बन्ध वियोग, चौथे गति परणमन तैं ॥५२॥
चार होत ये पाय, ऊर्ध्व गमन निश्चय करै ।
सो दृष्टान्त बनाय, भाषत हूँ जिन सूत्र तैं ॥५३॥
चेष्टा तजै कुमार, तोउ चाक कुछ फिरत है ।
त्यौं पूरव संस्कार, ऊर्ध्व गमन चेतन करै ॥५४॥
तुम्बी लागे चेंप, छुटे चेंप तुम्बी तरै ।
रहित कर्म के लेप, तरै साधु भव जलधि तैं ॥५५॥
झींझा तड़के बीज, ऊँचा बढ़त इरण्ड का ।
कारमाण तन क्षीन, चेतन ऊँचे कूँ चढ़ै ॥५६॥
रुकै पौन सञ्चार, अग्नि शिखा ऊँची चढ़ै ।
ऊँचा जो निरधार, मिटै आयु गति कर्म कै ॥५७॥

प्रश्नोत्तर, दोहा

लोक अन्त में क्यों थमैं, उत्तर द्यो समझाय ।
धर्म द्रव्य के निमित्त बिन, आगे नाँहीं जाय ॥५८॥

ध्यान विषैं चर्चा, दोहा

इकाग्र-चित के सेवने, बोधमती के ध्यान ।
और-और छिन-छिन द्रवी, आन-आन सरधान ॥५९॥

चौपई

भू जल तेज पवन आकाश, पाँच भूत मिल ज्ञान प्रकाश ।
चारवाक मानै जड़ ज्ञान, ताकै उपजै कैसे ध्यान? ॥६०॥

वेदान्ती है द्वैत न कोय, एक ब्रह्म सब मानैं लोय ।
शिव संसारी एक हि गिनै, ताकै ध्यान काहि का बनै ॥६१॥
अज्ञ पुरुष ज्ञानी परधान, ताहूँ कूँ जड़ कहै अज्ञान ।
ज्ञानी जड़-जड़ चेतन कहैं, ऐसे साखि ध्यान किम गहैं ॥६२॥
मीमांसक के कर्त्ता कर्म, बाह्य क्रिया में मानैं धर्म ।
शुद्ध अभेद बनै नहि जुदा, ताकै ध्यान होइ नहि कदा ॥६३॥
द्वैत कहै ईश्वर कर्त्तार, भक्ति करै तें उतरैं पार ।
आकुल खेद भक्ति में घना, ध्यान कौन विधि आगे मना ॥६४॥
चित एकाग्र कहो किम बनै, और-और क्षण-क्षण में गिनै ।
शून्यमती अरु बोध अज्ञान, ताकै उपजै कैसे ध्यान ? ॥६५॥
कितने भेद गुणी गुण ठान, देह आतमा कितने मान ।
मूसलमान विपर्जै कर्म, कितने मानैं हिंसा धर्म ॥६६॥
इनमें आरति रुद्र हि रहै, धर्म-ध्यान कैसे निरबहै ।
गौण-मुख्य जैनी सब गहै, धर्म-शुक्ल को ध्या शिव लहै ॥६७॥
संसारी बिन तन नहि होय, जड़-पुद्गल बिन तन नहि कोय ।
तन नो-कर्म आयु सम्बन्ध, निज अज्ञान जिय अलड्या बन्ध ॥६८॥
द्रव्य नित्य क्षण-क्षण परजाय, स्वसंवेदन प्रतक्ष लखाय ।
बोधमती कै क्षण की मान, नित्य-ऽनित्य जिनमत में जान ॥६९॥
जुदा-जुदा सब के सुख ज्ञान, जुदा-जुदा जीवनि अर हान ।
है जिय जुदे महासत एक, जैनमती इम करत विवेक ॥७०॥
कर्म अनादि विपाक अभाव, जिय परिणामी शुद्ध सुभाव ।
जग जन सहित सुभाव विभाव, पुरुष प्रधान कहै शठ चाव ॥७१॥
कर्म निमित जिय उपजै भर्म, जीवनि मति ह्वै पुद्गल कर्म ।
कर्त्ता कर्म अशुध उपचार, मीमांसक मानै निरधार ॥७२॥
ईश्वर भक्त भोग सुख करै, निज अनुभव सब कर्म न हरै ।
जैन गहै निश्चय-व्यौहार, एक हि मानै द्वै जगवार ॥७३॥
नाम परोजन संख्या मई, भेद गुण-गुणी भाषो सही ।
परदेशा में भेद न बनै, स्याद्वाद मत ऐसा भनै ॥७४॥
देह आत्मा कहत विचार, असद्भूत करि मुख-विवहार ।
निश्चय आतम है शुधज्ञान, दोऊ में राखो परमान ॥७५॥

॥ इति प्रश्नोत्तर ॥

ध्याता-ध्यान-ध्येय, दोहा

ध्याता ध्यानरु ध्येय फुनि, वरणूँ चार प्रकार ।
ध्याता मुनि-श्रावक व्रती, विषय-भोग परिहार ॥१॥

ध्येय परमेष्ठि आतमा, निज तत्त्वारथ भाव ।
ध्यान चित्त का रोकना, तजि कैं और उपाव ॥२॥
फल कर्मनि की निर्जरा, धर्म-ध्यान सुर होय ।
शुक्ल-ध्यान सूँ कर्म हरि, पहुँच जाय शिव लोय ॥३॥
जो जिन-आगम नित सुनै, बहुश्रुत संगति लीन ।
सो हित अनहित जानिकैं, लैं समकित परवीन ॥४॥
भरत क्षेत्र कलि-काल में, शुक्ल-ध्यान ह्वै नाँहि ।
मुनि-श्रावक धर्म हि गहै, फुनि भवि धरि शिव जाँहि ॥५॥
अपनी शक्ति सँहाल कर, जोग हि ले अब धार ।
करो ध्यान एकान्त ह्वै, हरो कर्म उलझार ॥६॥

प्रश्न, चौपई

बिन आरम्भ पुण्य नहि होय, हिंसा बिन आरम्भ न कोय ।
श्रावक बिन आरम्भ न जोय, तातैं धर्म कौन विधि सोय ॥७॥

उत्तर, चौपई

हिंसा अल्प पुण्य अति महा, श्रावक धर्म माँहि जिन कहा ।
देशव्रती अर वरत महान, नादि काल के धर्म विधान ॥८॥

शास्त्र निर्णय, दोहा

लिखना पढ़न पढ़ान का, सब ग्रन्थन का सार ।
कुछ थोरा-सा लिखत हूँ, भविजन का हित सार ॥९॥
जन्म-मरण दुख खान जग, जे लखि भये उदास ।
ते पूँछै उद्यम सफल, धारन शिवपुर वास ॥१०॥
दुखित निरखि कै गुरु कहे, तन धन तिय जग मूल ।
प्रथम ममत तन तैं तजो, रहो विषय प्रतिकूल ॥११॥
भूख-प्यास सों घाम की, तन तैं बाधा होत ।
तन तैं न्यारा निज लखै, चिदानन्द उद्योत ॥१२॥
तन जड़ है पुद्‌गल-मई, ज्ञान-मई तू राम ।
नाम जात गुण भिन्न सब, एक क्षेत्र विसराम ॥१३॥
चिदानन्द सरधान बिन, तन धन मन सरधान ।
मरना पिटना जीवना, रहत चतुर गति थान ॥१४॥
तन पौषै भरमत रहौ, बहुरि परै रति काम ।
ताँहि निवारण कारनैं, राचत हो तुम वाम ॥१५॥
वाम धाम मल-मूत का, सेवत नाशन काम ।
सों न घटै अधिका बढ़ै, घटै पुण्य बल दाम ॥१६॥

धाम वाम के जतन में, सूझै धर्म न लेश।
छल-बल नित करते रहो, भव-भव बढ़त कलेश ॥१७॥
तन हित तिय धन रचत हो, तिय में पाप विशेष।
मिटत नाँहि फरमान नित, परकर बढ़ै अशेष ॥१८॥
परकरके उपचार में, भूल जात तन बाध।
भूख प्यास-सी ना गिनौ, साधो काज असाध ॥१९॥
खाय-पीय न्यारे कुटुम, अब अरि परभव माँहि।
आधि-व्याधि तुम दुख सहो, कोऊ साथी नाँहि ॥२०॥
तिय लाये चिन्ता बढ़ै, धन लाये बल थाय।
बल पाये आकृति बढ़ै, तब दुर्गति में जाय ॥२१॥
सर्व त्यागवो खूब है, ध्याना आतम राम ।
यातैं सब बाधा हरै, बसैं सिवालय धाम ॥२२॥
सब तजिवो न बनत तो, त्याग अन्याय जरूर।
हिंसा अनृत तसकरी, परतिय परिग्रह भूर ॥२३॥
जैसी शक्ति तिसा करो, पाँच पाप का त्याग।
फुनि प्रतीत सरधा करो, आतम देह विभाग ॥२४॥
अनँत काल भव-भव फिरत, पाई नर गति सार।
तातैं गाफिल मत रहो, करल्यो हित निरधार ॥२५॥
अल्प अधिक में मन्दमति, लिख्यो सो लीज्यो शोध।
लिखो-पढ़ो अनुराग धर, हरो अशुभ अवरोध ॥२६॥
सुब सबसैं जयपुर तहाँ, नृप जयसिंह महाराज।
''बुधजन'' कीनो ग्रन्थ तहँ, निज-पर हित के काज ॥२७॥
संवत ठारा-सैं विषैं, अधिक गुण्यासि वेश।
कार्तिक सुदी शशि पञ्चमी, पूरण ग्रन्थ अशेष ॥२८॥

अथ अन्त मंगल, सोरठा

मंगल श्री अरिहन्त, सिध मंगल दायक सदा ।
मंगल साध महन्त, मंगल जिनवर धर्म-वर ॥२९॥

॥ इति श्रीतत्त्वार्थ बोध ''बुधजन'' कृत सम्पूर्णम् ॥

श्रीजिन परमात्मने नमः ॥ शुभं भवत् ॥ मिति भाद्र शुक्ल ॥१२॥
संवत् ॥१९०९॥ शाके ॥१७७४॥ लिखितं पं॰ मिश्र भगवानदास
चन्द्रपुरी मधै श्री आदिनाथ जी के मन्दिर में लिखाय तैं वैसाखिया
हरकिसुन झासीवारेन नै आत्म हितार्थे परोपकारार्थे ॥श्री॥

तत्त्वार्थ बोध-शब्द कोश

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
सिवमग	मोक्षमार्ग	१	१
भान	सूर्य	१	१
गिर	वाणी	३	१
यादि-दास्ति	याददाश्त	५	१
अमानत	धरोहर	६	१
गाव	कहौ	६	१
पादाय	पद्ममय	७	१
फबै	शोभा युक्त	१०	१
परतखि	प्रत्यक्ष	१०	१
रुज	रोग	१०	१
तडाग	तालाब	१०	१
सैल	पर्वत	१०	१
दहे	जले	११	१
नै	नहीं	१२	१
भागन	भाग्य से	१२	१
त्रिया	स्त्री	१३	२
तात	पिता	१४	२
वारी	जल	१४	२
सठ	मूर्ख	१४	२
कुच	स्तन	१५	२
परसन	छूना	१५	२
विस्फोटक	हरपीज फोड़ा	१५	२
माँचै	खेलना	१६	२
छतैं	नष्ट होने पर	१६	२
अनछतैं	नष्ट नहीं होने पर	१६	२
आगल	सांकल	१७	२
तिय	स्त्री	१७	२
वाटिका	बगीची	१७	२
हाटिका	बाजार	१७	२
ईत	दुःख	१८	२

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
भीत	भय	१८	२
दीसत	दिखता	१९	२
सिरैं	प्रमुख	२१	३
मोष	मोक्ष	२२	३
कोष	खजाना	२२	३
आँन	अन्य या दूसरे	२३	३
स्यात	पर्याय	२३	३
चवैं	च्युत मरण	२५	३
ठारा	अठारह	२६	३
केव	कितने	२८	३
भेव	भेद	२८	३
किरात	भील	२९	३
मत-जिन	जैन धर्म	३१	३
निरधार	निश्चय	३१	३
विषै	विषय	३२	४
रै	धन	३२	४
मरि	प्लेग जैसा रोग	३२	४
को	कोई	४२	४
आरस	आलस	४५	५
अजिथा-जिथा	अयर्थात-यर्थात	४७	५
समै-मिथ्यात	सम्यक्-मिथ्यात्व	५०	५
खै-उपशम	क्षयोपशम	५१	५
खैन	क्षायिक	५१	५
खै	क्षय	५१	५
पींदे	बर्तन का तला	४५	५
अभार	भार रहित या अभाव	६०	६
भाखत सूर	आचार्य कहते हैं	६१	६
जाहर	प्रगटरूप	६६	६
अभवि	अभव्य	६९	६
परनाम	परिणाम	७०	६
संग्या	नाम	७०	६
समै	समय	७१	६
और	फिर	७२	६

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
बाके-याके	उसके-इसके	७३	७
अमिल	नहीं मिले	७४	७
ठाम	स्थान	७५	७
ठाम	स्थान	७५	७
नारि	नाड़ी	८१	७
भरथ	भरत	८३	७
आबाध	अन्तरकाल	८४	७
समै-सार	समयसार	८४	७
मोख	मोक्ष	८६	७
कोइक	कोई एक	८९	८
नै-निछेप	नय-निक्षेप	९४	८
परमान	प्रमाण	९४	८
प्रतखि-परोखि	प्रत्यक्ष-परोक्ष	९५	८
सकल विसद	सर्वदेश, विशाल-विराट	९५	८
विकल	एक देश, अंश	९७	८
सांविवहार	परोक्ष मतिज्ञान का नाम	९७	८
परमानता	प्रमाणता	९९	८
सुवार्थ	स्वार्थ	९९	८
सधि	साध्य	१०१	८
इन्द्रा	इन्द्रियाँ	१०४	९
पन-ताय	पाँच उसके	१०५	९
जुगम	दोनों	१०५	९
आयत	पूज्य	१०६	९
सला	सच्चा	२	९
ततषिन	तत्क्षण	३	९
सेवग	सेवक	४	९
मो	मेरे	७	१०
सोय	सोचकर	८	१०
अतीव	बहुत	१०	१०
ताका	उसी का	१२	१०
मही	पृथ्वी	१४	१०
जाग	जगह	१४	१०
जिहान	संसार	१७	१०

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
सति	सत्य	२०	११
मुये	मृत्यु	२४	११
नाह	नहीं	२४	११
गाय	कहते	३०	११
मुज	मुझ	३२	१२
सारि	समस्त	३३	१२
होस्य	होऊँगा	३३	१२
गाय	गैया	३४	१२
सेसा चार	शेष चार नय	३७	१२
चकित-गँवार	देखत-मूर्ख	४७	१३
वाकि	उसी की	४७	१३
ऐन	इस प्रकार	५०	१३
मुषि	मुख्य	५१	१३
गूजरि	ग्वालिन	५१	१३
कलिप	भेद	५३	१३
परदेश	प्रदेश	५५	१३
बहुगन	बहुत प्रकार	५५	१३
मुख	मुख्य	६०	१४
तुष-माष	छिलका-दाल	६१	१४
चाय	इच्छा	६२	१४
कुघाट	खोटा रास्ता	६३	१४
निगैवान	निगरानी करने वाले	६३	१४
रिन्द	शत्रु	६३	१४
खलासी	मजदूरी	७४	१५
विहंग	पक्षी	८५	१६
कली-काल	पञ्चम काल	८९	१६
वर	वड़ (वट) वृक्ष	१०१	१७
द्वारि	दरवाजा	१०१	१७
रोडी	पत्थर	१०१	१७
कुमारि	कन्या	१०१	१७
पितर	पितृ-पक्ष	१०२	१७
दिहाडी	दरवार	१०२	१७
बासिक	नाग-सर्प	१०२	१७

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
गजवदन	गणेश	१०२	१७
चौथि	करवा चौथ	१०३	१७
कनागत-दान	पिण्ड-दान	१०३	१७
साधार	कांक्षा सहित	१०३	१७
भोपा	झाड़-फूँक वाला	१०४	१७
जिवन	भण्डारा कराने वाले	१०३	१७
फकीर	मुस्लिम-भिक्षुक	१०४	१७
वाजी	घोड़ा	१०६	१७
अरो	शत्रु	१०६	१७
जावत	जितनी	२	१८
शिवकन्त	मोक्षपति	३	१८
छै	नष्ट	९	१९
अगन-तताई	अग्नि की गर्मी	९	१९
गौन	गौण	१२	१९
भोत	बहुत	१७	१९
साखि	साक्षी-गवाह	१८	१९
कुञ्जर	हाथी	२०	१९
को-को	क्या-क्या	२५	२०
पुँनि	पुण्य	२६	२०
नेत	नेता-धर्माधिकारी	२६	२०
माय	माता	२८	२०
वरतते	वर्तमान	३८	२१
पातिग	पाप	४०	२१
वरन	आकार	४१	२१
पूतरी	पुतली	४२	२१
पख	पक्ष	४३	२१
घट	घड़ा	४३	२१
पट	वस्त्र	४३	२१
चतु-इन्द्री	चक्षु-इन्द्रिय	४	२२
गे	ज्ञेय	५	२२
आव	आयु	२	२२
परस	स्पर्श	१६	२३
परवेश	प्रवेश	१६	२३

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
वाल	जलाकर	१८	२३
दुष	दुख	१९	२३
पैसे	पहुँचे	१९	२३
संसै	संशय	२०	२३
फटक	स्फटिक	२१	२४
बाहुँडै	उसी स्थान में	२१	२४
सोय	विश्राम	२१	२४
समुद	समुद्र	२४	२४
क्षय	व्यय	२७	२४
थिति	ध्रौव्य	२७	२४
पास-पुरान	पार्श्व पुराण	२९	२४
करन	करने के लिए	२९	२४
षट् कूणी	छह कोण वाला	४	२४
च्यार-कर	चार हाथ	१४	२५
सूल	पैंना	१६	२५
अमिलता	जो मिला नहीं है	२३	२६
थिर	ध्रौव्य	२५	२६
उतपति	उत्पत्ति	२५	२६
छैकार	व्ययरूप	२५	२६
तेतैं	उतना ही	२६	२६
वेश	रूप	२६	२६
कोविद	विद्वान	२९	२६
गोत	परम्परा	२	२७
समयान	समय बराबर	७	२७
जिते	जितने	११	२८
परस-पर	परस्पर	११	२८
परमित	प्रमाण	१५	२८
माँदल	मृदंग	२१	२८
उनहार	उपमा वाला	२१	२८
गोमूत पै	गाय के मूत्र के रंग समान	२५	२९
मूँगन-सी वाय	हरी मूँग के रंग समान वायु	२५	२९
भरमै	भ्रमण करती हुयी	२५	२९
वल	वलय	२६	२९

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
सुतै	अपने ही	३०	२९
रजू	राजू	३८	३०
सेत	श्वेत	३९	३०
असि	तलवार	४०	३०
पोणा	पौने	४१	३०
हेर	देखो	१	३०
ख्यारा	खारा-नमकीन	२	३०
उदधिन	समुद्रों में	५	३०
दिखनोत्तर	दक्षिण-उत्तर	८	३०
मील	मिलते हैं	१०	३१
विनान	फैले हैं	१८	३१
हयरनि	हैरण्य	२१	३१
फिरन	परिवर्तन	२२	३१
पन	पाँच	२३	३१
भाल	जानना	२४	३१
ढाल	गोलाई में	२४	३१
कौन	कोंने	२७	३२
अछेह	निरन्तर	३४	३२
मनौ	माना है	३६	३२
हाल	तुरन्त	३८	३२
गिलै	गले	४८	३३
खन्धा	स्कन्ध	६१	३४
असितन	अस्तित्व	४	३५
प्रनवन	परिणमन	९	३५
पिलिटिनिता	परिवर्तन	१०	३५
दूणिक	द्वि अणुक	१३	३५
अनित	अनित्य	२१	३६
मपै	मापना	१३	३७
प्रतषि	प्रत्यक्ष	१८	३७
मग	मार्ग-रास्ता	१	३७
बुध	बौद्ध	५	३८
क्लीव	नपुंसक	७	३८
आकर्षै	खींचना-खिचाव	१०	३८

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
वासना	गन्ध	९	३९
मद माय	मान माया	१०	३९
भुँजाय	जलाकर-नष्टकर	१६	३९
पर-ताप	दूसरों को सताना	२९	४०
दौ	अग्नि	३४	४०
ताल-पाल	तालाब का किनारा	३४	४०
पुसप	पुष्प	३७	४०
तिरजग	तिर्यञ्च	३९	४१
समाज	समूह	४२	४१
पार का	दूसरों का	४४	४१
चावत	असमय मृत्यु	४४	४१
पाथर	पत्थर	४९	४१
गोय	छिपाना-चुराना	४९	४१
सकलाई	प्रशंसा	५१	४१
मय	माया	५३	४१
पुस्त	कपड़े पर बना चित्र	६०	४२
मुखि-मुखि	मुख्य-मुख्य	६६	४२
निकेत	स्थान या घर	६६	४२
जिन-छबी	जिन प्रतिमा	६८	४२
समय	शास्त्र-ग्रन्थ	६८	४२
सुवाय	सुलाना	७२	४३
विनज	व्यापार	७४	४३
कैं	अथवा	७६	४३
परगै	परिग्रह	७९	४३
भै	भय	८२	४३
ढीट	गलत को सही करने वाला	८३	४४
लवार	झूठा	८३	४४
गुह्य-अंग	गुप्त-अंग	८५	४४
आय	आयु	९०	४४
बरजै	मना करे, निषेध करे	९५	४४
अगूढ	जानकर, प्रगट	९५	४४
को	कोई भी	९७	४५
निरधार	निश्चित	९७	४५

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
है-गै	हाथी-गाय	९८	४५
अखजा	अखाद्य-न खाने योग्य	१०१	४५
बोरत	डुबाता	१०३	४५
निहोरि	आग्रह	१०८	४५
वंस	परम्परा	१	४५
वारि में लोन	जल में नमक	२	४५
लोद	गोंद	३	४५
मजीठ	पक्का	३	४५
पटद्वार	दरवाजे का परदा	८	४६
प्रतिहार	द्वारपाल-चौकीदार	८	४६
सिता	शक्कर	८	४६
गहल	मूर्च्छा	८	४६
खोढ़ा	लकड़ी का बन्धन, बेड़ी	९	४६
पिरजापाल	प्रजापत या कुम्भकार	९	४६
भण्डारी	खजाञ्ची	९	४६
मुनौ	मानों	२०	४७
धरीर	धारण करें	२२	४७
चाल	विहायो गति	२३	४७
सन्तक	स्वस्ति	२८	४७
सीला	ठण्डा	३०	४७
गाय	कही	३१	४७
सितामृत	शक्कर-अमृत	४२	४८
काञ्जी	करञ्ज फल, कञ्जी	४२	४८
चितर	चित्र	५	४९
अलीक	खोटे मार्ग	८	४९
ग्यायक	ज्ञायक	११	५०
वरतता	वर्तमान	३०	५१
कदली-घात	अकाल मरण	३३	५१
भुक्त-प्रत्यग्या	भक्त प्रतिज्ञा	३४	५१
परीष	परीक्षा	३७	५२
परतेय	प्रत्यय यानि आश्रव	५	५२
सुलसी	सुर-सुरी	८	५२
आस्था	अवस्था	१३	५३

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	**अर्थ**	**छन्द संख्या**	**पृष्ठ संख्या**
करषै	क्षीण करे	१९	५३
सुरत	श्रुत	२२	५३
अखै	अखण्ड	२३	५३
षायक	क्षायिक	३३	५४
पञ्चाखि	पाँचों इन्द्रियाँ	४०	५४
पावक	अग्नि	१	५५
पौन	वायु-हवा	१	५५
विरख	वृक्ष	३	५५
व्योमचर	नभचर	८	५५
आरज	आर्य	१३	५५
हीवरा	हृदय में	१४	५६
वार वयार	पानी वायु	२८	५७
तिरग	तिर्यञ्च	३३	५७
भेस	स्वरूप	१	५७
अनागति	भविष्य की	२९	६०
तिरजग	तिर्यञ्च	३५	६०
कलित	सहित	४२	६०
आरसवन्त	आलसी स्वभाव	४९	६१
तिरस	त्रस	५३	६१
को	कोई	५८	६१
संग	साथ में	५८	६१
जोतिग	ज्योतिष	६३	६२
क्षिर	खिर-मरकर	६	६२
लोय	लोक	६	६२
त्रिजग	तिर्यञ्च	६	६३
दुव	दो	८	६३
अप	जल	४	६४
बरसा	वर्ष-साल	५	६४
मिनष	मनुष्य	१५	६५
आनों	प्राप्त करो	१५	६५
निरमूल	मूल्य रहित	१५	६५
विरिया	समय	३	६६
परमत	प्रमत्त	५	६६

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
शठ	मूर्ख	१०	६७
नैन-बिन	अचक्षु	१३	६७
हठकर	जबरन	१९	६७
मिनख आय	मनुष्य आयु	२८	६८
विपता	विपदा	३७	६९
अनान	अज्ञान	७	७०
तिजग	तिर्यञ्च	१७	७०
साद	सादि-शुरुआत	१	७१
सूतो	सोता हुआ	३	७२
दाघ	रोग	५	७२
भिराय	लड़ाना	१०	७२
गैर	गैल-रास्ता	११	७२
विटप	वृक्ष	१५	७२
विषम	कठिन	१६	७२
दूभ	दूर्वा	१७	७२
मार	काम	२०	७२
अनिमिष दृग	टिमकार रहित आँखें	१०	७५
आनन	मुख	१६	७५
तिरषा	प्यास	१८	७५
पातक	दोष-पाप	२२	७५
कनिष्ट	छोटा या हीन	४२	७७
अयल	ऐलक जी	४५	७७
परीसा	परीषह	४९	७७
असक	असक्य	४९	७७
क्षय-उपशम	क्षयोपशम	९	७८
कजली	राख-कालापन	१७	७९
तताय	गर्मी	१८	७९
विरतन्त	वृतान्त-कथानक	२०	७९
परमत	अन्यमत	३६	८०
वेद	ज्ञान	३६	८०
वय	अवस्था-आयु	३७	८०
पट-भूषण	वस्त्र-अलंकार	३७	८०
कथाय	कहे हैं	४३	८१

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
सरता	नियम से	५०	८१
गरव	मान-गर्व-घमण्ड	५४	८१
रहसि	रहस्य	५७	८२
उछाय	उत्साह	५७	८२
वशु परे	बस में होकर	५९	८२
साखि	साक्षि	६१	८२
प्रासुक	प्राणी रहित	६५	८२
अनसर	नहीं बनें तब	६५	८२
पातर	पात्र	६७	८३
तकिवौ	घूरना-देखना	६८	८३
हरै	दूर करें, त्यागें	२	८३
पीलू	पीपल	६	८३
दुदल	कच्चे दूध से जमें दही में दाल	६	८३
ताया	तपाया	७	८३
लूणियाँ	मख्खन	७	८३
जम्याजल	बर्फ	७	८३
संथान	अचार-मुरब्बा	७	८३
अखान	खाने योग्य नहीं	७	८३
जल-घट	पानी का स्थान	१०	८३
अघ	पाप	१०	८३
अँन	अन्न	११	८४
छाज	सूपा, अनाज फटने का यन्त्र	१४	८४
ताखड़ी	तराजू	१४	८४
झारि	साफ करके	१५	८४
कन	कंकड़-कचरा	१५	८४
सीरनी	गुड़ की चासनी	१७	८४
जिवान्या	जीवाणी	१९	८४
वसु जाम	चौबीस घण्टे	२०	८४
काचा दुगध	बिना तपा दूध	२१	८४
खाजे	खाना चाहिए	२१	७४
वरण-वास	रंग-गन्ध	२२	८४
लौंन	नमक	२३	८४
राब	मट्ठे की कड़ी	२३	८४

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
निशि	रात्रि	२५	८५
अखादि	न खाने योग्य	२७	८५
विषई	व्यसनी	२७	८५
अन्तजवत्	शूद्र समान	२८	८५
प्रछन	गुप्त या छिपि हुयी	२९	८५
परै	शयन करे	२९	८५
द्योस	दिवस	२९	८५
वन्दीजन	गाय-भैंस, पशु, पक्षी आदि	१	८५
सीया	सिला हुआ	२	८५
लाहना	निमन्त्रण या भेंट में	४	८५
शेष	बचा हुआ	४	८५
सपरस	स्पर्श	५	८५
जिय	जीव	५	८५
सयान	लिटाकर	७	८५
ठाठ	वैभव	९	८५
निजालय	अपने घर	१२	८६
बाधी	बधिया-नपुंसक	१६	८६
डाह	गर्म शलाका से जलाना	१६	८६
दौ	अग्नि	१६	८६
ऊपला	कण्डा	१७	८६
कोला	कोयला	१७	८६
कसूमा	रेशम	१८	८६
आल	कपड़ों का कलप	१८	८६
किरम	किरमिच रंग	१८	८६
सावन	साबुन	१८	८६
खारी	क्षार-सोड़ा	१८	८६
खाल	चमड़ा	१८	८६
सहुरादि	शंखिया आदि	१८	८६
कुवनिज	खोटे व्यापार	२०	८६
अते	इतने	२०	८६
ले-पे	लेह-पेय	२१	८६
देस	समय	२१	८६
पोढ	सोना-लेटना	२३	८६

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
साव	स्वामी-मालिक-सेठ	२३	८६
पचखान	प्रत्याख्यान या त्याग	२८	८७
पोखै	प्रोषधोपवास	१	८७
अनीत	नीति रहित	३	८७
धीज	धैर्य	४	८७
मुनिये	मानिये	४	८७
मूवा	छूटा	४	८८
खरका	आहट	६	८८
धूजत	डरना	६	८८
व्योंत	बढ़ना/अधिक	६	८८
खोसि	छुड़ाकर	६	८८
खुवारी	बदनामी-वेइज्जती	६	८८
अनारी	अनाड़ी-अजान	६	८८
परसत	छूने पर	७	८८
अह-निश	दिन-रात	८	८८
पार के	दूसरे के	९	८८
धिरक	धिक्कार	९	८८
धृक	धिक्कार	३८	८९
भोतेरा	बहुत-अधिक	११	८९
बिनसैं	नष्ट होवे	१	८९
वरती	व्रती	४	८९
माध्धिस्या	माध्यस्थ	५	८९
जावत	जब तक	७	८९
पन	पाँच	८	८९
कलपित	संकलपित	१२	९०
खेप	थोक-इकट्ठा	१३	९०
घनो	अधिक	१३	९०
रोही	रास्ता चलने वाले	१३	९०
साकेता	अयोध्या	१४	९०
चौगिरद	चारों तरफ की सीमा	१४	९०
गी	गई	१४	९०
कुमाई	कुमाता	१४	९०
सुतो	पुत्र, स्वतः या अपने आप	१४	९०

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
परेखो	दूढो	१४	९०
सहि राय	सच्ची सलाह	१४	९०
शास्त्र-बँचते	शास्त्र-ग्रन्थ वाँचकर	१४	९०
करी	हाथी	१६	९०
मृगराज	सिंह	१६	९०
पार	दूसरे	१७	९०
हिंस	मारने योग्य	१९	९१
गोपि	गुप्त	२०	९१
सोद	शुद्ध	२०	९१
नाज	अनाज	२१	९१
परतखि	प्रत्यक्ष	२१	९१
वन्या	बनाकर	२८	९१
राय	राजा	२८	९१
गारी	गाली-असभ्यवचन	२९	९१
विडारै	दूरकरे	३०	९१
कँदा	कन्धा	३०	९१
रार	लड़ाई	३१	९२
अजो	आज भी	३१	९२
गरजै	जरूरी-मजबूरी	३१	९२
इस्या	इस प्रकार के	३४	९२
छती	हानि	३५	९२
भो	होती है	३६	९२
आँच	गर्मी	३६	९२
नातर	नहीं तो, अन्यथा	४०	९३
तहकीक	जानकारी	४१	९३
वाट	रास्ता	४८	९३
परे	दूर	४९	९४
भारे	तोलने में	४९	९४
हरवे	लेने में अधिक, देने में कम	४९	९४
वाट	वजन करने वाले वाले वाट	४९	९४
विञ्ज	व्यापार	४९	९४
हासिल	टेक्स-हिस्सा	४९	९४
चकित-थकित	धूमता-थका हुआ	५३	९४

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
हाटरु मन्दिर	बाजार और घर	६४	९५
रूपा	चाँदी	६४	९५
कुपि	वस्त्र	६४	९५
अलीन	अकार्य	६६	९६
वादि	व्यर्थ	२	९६
तिरजग	तिरछी	४	९६
याम	घण्टे	५	९६
काँकर	कंकड़-छोटे पत्थर	९	९७
विणजी	व्यापार	१२	९७
प्रेर	प्रेरणा	१२	९७
न्हाक	फालतू-व्यर्थ	१४	९७
सावदि	हिंसा	२१	९८
सैन	शयन	२६	९८
वर	अधिक	२६	९८
बहुबद्ध	बहु-बीजी	३०	९९
मादिक	नशीले	३०	९९
सहजन	सहजना या मुँनगा	३१	९९
आफूँ	अफीम	३२	९९
मनमोहन	मख्खन	३२	९९
नेम	नियम	३३	९९
करार	प्रतिज्ञा	३७	९९
कोल	सौगन्ध	१	१००
करस	कृष-क्षीण	५	१००
असाध	असाध्य	७	१०१
रसान	अमृत	९	१०१
खों	के लिए	९	१०१
जरत	जलती हुयी	१२	१०१
भाजै	दूर	१	१०१
भर्म	भ्रम-शंका	१	१०१
धनी	स्वामी-राजा-मालिक	२	१०१
मन-मत	स्वेच्छाचारी	२	१०१
अरै-झरै	इने-गिने	३	१०१
बूड़ै	स्वयं डूबे	४	१०१

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
उतपात	उपद्रव	५	१०१
न्होरा	मनाकर-आदरकर	७	१०२
पोखो	पोषण-पालन	७	१०२
रिछपाल	रक्षपाल	१	१०२
एक-भूवास	एक जगह रहना	१	१०२
सैना	संकेत-इशारा	२	१०३
हित	सहानुभूति-स्वार्थ	२	१०३
रहन	रहने की व्यवस्था	१	१०३
परवी	अष्टमी-चतुर्दशी	२	१०३
निदण्ड	निर्दोष	२	१०३
आपन पौं	अपने से	३	१०४
तिरजग-वृत्ती	गौचर-वृत्ति	४	१०४
सतरै	सत्तरा या सत्तरह	८	१०४
षायक	क्षायिक	९	१०४
नरकाय	नरक आयु	२१	१०५
भो	हुआ	४	१०५
मन्दिर	सुन्दर भवन	५	१०६
मत्त-करिन्द	मद वाला हाथी	५	१०६
भूरि-पयाद	बहुत-सैनिक	५	१०६
पर-दल	दूसरी सेना	५	१०६
भोर	प्रातः	५	१०६
वदि	प्राप्त	६	१०६
अस-राल	ऐसी लड़ाई	११	१०६
सराय	सराहना-प्रशंसा	१५	१०७
ससि	शीतकाल में	१८	१०७
अवदार	औदारिक	२७	१०८
उशम	उपशम	३१	१०९
बार	बारह	३५	१०९
परमत	प्रमत्त	३७	१०९
बहो	बहुत	५	११०
सत	सत्ता	११	११०
अपरमत	अप्रमत्त	१३	११०
छेद-उथापन	छेदोपस्थापना	८	११२

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
सोरै	सोलह	५	११३
सता	सत्ता	७	११३
अपेष	अपेक्षा	६	११४
पाय	भेद	१३	११६
संघन	संहनन	१९	११६
पन	पाँच	२३	११६
विकहानी	विकथा	२५	११७
सुय सापेक्षा	स्वअपेक्षा	३१	११७
वयार	वायु	३५	११८
निवैं	नब्बे (९०)	४०	११८
अतिक्रम	मन में संकल्प	४८	११९
व्यतिक्रम	संकल्प के अनुसार सामग्री	४८	११९
हीनाचार-अतिचार	सामग्री का अंश प्रयोग	४८	११९
अनाचार	सामग्री का पूर्ण प्रयोग	४८	११९
रैनि-सञ्चार	रात्रि भ्रमण	५१	११९
परति	अधिक	५	१२०
पृथक-वर्ष	तीन वर्ष से अधिक नौ वर्ष से कम	६	१२०
वेता	जानकार	६	१२०
वठोर	उसी जगह	९	१२०
अखै	अक्षय-क्षय रहित	१२	१२०
पर्म	परम-उत्कृष्ट	२	१२०
असी	इस प्रकार	५	१२१
चावना	रुचि द्वारा	११	१२१
अछेह	निरन्तर	१२	१२२
लगार	पीछे	१३	१२२
राँचि	रमण करे	१४	१२२
अजौं	अब आगे	१६	१२२
परिभ्रम	धूमे-चले	२	१२२
जुआँ	चार हाथ	३	१२२
मेलै	रखें	३	१२२
क्षेपै	रखें	३	१२२
अशकि	मजबूरी	८	१२३
आँन	दूसरों के	११	१२३

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
आषना	देखना	१२	१२४
छानैं	छिपकर	१३	१२४
कुचित	खोटा चित्त	१४	१२४
घनै	बहुत	१४	१२४
मोमैं	मुझ में	१५	१२४
मो	मेरे	१६	१२४
अवादा	वियोग-अलग	१८	१२४
अरनी	जहाज	२०	१२५
पग	पैर	२०	१२५
उनमत्त	स्वच्छन्द	२१	१२५
वयाव्रत	वैय्यावृत्त-सेवा	२३	१२५
पैलै	पालै	२३	१२५
खिजावै	क्रोधित हों	२८	१२५
मो-सा	मेरे समान	२९	१२५
इस्या	इस प्रकार	२९	१२५
पावस	वर्षाऋतु	२८	१२६
नावें	झुकावें	३१	१२६
को	कोई	३१	१२६
वावें	चलावें	३१	१२६
पागी	रमन करने वाले	३१	१२६
लब्धता	उपलब्धि	३२	१२७
कदै	कभी	३२	१२७
गैल	रास्ता-मार्ग	३३	१२७
सबजी	हरियाली	३३	१२७
धरणि	पृथ्वी	३३	१२७
तरु-हेट	वृक्ष के नीचे	३४	१२७
का-बस	काय बस	३४	१२७
शीतकारैं-सी दहैं	ठण्डी से जले	३४	१२७
सिला-हेर	शिला देखकर	३४	१२७
केलि	क्रीडा	३५	१२७
तना	तृण	३५	१२७
अंग	शरीर	३५	१२७
अपुन-अपुन	अपना-अपना	३६	१२७

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
आसता	आस्था-श्रद्धा	३७	१२७
जुवन	योवन-जवानी	३८	१२८
का-का	क्या-क्या	३९	१२८
चेरे	सेवक	४०	१२८
शासता	शाश्वत	४०	१२८
परकर-थोक	परिवार-इकट्ठा	४१	१२८
केता	कितना	४१	१२८
भया	भाई	४१	१२८
भाण्डा	बर्तन	४३	१२८
गटकै	गले में उतारना	४३	१२८
अटकै	रुके	४३	१२८
को-खरा	कौन सच्चा	४४	१२८
दाव	दमन	४५	१२९
गिरा	वाणी	४७	१२९
मासवासी	एक मास के उपवास वाले	५१	१३०
कौ	कोई भी	५१	१३०
तिस	प्यास	५२	१३०
गरा	गला	५२	१३०
अनभै	अनुभव	५२	१३०
निश-माह	रात्रि के अन्दर	५३	१३०
कपिनि	बन्दरों के	५३	१३०
बाजैं	जोरों से चलना	५४	१३०
दाजैं	जलना	५४	१३०
अथा	जैसे	५४	१३०
ताती	गर्म	५४	१३०
मथा	शिर पर	५४	१३०
परैं	ऊपर	५५	१३०
पिक	मयूर	५५	१३०
जती-तनी	साधुजनों में	५७	१३०
थनी	स्थान	५७	१३०
वक्त्र	मुँह	५८	१३०
रघु	श्रीराम	५८	१३०
जलद	बादल	५९	१३०

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
पगे	डूबे हुये	६०	१३०
थरपैं	स्थिर रहें	६०	१३०
पौन	हवा	६१	१३१
रँग-भौन	रंग महल	६१	१३१
नता	नाता-सम्बन्ध	६६	१३२
मरोरा	छोटी-छोटी लाल फुँसी	६८	१३२
मोरे	पलटते	६८	१३२
वरत	व्रत	७४	१३३
जिला	स्थान	७४	१३३
सुरति	श्रुत	७९	१३४
वली-जेवड़ी	जली हुयी रस्सी	९३	१३५
उथापि	दूर कर	९५	१३५
धुनि	ध्वनि	९९	१३५
परभाव	प्रभाव	१०१	१३६
परिस	स्पर्श	१०३	१३६
तियन	स्त्रियाँ	१०४	१३६
पैसि	पहुँचे	१०६	१३६
परतर	प्रतर	११०	१३६
पूरण	लोक पूर्ण	११०	१३६
अनपर्यय	अपर्याप्त	१२	१३७
अपर्येवान	अपर्याप्ति वाला	४	१३८
जी	जीव	२३	१३९
परै	गिरकर	२३	१३९
औसता	उपशम भाव	२४	१३९
औधारों	निर्णय करना	१६	१४१
परिपुन्य	परिपूर्ण	३३	१४२
येती-पल	इतने-पल्य	३५	१४२
अमरा	देव	३५	१४२
परै	आगे-ऊपर	१५	१४५
आनन	मुँख	२२	१४५
निवाठ	सीमा	२३	१४५
समुद	समुद्र	२५	१४६
कर	हाथ	२७	१४६

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
बाय	उनके	२७	१४६
वर	बार	३१	१४६
वानक	निमित्त	४५	१४७
वार	जल	५०	१४८
पर	दूसरी	३	१४८
आय	आयु	४	१४८
तरैं	नीचे	१२	१४९
सऊधर्म	सौधर्म	१४	१४९
चाप	धनुष	१६	१४९
भनि	कही	१६	१४९
गत	गति	१७	१४९
सगरे	पूरे	१८	१४९
वन्ही-वाय	अग्नि-वायु	२०	१४९
अप	जल	२०	१४९
पल	पल्य	९	१५२
चवै	च्युतमरण	७	१५४
के	अथवा	१७	१५४
वर	उत्कृष्ट	२७	१५५
चय	मरणकर	३५	१५६
तीन-तीस	तैंतीस	३६	१५६
अवदात	मुख्य-प्रधान	३७	१५६
छिति	पृथ्वी	४४	१५६
लौढ़	पत्थर	४५	१५७
सुतै	अपने आप	४५	१५७
गसै	घिसकर	४५	१५७
आकृत	आकार	४५	१५७
तीरा-परै	किनारे आता है	४५	१५७
विरै-काल	विरह-काल	४९	१५७
असिद	असिद्ध	१५	१५८
अलाधे	बिना पुरुषार्थ	२१	१५९
चिरातन	प्राचीन	१२	१५९
अवलोय	देखिये	३	१६०
प्रजाय	पर्याय	१५	१६०

प्रज्ञाश्रमण मुनि

शब्द	**अर्थ**	**छन्द संख्या**	**पृष्ठ संख्या**
किधो	कहीं	२६	१६१
सतवन	स्तवन	४	१६३
तैर	तेरहवाँ	७	१६३
सत	सत्य	१५	१६३
के	कह	२४	१६४
हजूर	स्वामी	२५	१६४
जति	साधु	२५	१६४
सिख	शिक्षा	२५	१६४
सवाद	स्वाद	२५	१६४
तूल	आँकड़े का फूल	३६	१६५
लाठ	लट्ठ	३६	१६५
काठ	लकड़ी	३६	१६५
पाचक	पचने वाला	३७	१६५
रैचक	निकलने वाला	३७	१६५
पुष्ट	पूर्ण	३७	१६५
कवन्द	शिर रहित धड़	३७	१६५
जी	जीव	३८	१६५
आपति	परेशानी-श्रम	३९	१६५
कोलौं	कब-तक	४१	१६५
मुह	मोह	४१	१६५
गेय	ज्ञेय-जानने योग्य	४	१६६
भन्त	भाँत-प्रकार	६	१६६
कितेक-परजै	कितनी पर्यायों	१२	१६७
भौन	भवन	४	१६८
सासत-रैना	निरन्तर रहना	५	१६८
असैना	बिना संकेत	५	१६८
पुकरात	पुकारना-आवाज देना	६	१६९
गात	शरीर	६	१६९
भीर	कष्ट	३४	१७२
पाँ-नी	प्राप्त करना	२६	१७२
झारि के	झड़ाकर के	२८	१७३
कीट-परजार	मैल-जला कर	२८	१७३
तोर-मोर	तोड़-मरोड़ कर	३१	१७३

शब्द	अर्थ	छन्द संख्या	पृष्ठ संख्या
मान	बराबर	४८	१७६
कुमार	कुम्भकार	५४	१७७
झींझा	एरण्ड की फली	५६	१७७
अलड्या	बिना श्रम के	६८	१७८
हान	मृत्यु-मरण	७०	१७८
मुख	मुख्य	७५	१७८
डिंभव	भ्रूण	९	१६९
अघात ना	तृप्त नहीं	९	१६९
स्यात	होते हैं	९	१६९
वधारा	टुकड़े	९	१६९
निहोरे	मनायें	१२	१७०
हासिल	हिस्सा-भाग-टेक्स	१२	१७०
हेरा	देखा	१२	१७०
बहुश्रुत	उपाध्याय	४	१७९
उलझार	उलझन	६	१७९
नादि	न-आदि; जिसकी आदि नहीं	८	१७९
वाम	स्त्री	१७	१८०
धाम	घर	१७	१८०
फरमान	आदेश	१८	१८०
परकर	परिवार-भीड़	१८	१८०
आकृति	आकार-मान	२१	१८०
भूर	बहुत	२३	१८०
गाफिल	वेहोश	२५	१८०
निरधार	निश्चय	२५	१८०
अवरोध	अन्तराय, रुकावट	२६	१८०
सुब	शुभ	२७	१८०
अशेष	सम्पूर्ण	२८	१८०

प्रज्ञाश्रमण मुनि